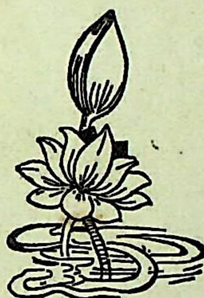
संस्कृत व्याकरण चन्द्रिका

.पारसनाथ द्विवेदी

संस्कृत व्याकरण चन्द्रिका

[छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी]

डा० पारसनाथ द्विवेदी
एम. ए, पी-एच डी, व्याकरण-साहित्याचार्य
आगरा कालेज, आगरा



भारतीय विद्या प्रकाशन
पो० बा० १०८, कचौड़ीगली
वाराणसी

भारतीय विद्या प्रकाशन
पो० बा० १०८
कचौड़ीगली, वाराणसी

❀

मूल्य ४.५०

❀

प्रथम संस्करण, मार्च १९७२

❀

मुद्रक
सीमाप्रेस एवं मानव मन्दिर मुद्रणालय
वा रा ण सी

प्राक्कथन

संस्कृत भाषा विश्व की समस्त भाषाओं में सबसे प्राचीनतम भाषा है और इसका साहित्य विश्व के समस्त साहित्य की अपेक्षा विशाल है। इस विशाल संस्कृत-वाङ्मय में व्याकरण का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य के ज्ञान के लिये व्याकरण का अध्ययन परमावश्यक बताया गया है। प्राचीनकाल में तो विना प्रयोजन के षडङ्गवेद के अध्ययन का विधान बताया गया है[1]। वेद के छः अङ्ग शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष हैं।[2] इन छः अङ्गों में व्याकरण को प्रमुख अङ्ग माना गया है (प्रधानं च षड्ष्वङ्गेषु व्याकरणम्)। कहा जाता है कि पहले संस्कार के पश्चात् व्याकरण का अध्ययन कराया जाता था (संस्कारोत्तरकालं व्याकरण स्माधीयते)।

संस्कृतवाङ्मय के इतिहास में इन्द्र, चन्द्र, आपिशल आदि अनेक वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है; किन्तु उनमें महर्षि पाणिनि का स्थान सर्वोपरि माना गया है। पाणिनि ने व्याकरण का 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ लिखाहै। कहा जाता है कि पाणिनिने भगवान् शिवकी आराधना कर उनसे चौदह सूत्रों को वर रूपमें प्राप्त कर लगभग चार हजार सूत्रों में 'अष्टाध्यायी' की रचना की थी। अष्टाध्यायी में कुल आठ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। प्रथम अध्याय में व्याकरण सम्बन्धी संज्ञा एवं परिभाषा सूत्रों का विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय में समास एवं कारक नियमों का विवेचन मिलता है। तृतीय एवं अष्टम अध्याय में कृदन्त प्रत्ययों कर विस्तृत विवेचन है। चतुर्थ एवं पञ्चम में स्त्री-प्रत्यय एवं तद्धित प्रत्ययों का सम्यक् विवेचन किया गया है। षष्ठ एवं सप्तम में सन्धि, आदेश एवं स्वरप्रक्रिया सम्बन्धी नियमों का विवेचन विस्तार के साथ किया गया है। पाणिनि प्रत्येक विषय को संक्षेप में प्रतिपादन करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने व्याकरण के नियमों का सूत्रशैली में विवेचन प्रस्तुत किया

---

१. ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मो षडङ्गो वेदो ज्ञेयोऽध्येयश्च (महाभाष्य)

२. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ रथ्यते।
ज्योतिषा मयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा प्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते (पाणिनीय शिक्षा)

है। पाणिनि की अष्टाध्यायी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनके पूर्व भी अनेक व्याकरण-ग्रन्थ निर्मित हो चुके थे, जिनके मतों एवं विचारों का उल्लेख उन्होंने अपनी अष्टाध्यायी में किया है। किन्तु वे व्याकरण ग्रन्थ सर्वथा निर्दोष प्रणाली में प्रतिपादित नहीं कहे जा सकते। यही कारण है कि पाणिनि की इस निर्दोष सूत्रशैली के सामने वे ठहर न सके। पाणिनि की यह सूत्रबद्ध मनोरम शैली इतनी लोकप्रिय हो गई कि उनके नाम भी विस्मृत हो गये। पाणिनि के पश्चात् कात्यायन ने पाणिनि के लगभग बारह सौ सूत्रों की आलोचनात्मक व्याख्या की है। इनके बाद पतञ्जलि ने अष्टाध्यायी पर भाष्य लिखा है जो 'पातञ्जल महाभाष्य' के नाम से प्रसिद्ध है। इन तीनों महर्षियों का व्याकरण शास्त्र के प्रतिपादन में पूर्ण योगदान रहा है। व्याकरण शास्त्र के इतिहास में इनके शास्त्र को 'त्रिमुनि व्याकरणम्' के नाम से अभिहित किया है। पतञ्जलिके पश्चात् अष्टाध्यायी पर जयादित्य वामन ने 'काशिका' नामक टीका लिखी और काशिका पर हरदत्त ने 'पदमंजरी' नामक टीका तथा जिनेन्द्र बुद्धि ने 'न्यास' लिखा है।

अनेक टीकाओं, प्रटीकाओं के होते हुए भी व्याकरण-शास्त्र आज दुरूह ही बना हुआ है। सदियों से इसका अध्ययनाध्यापन होता आ रहा है, फिर भी मनीषियों के सामने यह समस्या बनी हुई है कि इसे किस प्रकार सरल एवं सुबोध बनाया जाय कि वह सबके लिये सुगम हो सके और उसके अध्ययन की ओर लोग सरलता पूर्वक प्रवृत्त हो सकें। प्राचीनकाल में तो बारह वर्ष में व्याकरणशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया जाता था, किन्तु आज का विद्यार्थी उतना सूक्ष्म अध्ययन-पारायण एवं चिन्तनशील नहीं है और न उसके पास इतना समय ही है कि वह एक लम्बे समय तक व्याकरण का ही अध्ययन करता रहे। और अष्टाध्यायी जैसे दुरुह ग्रन्थ का अध्ययन तो उसके लिये एक समस्या है। व्याकरण अध्ययन के समय उसे अनेक कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ता है। अत: उनकी सुविधा को ध्यान में रखकर उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिये नवीनतम शैली में इस पुस्तक के लिखने का दु:साहस किया है। यद्यपि यह कार्य मेरे जैसे अल्पबुद्धि व्यक्ति के लिये अत्यन्त दु:साध्य है, फिर भी मैंने व्याकरण के मनीषियों एवं गुरु की कृपा से जो कुछ प्राप्त किया है उसे ही लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ। इस पुस्तक के लिखने का प्रमुख आधार पाणिनि व्याकरण

है किन्तु अष्टाध्यायी पर लिखे गये अन्यान्य व्याकरण ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। शिक्षण के समय मैंने जिन कठिनाइयों का अनुभव किया है तथा विद्यार्थियों के सामने जो कठिनाइयां आई हैं, उन्हें ध्यान में रखकर पुस्तक को अधिक व्यावहारिक एवं उपयोगी बनाने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत पुस्तक माध्यमिक एवं स्नातक (बी० ए०) कक्षाओं के उद्देश्य से लिखी गई, किन्तु कुछ स्थल एम० ए० के विद्यार्थियों के लिये भी अत्यन्त उपयोगी हैं।

इस पुस्तक में कुल ९ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में वर्ण-ज्ञान एवं संज्ञाओं का विवेचन है, द्वितीय में सन्धियों, तृतीय में कारकों, चतुर्थ में समासों, पञ्चम में तद्धित प्रत्ययों, षष्ठ में सर्वनाम, सप्तम में क्रियाओं, लकारों के प्रयोग, पद कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य, कर्मकर्तृवाच्य, यङन्त, सन्नन्त, नामधातु आदि विषयों, अष्टम में कृदन्त प्रत्ययों, नवम में अव्यय, उपसर्ग आदि शब्दों, तथा अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत विशिष्ट निरूपण भी किया गया है। पुस्तक को अधिक छात्रोपभोगी बनाने के लिये नवीन-शैली में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जैसे सन्धियों के अन्तर्गत कुछ ऐसी सन्धियों का संकलन किया गया है, जिनका सिद्धान्त कौमुदी आदि व्याकरण ग्रन्थों में सन्धि प्रकरण के अन्तर्गत निर्देश नहीं है। विद्यार्थियों के सुगम बोध के लिये एक-एक सन्धि के कई उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। कारकों के अन्तर्गत कारकों के प्रकार तथा उनके उपभेदों का विवेचन किया गया है। एक-एक विभक्तियों के कई-कई उदाहरण दिये गये हैं। उदाहरण सिद्धान्त कौमुदी तथा काव्यग्रन्थों से उद्धृत किये गये हैं। समासों का भी इसी प्रकार भेदोपभेदों के साथ विवेचन किया गया है और इसके भी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। तद्धित-विवेचन की मौलिक शैली है। प्रत्ययों के अनुसार सभी अर्थों में प्रयुक्त होने वाला एक ही प्रत्यय का एक स्थान पर संग्रह किया गया है जिससे छात्र, एक प्रत्यय कितने अर्थों में प्रयुक्त होता है, का ज्ञान एक ही स्थल पर कर सकते हैं। अनेक स्थलों पर गणपाठ उसी सूत्र के साथ दिया गया है। जैसे 'तारकादिभ्यः इतच्' सूत्र में तारका आदि से किन शब्दों का ग्रहण होगा, का निरूपण सूत्र के साथ कर दिया गया है। सर्वनाम शब्दों का अर्थ और उनका प्रयोग नवीन शैली में विवेचित है। क्रिया निरूपण

के अन्तर्गत लकारों के प्रयोग की सोदाहरण विधि बताई गई है। इसी में कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के प्रयोग की सुन्दर विधि अनेक उदाहरणों द्वारा समझाई गई है। कृदन्त प्रत्ययों के विवेचन में अनेक धातुओं के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं और उसकी निष्पत्ति भी दी गई है। अव्यय निरूपण के अन्तर्गत उपसर्ग, निपात आदि शब्दों के प्रयोग की विधि बताई गई है। उपसर्ग लगाने से धातु के अर्थ किस प्रकार परिवर्तित हो जाते हैं, का सम्यक् विवेचन किया गया है। धातुओं के साथ उपसर्ग प्रयोग के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। कौन शब्द किस लिङ्ग में प्रयुक्त होता है? और उसकी क्या विधि है? इसका भी निरूपण इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक के अन्त में शब्दरूपों एवं धातु रूपों के साथ विभिन्न विश्वविद्यालयों में आये हुये अनुवादार्थ गद्यांशों का भी संकलन किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में अभ्यासार्थ पर्याप्त प्रश्न दिये गये हैं। पुस्तक को यथा संभव अधिक उपयोगी बनाने के उपाय किये गये है किन्तु उसका निर्णय छात्र ही कर सकेंगे।

इस पुस्तक के लिखते समय मैंने जिन महानुभावों की पुस्तकों से सहायता ली है, उन सबके प्रति कृतज्ञतापूर्वक आभार प्रदर्शित करता हूँ। भारतीय विद्या प्रकाशन के संचालक 'श्री किशोर चन्द्र जी जैन' के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने बड़ी लगन एवं उत्साह के साथ इस पुस्तक को प्रकाश में लाने का भार उठाया। इस पुस्तक के वाराणसीमें छपनेके कारण इसका प्रूफ नहीं देख सका, अत: अशुद्धियों का होना असम्भव नहीं है। अत: उन प्रूफजन्य अशुद्धियों, मानव सुलभ त्रुटियों, भूलों एवं न्यूनताओं के लिये क्षमायाचना करता हुआ मैं पाठक महानुभावों से विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें जहाँ कहीं भी त्रुटियों का अनुभव हो, उसे सूचित कर अनुगृहीत करने की कृपा करेंगे जिससे अग्रिम संस्करण में यथेष्ट परिवर्तन किया जा सके।

यदि इस पुस्तक से पाठकों को कुछ लाभ पहुंच सका तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

मार्च १९७२ ई० }
आगरा कालेज, आगरा }

विनयावनत
पारसनाथ द्विवेदी

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

परिशिष्ट



संस्कृत व्याकरण-चन्द्रिका

प्रथम अध्याय

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे,
रामेणाभिहता निशाचरचमूः रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहम्,
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे हे राम ! मामुद्धर ॥

भाषा

जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावों एवं विचारों को सरलता पूर्वक दूसरों के सामने प्रकट कर सकता है उसे 'भाषा' कहते हैं। भिन्न-भिन्न देश के भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों की भिन्न-भिन्न भाषाएँ होती हैं। वाक्यों के समूह को 'भाषा' कहते हैं। कई पद मिलकर 'वाक्य' बनता है, और वर्णों का समूह 'पद' कहलाता है।

वर्णज्ञान

वर्ण को ही अक्षर कहते हैं। अक्षर का अर्थ है अविनाशी, अर्थात् जिसका कभी विनाश न हो उसे 'अक्षर' कहते हैं। इसे अनश्वर और नित्य भी कहते हैं। प्रायः 'वर्ण' शब्द का प्रयोग मूलाक्षरों के साथ किया जाता है। जैसे—अवर्ण, इवर्ण, उवर्ण आदि। इसी प्रकार 'कार' शब्द का प्रयोग मूलाक्षरों के साथ होता है। जैसे—अकार, इकार, उकार आदि। इससे केवल अ, इ तथा उ वर्णों का ही ज्ञान होता है।

वर्ण दो प्रकार के होते हैं—

१—स्वर = अच् (Vowel)

२—व्यञ्जन = हल् (Consonant)

ये दोनों प्रकार के वर्ण चौदह सूत्रों में वर्णित हैं। ये १४ सूत्र पाणिनि को

भगवान् शंकर के द्वारा वर रूप में प्राप्त हुए हैं। अतः इन्हें माहेश्वर सूत्र भी कहते हैं। भगवान् शंकर के डमरू से निकले हुए चौदह सूत्र अणादि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए हैं। महर्षि पाणिनि ने इन्हीं १४ सूत्रों के आधार पर लगभग चार हजार सूत्रों का निर्माण किया है। ये चौदह सूत्र निम्नलिखित हैं—

[१] अइउण् [२] ऋलृक् [३] एओङ् [४] ऐऔच्। [५] हयवरट् [६] लण् [७] ञमङणनम् [८] झभञ् [९] घढधष् [१०] जबगडदश् [११] खफछठथचटतव् [१२] कपय् [१३] शषसर् [१४] हल्।

इन्हें प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं। जिसके द्वारा अक्षरों का उच्चारण संक्षेप में किया जाय उसे 'प्रत्याहार' कहते हैं।

उपर्युक्त सूत्रों में से जो अक्षर हल् हैं (अर्थात् जिसके नीचे, ' ् ' का चिन्ह लगा रहता है) वह इत्संज्ञक कहलाता है। जैसे—क्, ण्, च् आदि। इन १४ सूत्रों से अण्, अच्, हल् आदि ४२ प्रत्याहार बनते हैं। किसी भी आदि अक्षर के साथ इत्संज्ञक वर्ण जोड़ने से इन दोनों के बीच के सभी अक्षरों का ज्ञान होता है। और आदि अक्षर का भी ज्ञान होता है। जैसे—

१. अण्=अ इ उ
२. अक्=अ इ उ ऋ लृ
३. अच्=अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ
४. अट्=अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह् य् व् र्
५. अण्=अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह् य् व् र् ल्
६. अम्=अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह् य व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न्
७. अश्=अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह् य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द्
८. अल्=अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह् य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स र् ह्
९. इक्—इ उ ऋ लृ
१०. इच्=इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ

११. इण् = इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह् य् व् र् ल्
१२. उक् = उ ऋ ऌ
१३. एङ् = ए ओ
१४. एच् = ए ओ ऐ औ
१५. ऐच् = ऐ औ
१६. हश् = ह् य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द्
१७. हल् = ह् य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स् ह्।
१८. यण् = य् व् र् ल्
१९. यम् = य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न्
२०. यञ् = य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ्
२१. यय् = य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प्
२२. यर् = य् व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स्
२३. वश् = व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द्
२४. वल् = व् र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स् ह्
२५. रल् = र् ल् ञ् म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स् ह्
२६. मय् = म् ङ् ण् न् झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ ठ् थ् च् ट् त् क् प्
२७. ङम् = ङ् ण् न्
२८. झष् = झ् भ् घ् ढ् ध्
२९. झश् = झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द्
३०. झय् = झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प्
३१. झर् = झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स्

३२. झल्=झ् भ् घ् ढ् ध् ज् ब् ग् ड् द् ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स् ह्

३३. भष्=भ् घ् ढ् ध्

३४. जश्=ज् ब् ग् ड् द्

३५. बश्=ब् ग् ड् द्

३६. खय्=ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प्

३७. खर्=ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स्

३८. छव्=छ् ठ् थ् च् ट् त्

३९. चय्=च् ट् त् क् प्

४०. चर्=च् ट् त् क् प् श् ष् स्

४१. शर्=श् ष् स्

४२. शल्=श् ष् स् ह्

स्वर (अच्) (Vowel)

स्वर का अर्थ है, ऐसा अक्षर जिसका उच्चारण स्वयं हो, किसी दूसरे अक्षर की आवश्यकता न पड़े। जैसे—अ इ उ आदि।

स्वर तीन प्रकार के होते हैं—

ह्रस्व=अ

दीर्घ=आ

प्लुत=आ३

इस प्रकार अ इ उ ऋ में प्रत्येक स्वर तीन-तीन प्रकार के होते हैं। 'ऌ' दो प्रकार का होता है—ह्रस्व और प्लुत। वह दीर्घ नहीं होता। ए ओ ऐ औ ये चार स्वर सन्ध्यक्षर कहलाते हैं, ये दो स्वरों के मेल से बनते हैं जैसे—अ+इ =ए। अ+उ=ओ, अ+ए=ऐ। अ+ओ=औ। ये भी दो प्रकार के होते हैं, दीर्घ और प्लुत। ये ह्रस्व नहीं होते। इस प्रकार सब मिलाकर बाईस स्वर होते हैं।

व्यञ्जन (हल्) (Consonant)

जो बिना किसी दूसरे वर्ण (अर्थात् स्वर) के सहज में उच्चारण न किये जा सकें उसे 'व्यञ्जन' कहते हैं। व्यञ्जन का शुद्ध रूप क्, ख् आदि है। अत: इसके उच्चारण के लिए इसमें कोई न कोई स्वर अवश्य मिलाना पड़ता है क्योंकि बिना किसी अच् के व्यञ्जन का उच्चारण ही नहीं हो सकता।[1] जैसे क्+अ =क, ख्+अ=ख आदि।

व्यञ्जन के भेद

क ख ग घ ङ = कवर्ग [कु]
च छ ज झ ञ = चवर्ग [चु]
ट ठ ड ढ ण = टवर्ग [टु]
त थ द ध न = तवर्ग [तु]
प फ ब भ म = पवर्ग [पु]
(उपर्युक्त पाँचों वर्ग) — स्पर्श[2]

य व र ल = यण् या अन्तस्थ[3]
श ष स ह = शल् या ऊष्म[4]

विशेष—पाँचों वर्गों के प्रथम एवं द्वितीय अक्षर तथा श ष स ह को परुष व्यञ्जन कहते हैं, और शेष मृदु व्यञ्जन कहलाते हैं। अत: ये तैंतीस व्यञ्जन हुए।

विसर्ग [:] किसी शब्द के स्वर के बाद लगता है और इसका उच्चारण पृथक् होता है, अत: इसे पृथक् स्वर माना जाता है। इसी प्रकार अनुस्वार [ं]

---

१. न ह्येकाचं विना व्यञ्जनस्योच्चारणं भवति [सि० कौ०]

२. स्पर्श संज्ञक वर्णों के उच्चारण के समय जिह्वा तालु आदि स्थानों का स्पर्श करती है।

३. स्वर और व्यञ्जनों के मध्य होने के कारण य् व् र् ल् को अन्त:स्थ कहते हैं।

४. ऊष्म संज्ञक अक्षरों के उच्चारण में अन्दर से कुछ अधिक श्वास लेना पड़ता है।

की भी पृथक् सत्ता होने के कारण इसे भी पृथक् स्वर मानते हैं। ये दोनों विसर्ग (:)और अनुस्वार (ं) क्रमशः र् स् तथा न् म् के स्थान पर होते हैं।

क् और ख् के पूर्व कभी कभी अर्ध-विसर्ग के समान एक [ᳵक ᳵख] चिह्न लग जाता है उसे 'जिह्वामूलीय' कहते हैं। इसी प्रकार प् और फ् के पूर्व के अर्ध विसर्ग सदृश [ᳶ प ᳶ फ] चिह्न को 'उपध्मानीय' कहते हैं। अतः ये दो पृथक् स्वर हुए। इस प्रकार विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय चारों मिलाकर 'चार' विशिष्ट स्वर हुए और ये शर् के रूप में भी व्यक्त होते हैं। इन्हें अयोगवाह भी कहते हैं।

संस्कृत में वर्णों के प्रथम चार अक्षरों के वाद किसी भी वर्ग का पांचवाँ अक्षर आने पर बीच में एक पूर्व सदृश (पूर्व वर्ण के समान) एक और अक्षर हो जाता है, उसे प्रातिशाख्य में 'यम' कहा गया है। जैसे पलिक्क्नीः, चख्ख्नतुः अग्ग्निः, घ्घ्नन्ति। यहाँ क ख ग घ के बाद पंचम वर्ण परे रहते वही अक्षर पुनः आये हैं अतः इन्हे 'यम' कहते हैं, इस प्रकार ये चार यम हुए।

इस प्रकार ३३ व्यञ्जन और २२ स्वर तथा ४ विशिष्ट-स्वर एवं ४ यम मिलाकर (३३ + २२ + ४ + ४ = ६३) ६३ वर्ण[1] हुए। कोई-कोई आचार्य 'ळ' को दो स्वरों के मध्य में एक विशिष्ट वर्ण मानते हैं उनके मत में ६४ वर्ण होते हैं।

"अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा" इस नियमानुसार अनुनासिक [यँ् वँ् लँ्] और अननुनासिक [य् व् ल्] भेद से यवल दो प्रकार का होता है। इस मत के अनुसार ६६ या ६७ वर्ण होंगे।

वर्णों के उच्चारण के स्थान

अ आ कवर्ग ह विसर्ग = कण्ठ
इ ई चवर्ग य श = तालु
ऋ ॠ टवर्ग र ष = मूर्धा

---

१. त्रिषष्टि : चतुषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः (पा० शि०)

उ ऊ पवर्ग उपध्मानीय = ओष्ठ
ञ् म् ङ् ण् न् = नासिका भी होता है।
ए ऐ = कण्ठतालु
ओ औ = कण्ठ और ओष्ठ
व = दन्त और ओष्ठ
जिह्वामूलीय [ᳲक ᳲख] = जिह्वा का मूल
अनुस्वार = नासिका

प्रयत्न

१. आभ्यन्तर प्रयत्न

आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकर का होता है १. स्पृष्ट २. ईषत्स्पृष्ट ३. ईषद्विवृत ४. विवृत ५. संवृत।

स्पृष्ट = स्पर्श
ईषत्स्पृष्ट = अन्तःस्थ
ईषद्विवृत = ऊष्म
विवृत = स्वर
संवृत = अ [ह्रस्व अ]

कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ ये वर्णोच्चारण के पाँच स्थान हैं। जिह्वा के चार भाग मूल, मध्य, उपाग्र और अग्र एवं नीचे का ओठ मिलाकर उच्चारण के ये पाँच अवयव होते हैं, उनका अनुक्रम से कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ इनसे परस्पर सम्बन्ध होता है। इन अवयवों का जो एक दूसरे से पूर्ण स्पर्श है वही स्पृष्ट प्रयत्न है और जो थोड़ा स्पर्श करे उसे ईषत्स्पृष्ट कहते हैं। उनका एक दूसरे से दूर रहना विवृत प्रयत्न, तथा थोड़ा दूर रहना ईषद्विवृत प्रयत्न कहलाता है।

२. बाह्य प्रयत्न

बाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का होता है। १. विवार २. संवार ३. श्वास

४. नाद ५. घोष ६. अघोष ७. अल्पप्राण ८. महाप्राण ९. उदात्त १०. अनुदात्त ११. स्वरित।

वर्ग के प्रथम तथा द्वितीय अक्षर और उनके यम जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, विसर्ग, श् ष् स् ह् का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न होता है। इससे भिन्न अर्थात् वर्ग के तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम अक्षर, य् र् ल् व् का संवार नाद, और घोष प्रयत्न होता है। वर्ग के प्रथम, तृतीय, पंचम वर्ण, य् र् ल् व् तथा स्वरों का अल्पप्राण प्रयत्न होता है और वर्ग के द्वितीय, चतुर्थ अक्षर एवं श् ष् स् ह् का महाप्राण प्रयत्न होता है।

लेखोपयोगी कुछ चिह्न

अनुस्वार = (ं) कं, अं, चं आदि
अनुनासिक = (ँ) चाँद, आँख आदि
विसर्ग = (:) क : स : य : आदि
जिह्वामूली = (ᳵक ᳵख)
उपध्मानीय = (ᳵप ᳵफ)
हल् या शुद्ध व्यञ्जन सूचक चिह्न =(्) क् च् प् आदि
अल्पविराम चिह्न = (,) (Comma)
अर्द्धविराम चिह्न = (;) (Semicolan)
पूर्णविराम चिह्न = (।) (Full stop)
प्रसङ्ग = (=)
प्रश्नबोधक चिह्न = (?) (Sign of Interrogation)
विस्मयादिबोधक चिह्न = } (!) (Sign of admiration, surprise etc.)
सम्बोधन खेद आश्चर्य
उद्धरण चिह्न = (".........") (Inverted commas)
निर्देश चिह्न = (:—) (Colon and dash)
योजना चिह्न = (—) (Hyphen)
कोष्ठक चिह्न = (.......) (Parenthesis)

सन्धि विच्छेद चिह्न + (Plus)
पर्याय चिह्न— = (Equal)
त्रुटिपूर्ण चिह्न = (‸)
संयुक्त वर्ण = क् + ष = क्ष, त् + र त्र, ज् + ञ = ज्ञ, प्र, स्वः, ह्यः।

संज्ञासूत्र एवं परिभाषाएँ

सूत्र किसे कहते हैं? "अल्पाक्षरत्वे सति बह्वर्थबोधजनकत्वं सूत्रत्वम्" अर्थात् अल्प अक्षर होते हुए अधिक अर्थों का बोध करानेवाला सूत्र कहलाता है। सूत्र ६ प्रकार के होते हैं—

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥

१. संज्ञा सूत्र, २. परिभाषा सूत्र, ३. विधि सूत्र, ४. नियम सूत्र, ५. अतिदेश-सूत्र, ६. अधिकार सूत्र।

संज्ञा-सूत्र

'वृद्धिरादैच्' = (पा० सू०) आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा होती है।

'अदेङ् गुणः=(पा० सू०) अ, ए, ओ की गुण संज्ञा होती है।

उपदेशेऽजनुनासिक इत्=(पा० सू०) उपदेश में (अर्थात् सूत्रों एवं प्रत्ययों में) जो अनुनासिक अच् उसकी इत् संज्ञा होती है। जैसे सु में उ की इत्संज्ञा है।

हलन्त्यम्=(पा० सू०) उपदेश में जो अन्त्य हल् उसकी इत् संज्ञा होती है। जैसे नुम् में म् और घुट् में ट् की इत्संज्ञा है।

न विभक्तौ तुस्माः=(पा० सू०) सुप् और तिङ् विभक्तियों के तवर्ग और स् म् की इत्संज्ञा नहीं होती।

आदिर्ञिटुडवः=(पा० सू०) आदि के ञि, टु, डु की इत्संज्ञा होती है। जैसे टुडु परितापे में 'टु' की तथा डुकृञ् करणे में 'डु' की।

षःप्रत्ययस्य=(पा० सू०) प्रत्यय के ष् की इत्संज्ञा होती है। जैसे ष्फ में 'ष्' की।

चुटू=(पा० सू०) प्रत्यय के आदि में चवर्ग और टवर्ग की इत्संज्ञा होती है।

लशक्वतद्धिते = (पा० सू०) तद्धित को छोड़ कर प्रत्यय के आदि में ल, श, कवर्ग की इत्संज्ञा होती है।

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्=(पा० सू०) जिन अक्षरों का स्थान और प्रयत्न समान हो, उसकी सवर्ण संज्ञा होती है।

विरामोऽवसानम्=(पा० सू०) किसी भी वर्ण के अनन्तर जो वर्ण का अभाव उसे 'अवसान' कहते हैं।

सुप्तिङन्तं पदम्=(पा० सू०) सुप् (सु औ जस् आदि) अन्त में हो जिसके और तिङ् (ति, त, अन्ति आदि) अन्त में हों जिसके उसकी 'पद' संज्ञा होती है।

परः सन्निकर्षः संहिता=(पा० सू०) वर्णों की जो अत्यन्त समीपता उसको 'संहिता' कहते हैं।

हलोऽनन्तराः संयोगः=(पा० सू०) अच् के व्यवधान रहित दो या अधिक व्यंजनों के मेल को 'संयोग' कहते हैं।

अचोऽन्त्यादि टि = (पा० सू०) शब्द के सब अचों में जो अन्त्य अच् वह आदि है जिस भाग का उसे 'टि' कहते हैं।

विशेषः—शब्दों में अन्त्य अच् के बाद जो हल् उसके साथ अच् की 'टि' संज्ञा होती है। और जहाँ अन्त्य अच् के बाद हल् न हो वहाँ केवल 'अच्' ही टि संज्ञक होता है।

अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा=(पा० सू०) अन्त्य अल् (वर्ण) के पूर्व वर्ण की 'उपधा' संज्ञा होती है।

यचि भम् = (पा० सू०) असर्वनामस्थान (सु, औ, जस्, अम्, औट् को छोड़कर) कप् प्रत्यय पर्यन्त (अर्थात् प्रथमाध्याय-चतुर्थपाद के प्रारम्भ से ५ अ० २पा० ३८ सूत्र तक जो यकारादि प्रत्यय (य् हो आदि में जिसके) अथवा अजादि (स्वर आदि में हो जिसके) प्रत्यय बाद में हो तो पूर्व की 'भ' संज्ञा होती है।

अदर्शनं लोपः = (पा० सू०) जिसका प्रसंग हो ऐसे वर्ण के अभाव (अर्थात् न दिखाई देना) को 'लोप' कहते हैं।

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः (पा० सू०) मुख के साथ नासिका से उच्चार्यमाण (उच्चारण किये जानेवाले) अक्षर की 'अनुनासिक संज्ञा' होती है।

दाधाघ्वदाप्—(पा० सू०) दाप् धातु को छोड़कर दा रूप और धा रूप धातुओं की 'घु' संज्ञा होती है।

सर्वादीनि सर्वनामानि—(पा० सू०) सर्वादिगण[1] की 'सर्वनाम' संज्ञा होती है।

ह्रस्वं लघु—(पा० सू०) ह्रस्ववर्णों की 'लघु' संज्ञा होती है।

संयोगे गुरु, दीर्घं च = (पा० सू०) संयुक्त अक्षरों के आदि ह्रस्व वर्णों की तथा दीर्घवर्णों की 'गुरु' संज्ञा होती है।

चादयोऽसत्त्वे = (पा० सू०) द्रव्य अर्थ के अवाचक चादि[2] की 'निपात' संज्ञा होती है।

उपसर्गाः क्रियायोगे, गतिश्च = (पा० सू०) प्रादि[3] की क्रिया के योग में 'उपसर्ग' और 'गति' संज्ञा होती है।

---

१. सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अन्तर, त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ये पैंतीस सर्वनाम हैं।

२. चादि=च, वा, ह, अह, एव, एवम्, नूनम्, शश्वत्, चेत्, यत्र, तत्र, अ, इ, उ, य् ल् आदि।

३. प्रादि = प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप ये बाईस उपसर्ग होते हैं।

इग्यणः सम्प्रसारणम् (पा० सू०)—य् व् र् ल् के स्थान पर इ, उ, ऋ, लृ का हो जाना 'सम्प्रसारण' कहलाता है।

तरप्तमपौ घः (पा० सू०)—तरप् और तमप् इन दो प्रत्ययों की 'घ' संज्ञा होती है।

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् (पा० सू०) दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त, और एकारान्त द्विवचन की 'प्रगृह्य' संज्ञा होती है।

तिङ्शित्सार्वधातुकम् (पा० सू०) तिप्, तस्, झि आदि प्रत्ययों (परस्मैपद एवं आत्मनेपद दोनों) की तथा श्-इत्संज्ञक वाले प्रत्ययों (जैसे शप्, शतृ, शानच् आदि) की सार्वधातुक संज्ञा होती है, अर्थात् ये 'सार्वधातुक' कहलाते हैं।

आर्धधातुकं शेषः (पा० सू०) सार्वधातुक से भिन्न प्रत्यय 'आर्धधातुक' कहलाते हैं।

नवेति विभाषा (पा० सू०) विकल्प को 'विभाषा' संज्ञा होती है।

द्वितीय अध्याय

सन्धि-प्रकरणम्

सन्धि किसे कहते हैं ? इस जिज्ञासा में 'वर्णसन्धानं सन्धिरिति' इस नियम के अनुसार दो अक्षरों के मेल को 'सन्धि' कहते हैं, जैसे अ + अ = आ। यहाँ दो अ मिलकर एक 'आ' हो गया। अतः इसे सन्धि कहेंगे।

प्रत्येक मनुष्य प्रकृति के नियमानुसार बोलते समय कुछ अक्षरों को स्वयं जोड़ लेता है, यदि वह उसे न जोड़े, तो अड़चन मालूम देती है, अक्षरों के इसी जोड़ को 'सन्धि' कहते हैं। सन्धियाँ प्रत्येक भाषा में होती हैं चाहे वह अंग्रेजी भाषा हो अथवा हिन्दी या अन्य कोई भाषा। जैसे अंग्रेजी में (Do not) को (Do'nt) 'डोन्ट' कहते हैं। इसी प्रकार (Can not) को (Can't) 'कान्ट' कहते हैं, (I will) को (I 'll) 'आइल' तथा (will not) को (Wo'nt) 'वोन्ट' कहते हैं, किन्तु उसके लिए वहाँ कोई नियम (Rules) नहीं है। प्रचलित भाषा होने के कारण लोग उसे अपने आप जान लेते हैं।

सन्धियां कितनी होती हैं ?

भाषा में अक्षर दो प्रकार के होते हैं। स्वर और व्यंजन। अतः स्वरों के मेल को 'स्वरसंन्धि' तथा व्यंजनों के मेल को 'व्यञ्जनसन्धि' कहते हैं। इस प्रकार स्वर-सन्धि और व्यञ्जन-सन्धि ये दो सन्धियाँ हुई, किन्तु संस्कृत में कुछ ऐसे वर्ण हैं जो सर्वथा स्वर और व्यञ्जन से भिन्न उच्चारित होते हैं, जैसे विसर्ग (:) तथा अनुस्वार (ं)। अतः इनको पृथक् सन्धि मानी जाती है—विसर्गसन्धि और अनुस्वारसन्धि। इसके अतिरिक्त सु आदि विभक्तियों की पृथक् सत्ता होने से स्वादिसन्धि पृथक् होती है। अतः सब मिलाकर पाँच सन्धियाँ हुई। अतः इसे 'पञ्चसन्धि' कहते हैं।

१—स्वरसन्धि (अच्सन्धि) २—हल्सन्धि (व्यञ्जनसन्धि) ३—अनुस्वार परसवर्णसंधि ४—विसर्गसन्धि ५—स्वादिसन्धि ।

विशेष :—कोई कोई आचार्य 'प्रकृतिभाव' को पृथक् सन्धि मानते हैं किन्तु 'वर्णानां सन्धानं सन्धिः' । इस नियम के अनुसार प्रकृतिभाव में वर्णों का सन्धान (मेल) न होने से पृथक् सन्धि नहीं कही जा सकती है, इसे केवल स्वर-सन्धि का अपवाद कहेंगे ।

सन्धि के नियम

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

एक पद के अन्दर तथा धातु और उपसर्ग में एवं समास में सन्धि अवश्य करनी चाहिये । जैसे—

एक पद में—भो + अति = भवति
धातु और उपसर्ग में—नि + अपठत् = न्यपठत्
समास में— पीतम् अम्बरं यस्य सः = पीताम्बरः ।

वाक्य में पृथक् पृथक्-शब्दों की सन्धियाँ करना न करना अपनी इच्छा पर निर्भर है ।

विशेष :—किन्तु पद्य में सन्धि न करने से विसन्धि दोष हो जाता है ।

अज्झीनं परेण संयोज्यम्—अर्थात् स्वर (अच्) से हीन (रहित) वर्ण (व्यञ्जन) को दूसरे वर्णों से मिला देना चाहिए, जैसे—क् + अ=क । अद् + अन्ति = अदन्ति । प् + र् + अ=प्र । त् + र् + अ = त्र । श् + र् + ई = श्री इत्यादि ।

स्वरसन्धि

दो स्वरों के मेल को स्वरसन्धि कहते हैं ।

यणसन्धि

१. इको यणचि—(पा० सू०) इक् (इ उ ऋ लृ) के बाद उससे भिन्न यदि

कोई दूसरा स्वर अच् आवे तो इक् (इ उ ऋ लृ) के स्थान पर क्रम से यण् (य् व् र् ल्) हो जाता है। जैसे—

दधि + आनय = दध् य् आनय = दध्यानय
सुधी + उपास्यः = सुध् य् उपास्य = सुध्युपास्यः
प्रति + एक = प्रत् य् एकं = प्रत्येकम्
नदी + उदकम् = नद् य् उदकम् = नद्युदकम्
यदि + अपि = यद् य् अपि = यद्यपि
मधु + अरिः = मध् व् अरिः = मध्वरिः
वधू + आदेशः = वध् व् आदेशः = वध्वादेशः
अनु + अयः = अन् व् अयः = अन्वयः
मातृ + आज्ञा = मात् र् आज्ञा = मात्राज्ञा
धातृ + अंशः = धात् र् अंशः = धात्रंशः
पितृ + उपदेशः = पित् र् उपदेशः = पित्रुपदेशः
लृ + आकृतिः = ल् आकृतिः = लाकृतिः
लृ + आकारः = ल् आकारः = लाकारः

दीर्घसन्धि

२. अकः सवर्णे दीर्घः—(पा० सू०) = अ इ उ ऋ के बाद यदि वे ही अक्षर पुनः आवें तो दोनों मिलकर दीर्घ एकादेश हो जाता है। जैसे—दैत्य + अरिः = दैत्यारिः (विष्णु)।

यहाँ दैत्य के य में 'अ' के बाद पुनः अ आया है अतः दोनों मिलकर अ दीर्घ हो गया। इसी प्रकार :—

विद्या + आलयः = विद्यालयः (पाठशाला)
शश + अंकः = शशांकः (चन्द्रमा)
धन + आदेशः = धनादेशः (मनी आर्डर)
रत्न + आकरः = रत्नाकरः (समुद्र)
श्री + ईशः = श्रीशः (विष्णु)

क्षिति + ईश:=क्षितीश: (राजा)
भानु + उदय:=भानूदय: (सूर्य का उदय)
वधू + उत्सव: = वधूत्सव: (बहू का त्यौहार)
लघु + ऊर्मि = लघूर्मि: (छोटी तरंग)
गुरु + उपदेश: = गुरूपदेश: (गुरू जी का उपदेश)
होतृ + ऋकार: = होतॄकार: (होम करनेवाले का 'ऋ')
पितृ + ऋणम् = पितॄणम् (पिता का कर्जा)

गुणसन्धि

३—आद्गुणः (पा० सू०) – अवर्ण (ह्रस्व या दीर्घ अ) के बाद यदि इक् (इ उ ऋ लृ) आवे तो दोनों के स्थान में क्रमसे ए ओ अ गुण हो जाता है। (अर्थात् अ के बाद इ आवे तो ए तथा अ के बाद उ आवे तो ओ एवं अ के बाद ऋ आवे या लृ आवे तो अ गुण होता है)

जैसे—उप + इन्द्र = उप् ए न्द्र = उपेन्द्र

यहाँ पर उप के प में अ और इन्द्र के इ, इन दोनों के स्थान पर ए गुण हो गया। इसी प्रकार :—

रमा + ईश: = रम् ए श: = रमेश:
सूर्य + उदय: = सूर्य ओ दय: = सूर्योदय:
गंगा + उदकम् = गंग् ओ दकम् = गंगोदकम्
परीक्षा + उत्सुक: = परीक्ष् ओ त्सुक: = परीक्षोत्सुक:

४—उरण् रपरः (पा० सू०) ऋ और लृ के स्थान पर गुण आदि के द्वारा निष्पन्न जो अण् (अ इ उ) इसके बाद र् ल् हो जाता है। (अर्थात् ऋ के स्थान पर उ होने पर 'अर्' तथा 'लृ' के स्थान पर अ के होने से 'अल्' हो जाता हैं। इसी प्रकार ऋ-लृ के स्थान पर इ उ होने पर इर् इल् उर् उल् हो जाते हैं।

जैसे :—देव + ऋषि: = देवर्षि:।

यहाँ पर देव के व में अ और ऋषि के ऋ के स्थान पर अ गुण होकर

उसके पश्चात् र् होकर अर् हुआ और 'जलतुम्बिकन्याय' से र् ऊपर चला गया। इसी प्रकार—

कृष्ण + ऋद्धिः = कृष्ण् + अ + द्धि = कृष्ण् + अर् + द्धिः = कृष्णर्द्धिः

वसन्त + ऋतुः = वसन्त् + अ + तुः = वसन्त् + अर् + तुः = वसन्तर्तुः

तव + ऌकारः = तव् + अ + कारः = तव + अल् + कारः = तवल्कारः

मम + ऌकारः = मम् + अ + कारः = मम् + अल् + कारः = ममल्कारः।

अयादिचतुष्टयं

५—एचोऽयवायावः—(पा० सू०) एच् (ए ओ ऐ औ) के बाद यदि कोई स्वर (अच्) आवे तो एच् (ऐ ओ ऐ औ) के स्थान पर क्रमसे अय्, अव्, आय्, आव् हो जाता है। (अर्थात् ए के स्थान पर अय्, ओ के स्थान पर अव्, ऐ के स्थान पर आय् और औ के स्थान पर आव् होता है) जैसे—ने + अन = न् + अय् + अन = नयन यहाँ ने में ए के बाद अ आने से उसके स्थान पर अय् आदेश हो गया है। इसी प्रकार—

ने + अति = न् + अय् + अति = नयति
हरे + ए = हर् + अय् + ए = हरये
भो + अति = भ् + अव् + अति = भवति
वटो + ऋक्ष = वट् + अव् + ऋक्ष = वटवृक्ष
विष्णो + ए = विष्ण् + अव + ए = विष्णवे
नै + अकः = न् + आय् + अकः = नायकः
ग्लै + अति = ग्ल् + आय् + अति = ग्लायति
पौ = अकः = प् + आव् + अकः = पावकः
नौ + इकः = न् + आव् + इकः = नाविकः
भौ + उकः = भ् + आव् + उकः = भावुकः

६—वान्तो यि प्रत्यये (पा० सू०) — 'य' है आदि में जिसके ऐसे प्रत्यय यदि परे (बाद में) हों तो ओ औ के स्थान पर क्रम से 'अव्' 'आव्' आदेश हो जाता है। जैसे—

गो + यम् = ग् + अव् + यम् = गव्यम्

नौ + यम् = न् + आव् + यम् = नाव्यम्

७—अध्वपरिमाणे च (वार्तिक)—मार्गवाचक अर्थ में गो शब्द के बाद 'यूति' शब्द आने पर गो शब्द के 'ओ' के स्थान पर 'अव्' आदेश हो जाता है। जैसे—

गो + यूतिः = ग् + अव् + यूतिः = गव्यूतिः (दो क्रोश)।

८—लोपः शाकल्यस्य (पा० सू०) यदि 'अ' के बाद पदान्त (पद के अन्त में) य् व् आवे और उसके बाद अश् (स्वर, ह् य् व् र् ल् और वर्गों का तीसरा, चौथा, पांचवा अक्षर) आवे तो य् व् का विकल्प से लोप हो जाता है। जैसे—

हरे + इह = हर् + अय् + इह (अयादेश) = हर् + अ + इह = हर इह, हरयिह।

श्रियै + उद्यतः = श्रिय् + आय् + उद्यतः = श्रिय् + आ + उद्यतः = श्रिया ऊद्यतः, श्रियायुद्यतः।

विष्णो + इह = विष्ण् + अव् + इह = विष्ण् + अ + इह = विष्ण इह, विष्णविह

प्रभो + इदानीम् = प्रभ् + अव् + इदानीम् = प्रभ् + अ + इदानीम् प्रभ इदानीम्, प्रभविदानीम्।

गुरौ + उत्कः = गुर् + आव् + उत्कः = गुर् + आ + उत्कः = गुरा उत्कः, गुरावुत्कः

भानौ + उदिते = भान् + आव् + उदिते = भान् + आ + उदिते = भाना उदिते, भानावुदिते

वृद्धिसन्धि

९ - वृद्धिरेचि—(पा० सू०) यदि अ आ के बाद एच् (ए ऐ ओ औ) आवे तो दोनों के स्थान पर क्रम से (ऐ औ) वृद्धि हो जाती है। अर्थात् अ

आ के बाद ए आवे तो ऐ तथा ओ आवे तो औ और ऐ आवे तो ऐ एवं औ आवे तो औ हो जाता है) जैसे :—

कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम्
तथा + एव = तथैव
सदा + एव = सदैव
गंगा + ओघ: = गंगौघ:
जल + ओक: = जलौक:
तण्डुल + ओदनम् = तण्डुलौदनम्
देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्
गुण + ऐक्यम् = गुणैक्यम्
सदा + ऐकमत्यम् = सदैकमत्यम्
कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम्
महा + औषधि; = महौषधि:
तव + औदार्यम् = तवौदार्यम्

१०–एत्येधत्यूठ्सु–(पा०सू०) :–अवर्ण के बाद यदि एच् आदि वाले पद एति, एधति या ऊठ् आवे तो दोनों के स्थान में वृद्धि (ऐ औ) हो जाती है। जैसे —

उप + एति = उपैति
अप + एति = अपैति
उप + एधते = उपैधते
अव + एधसे = अवैधसे
प्रष्ठ + ऊह: = प्रष्ठौह:
विश्व + ऊह: = विश्वौह:

गुणापवाद

११—अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् (वार्तिक) :—यदि अक्ष शब्द के बाद

ऊहिनी शब्द आवे तो अक्ष के क्ष में अ और ऊहिनी के ऊ इन दोनों के स्थान पर औ वृद्धि हो जाती है। जैसे—

अक्ष + ऊहिनी (अक्षौहिनी) अक्षौहिणी सेना।

(यहाँ पर 'पूर्वपदात्संज्ञायामग:' इस सूत्र के द्वारा 'न' के स्थान पर 'ण' हो गया है)

१२—**स्वादीरेरिणो:** (वार्तिक) यदि 'स्व' शब्द के बाद ईर् तथा ईरिण् आवे तो स्व के अ और ईर्, ईरिण् के ई के स्थान पर 'ऐ' वृद्धि हो जाती है। जैसे—

स्व + ईरी = स्वैरी

स्व + ईर: = स्वैर:

स्व + ईरम् = स्वैरम्

स्व + ईरिणी = स्वैरिणी

१३—**प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु**—(वार्त्तिक) यदि प्र के बाद ऊह, ऊढ, ऊढि, एष, ऐष्य आवें तो प्र में अ तथा ऊह, ऊढ, ऊढि के 'ऊ' के स्थान पर औ, एवम् एष, ऐष्य के ए, ऐ के स्थान पर ऐ वृद्धि हो जाती है। जैसे—

प्र + ऊढ़: = प्रौढ़:

प्र + ऊह: = प्रौह:

प्र + ऊढ़ि: = प्रौढ़ि:

प्र + एष: = प्रैष:

प्र + ऐष्य: = प्रैष्य:

१४—**ऋते च तृतीयासमासे** (वार्तिक) तृतीयासमास में अ के बाद यदि ऋत शब्द आवे तो दोनों के स्थान में 'आर्' हो जाता है। जैसे:—
सुखेन ऋत: सुख + ऋत: = सुखार्त:

१५—**प्रवत्सतर-कम्बल-वसनार्ण-दशानामृणे**(वार्त्तिक): प्र, वत्सतर, कम्बल,

वसन, ऋण, दश शब्द के बाद यदि ऋण शब्द आवे तो 'अ' और 'ऋ' के स्थान पर 'आर्' हो जाता है।

जैसे: – प्र + ऋणम् = प्रार्णम्

वत्सतर + ऋणम् = वत्सतरार्णम्

कम्बल + ऋणम् = कम्बलार्णम्

वसन + ऋणम् = वसनार्णम्

ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम्

दश + ऋणम्=(दशार्णम्) दशार्णः

१६—उपसर्गादृति धातौ (पा०सू०) यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद 'ऋ' आदि में हो जिसके वह यदि धातु आवे तो 'अ' और 'ऋ' के स्थान पर 'आर्' हो जाता है। जैसे—

उप + ऋच्छति = उप् + आर् + च्छति = उपार्च्छति

प्र + ऋच्छति = प्र् + आर् + च्छति = प्रार्च्छति

१७--वा सुप्यापिशलेः (पा०सू०) : यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद ऋकारादि नामधातु आवे तो 'आर्' विकल्प से होता है, जैसे :-

प्र + ऋषभीयति = प्र् + आर् + षभीयति, प्रार्षभीयति, प्रर्षभीयति

प्र + ऌकारीयति = प्र् + आल् + कारीयति = प्राल्कारीयति, प्रल्कारीयति

पररूपसन्धि

१८--एङि पररूपम्(पा. सू.)यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद एङ् (ए ओ) आदि में है जिसके ऐसी धातु आवे तो दोनों के स्थान में क्रम से 'ए, ओ' (पररूप एकादेश) हो जाता है। जैसे—

प्र + एजते = प्रेजते

उप + ओषति = उपोषति

प्र + एषयति = प्रेषयति

अव + ओषति = अवोषति

विशेष—यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद एङादि नामधातु आवे तो विकल्प से 'पररूप' हो जाता है, जैसे—

उप + एडकीयति = उपेडकीयति, उपैडकीयति

प्र + ओघीयति = प्रोघीयति, प्रौघीयति

१६—ओमाङोश्च (पा०सू०):—यदि 'अ' के बाद ओम् या आङ् (आ) आवे तो दोनों के स्थान पर 'पररूप' हो जाता है। जैसे :—

शिवाय + ओंनमः = शिवायोंनमः

शिव + आ + इहि = शिव + एहि = शिवेहि

२०—शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् (वार्त्तिक) : शकन्ध्वादि गण में पठित शब्दों में 'टि' का पररूप हो जाता है। जैसे:—

शक + अन्धुः = शकन्धुः

कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः

मनस् + ईषा = मनीषा

पतत् + अंजलिः = पतंजलिः

हल + ईषा = हलीषा

लांगल + ईषा = लांगलीषा

कुल + अटा = कुलटा

मार्त्त + अण्डः = मार्त्तण्डः

सार + अंगः = सारंगः (पशु-पक्षी)

सीम + अन्तः = सीमन्तः (मांग, केशरचना)

२१—ओत्वोष्ठयोः समासे वा (वार्त्तिक) : यदि 'ओतु' और 'ओष्ठ' शब्द परे हो तो विकल्प से 'पररूप' होता है : यथा :—

स्थूल + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः

विम्ब + ओष्ठः = विम्बोष्ठः, विम्बौष्ठः

२२—अतो गुणे (पा०सू०) : यदि अपदान्त (पद के अन्त में न हो) 'अ'

के वाद गुण (अ, ए, ओ) आवे तो दोनो के स्थान में 'पररूप' एकादेश हो जाता है। जैसे—

भव + अन्ति = भवन्ति
पठ + अन्ति = पठन्ति
अव + एहि = अवेहि।

पूर्वरूपसन्धि

२३—एङः पदान्तादति (पा० सू०) यदि पद के अन्त में एङ् (ए, ओ) आवे और उसके वाद ह्रस्व 'अ' आवे तो उसके स्थान पर पूर्वरूप (ऽ) हो जाता है: जैसे :—

हरे + अव = हरेऽव
वने + अत्र = वनेऽत्र
विप्रो + अहम् = विप्रोऽहम्

२४—अमि पूर्वः : (पा०सू०) यदि अक् (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) के बाद 'अम्' आवे तो दोनों के स्थान में मिल कर पूर्वरूप एकादेश होता है, जैसे:—

राम + अम् = रामम्। लता + अम् = लताम्
हरि + अम् = हरिम्। भानु + अम् = भानुम्

स्वरसन्धि का अपवाद प्रकृतिभाव

२५—प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् (पा० सू०) प्लुत संज्ञक अथवा प्रगृह्य संज्ञक स्वरों के वाद यदि स्वर आवे तो वहाँ सन्धि नहीं होतीं है।

२६—दूराद्धूते च (पा०सू०) दूर से संबोधन किये हुये वाक्य का 'टि' प्लुत संज्ञक होता है, यथा :—

एहि कृष्ण + अत्र गौश्चरति = एहि कृष्ण ३, अत्र गौश्चरति
यहां पर कृष्ण + अत्र में दीर्घ सन्धि नहीं हुई।

२७—प्रत्यभिवादेऽशूद्रे (पा० सू०) शूद्र को छोड़कर प्रत्यभिवादन (आशीर्वाद) में वाक्य के टि को प्लुत संज्ञा होती है। यथा :—
अभिवादयेऽहं देवदत्त:। आयुष्मानेधि देवदत्त ३

२८—गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् (पा० सू०) दूर के सम्बोधन के वाक्य में 'ऋ' को छोड़कर प्रत्येक गुरु प्लुत होता है, यथा:–देवदत्त ३ देवद३त्त, दे३वदत्त।

२९—ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् (पा० सू०) ईकारान्त, ऊकारान्त, एकारान्त शब्द द्विवचन हों तो उनकी प्रगृह्य संज्ञा होती है, यथा :—

हरी + एतौ = हरी एतौ (यहां यण् सन्धि नहीं हुई)
विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ
कवी + आगतौ = कवी आगतौ
धनुषी + एते = धनुषी एते
भानू + उदयेते = भानू उदयेते
साधू + आगतौ = साधू आगतौ
गंगे + अमू = गंगे अमू (यहां पूर्वरूप नहीं हुआ)
पचेते + इमौ = पचेते इमौ
कुले + उत्कृष्टे = कुले उत्कृष्टे

३०—अदसो मात् (पा० सू०) मकारान्त अदस् शब्द के अन्त में यदि ई, ऊ आवे तो उसकी प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे :—

अमी + ईशा = अमी ईशा
अमू + आसाते = अमू आसाते।

३१—निपात एकाजनाङ् (पा०सू०) 'आ' का छोड़कर एक अच् वाले निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे—

इ + इन्द्रः=इ इन्द्रः
उ + उमेशः=उ उमेशः
उ + उत्तिष्ठ=उ उत्तिष्ठ

३२—ओत् (पा० सू०) ओकारान्त निपात को भी प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे
अहो + ईशा = अहो ईशा (यहाँ पूर्वरूप सन्धि नहीं हुई)
मिथो + आगच्छतः = मिथो आगच्छतः
अहो + अपेहि = अहो अपेहि
अहो + अद्य = अहो अद्य
अथो + अपि=अथो अपि

३३—सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (पा०सू०) संबोधन के अन्त में 'ओ' के बाद यदि लौकिक 'इति' आवे तो विकल्प से प्रगृह्य संज्ञा होती है। जैसे—
भानो + इति = भानो इति, पक्ष में–भान इति, भानविति
विष्णो + इति=विष्णो इति, पक्ष में—विष्ण इति, विष्णविति

३४—मय उञो वो वा (पा० सू०) मय् के बाद यदि उ आवे और उसके बाद कोई स्वर आवे तो 'उ' के स्थान पर विकल्प से 'व' हो जाता है। जैसे—
किमु + उक्तम् = किम् + व् + उक्तम्=किम्वुक्त म्, किमु उक्तम्।

३५—इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च (पा० सू०) पद के अन्त में इक् (ई उ ऋ) के बाद उसे छोड़ कर कोई दूसरा स्वर आवे तो इक् ह्रस्व होकर विकल्प से प्रकृतिभाव होता है। जैसेः—
धनी + आगच्छति=धनि + आगच्छति, धन्यागच्छति
चक्री + अत्र=चक्रि + अत्र=चक्रयत्र

३६—न समासे (वार्त्तिक) (अपवाद): किन्तु समास में ह्रस्व और प्रकृतिभाव नहीं होता। जैसे—
वापी + अश्वः = वाप्यश्वः
नदी + उदकम् = नद्युदकम्

सुधी + उपास्य: = सुध्युपास्य:

वधू + आदेश: = वध्वादेश:

३७—ऋत्यक: (पा० सू०) अक् (अ इ उ ऋ) के वाद यदि ह्रस्व (ऋ) आवे तो विकल्प से ह्रस्व और प्रकृतिभाव होता है, जैसे--

ब्रह्मा + ऋषि: = ब्रह्म ऋषि:, पक्ष में–गुण होता हैं, ब्रह्मर्षि:

महा + ऋषि:=मह ऋषि:, पक्ष में—महर्षि:

विशेष: —यह समास में भी प्रकृतिभाव कर देता है । यथा—

सप्त + ऋषीणाम्=सप्त ऋषीणाम्, सप्तर्षीणाम्

२—व्यंजन सन्धि (हल् सन्धि)

दो व्यंजनों के मेल को व्यंजनसन्धि कहते हैं: जैसे :—

तस्मिन् + एव=तस्मिन्नेव

३८—स्तोः श्चुना श्चुः (पा० सू०) यदि 'स' तथा तवर्ग के योग में (आगे या पीछे) 'श' या चवर्ग आवे तो 'स' के स्थान पर 'श' और तवर्ग के स्थान पर चवर्ग हो जाता है। जैसे—

रामस् + शेते = रामश्शेते

हरिस् + चिनोति=हरिश्चिनोति

कस + चित्=कश्चित्

कृष्णस् + चपल: = कृष्णश्चपल:

सत् + चित् = सच्चित्

सत् + चरित्र = सच्चरित्र

ग्रामात् + चलित: = ग्रामाच्चलित:

एतद् + जलम् = एतज्जलम्

शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय

याच् + ना = याच्ञा

(अपवाद)

३६—शात् (पा० सू०) किन्तु यदि 'श' के बाद तवर्ग आवे तो चवर्ग नहीं होता। जैसे—

विश् + नः + विश्नः

प्रश् + नः = प्रश्नः

४०—ष्टुना ष्टुः (पा०सू०) यदि 'स' और तवर्ग के योग में (आगे या पीछे) 'ष' या टवर्ग आवे तो 'स' के स्थान पर 'ष' तथा तवर्ग के स्थान पर टवर्ग हो जाता है। जैसे—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः

देवस् + षष्ठः = देवष्षष्ठः

रामस् + टीकते = रामष्टीकते

पेष् + ता = पेष्टा

तत् + टीका = तट्टीका

उद् + डयन = उड्डयन

चक्रिन् + ढौकसे = चक्रिण्ढौकसे

(अपवाद)

४१—न पदान्ताट्टोरनाम् (पा० सू०) यदि पद के अन्त में टवर्ग के बाद 'स' या तवर्ग आवे तो ष्टुत्व (ष और टवर्ग) नहीं होता, यथा—

षट् + सन्तः = षट्सन्तः

षट् + ते = षट्ते

विशेष :—यदि पदान्त टवर्ग के बाद नाम्, नवति, नगरी शब्द आवे तो ष्टुत्व (ष और टवर्ग) हो जाता है। यथा :—

षड् + नाम् = षण्णाम्

षड् + नवतिः = षण्णवतिः

षड् + नगर्यः = षण्णगर्यः

४२—तोःषि (पा० सू०) यदि तवर्ग के बाद 'ष' आवे तो वहां तवर्ग के स्थान पर टवर्ग नहीं होता, यथा—

सन् + षष्ठः = सन्षष्ठः

४३—झलां जशोऽन्ते (पा० सू०) यदि पद के अन्त में झल् (य् व् र् ल् ङ् ञ् ण् न् म् को छोड़कर कोई भी व्यंजन) आवे तो उसके स्थान पर जश् (उसी वर्ग का तीसरा अक्षर) हो जाता है, यथा—

वाक् + ईश: = वाग् + ईश: = वागीश:
तत् + रूप: = तद् + रूप: = तद्रूप:
जगत् + ईश: = जगद् + ईश: = जगदीश:
दिक् + अम्बर: = दिग् + अम्बर: = दिगम्बर:
वाक् + दानम् = वाग् + दानम् = वाग्दानम्
सत् + आचार: = सद् + आचार: = सदाचार:
अच् + अन्त: = अज् + अन्त: = अजन्त:
तत् + धनम् = तद् + धनम् = तद्धनम्

४४—यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (पा० सू०) :—यदि पद के अन्त में यर् (ह् को छोड़कर शेष सभी व्यंजन) आवे और उनके बाद अनुनासिक (ञ् म् ङ् ण् न्) आवे तो यर् के स्थान पर विकल्प से अनुनासिक हो जाता है। जैसे–

एतत् + मुरारि: = एतन्मुरारि:, एतद्मुरारि:
सत् + मनोहरम् = सन्मनोहरम्, सद्मनोहरम्
ऋक् + मन्त्र: = ऋङ्मन्त्र:
षट् + मासा: = षण्मासा:, षड्मासा:

४५—प्रत्यये भाषायां नित्यम् (वार्तिक) यदि उस यर् के बाद प्रत्यय का अनुनासिक आवे तो यर् के स्थान पर नित्य अनुनासिक होता है–जैसे :—

तत् + मात्रम् = तन्मात्रम्
चित् + मयम् = चिन्मयम्
तत् + मयम् = तन्मयम्
विपद् + मयम् = विपन्मयम्

४६—तोर्लि (पा० सू०) यदि तवर्ग के बाद 'ल' आवे तो तवर्ग के स्थान पर 'ल' हो जाता है और 'न' के स्थान पर अनुनासिक लं् हो जाता है: जैसे

तत् + लय: = तल्लय:
कश्चित् + लभते = कश्चिल्लभते
उत् + लेख: = उल्लेख:
विपद् + लीन = विपल्लीन
विद्वान् + लिखति = विद्वांल्लिखति
महान् + लाभ: = महांल्लाभ:
कुशान् + लिखति = कुशांल्लिखति

४७—खरि च (पा० सू०) यदि झल् (ङ् ण् न् म् ञ् तथा य् व् र् ल् को छोड़ कर कोई भी व्यंजन) के बाद खर् (ख् फ् छ् ठ् थ् च् ट् त् क् प् श् ष् स्) आवे तो झल् के स्थान पर चर् (उसी वर्ग का प्रथम अक्षर) हो जाता है। जैसे—

वृक्षाद् + पतति = वृक्षात्पतति
सुहृद् + खेलति = सुहृत्खेलति
तद् + फलम् = तत्फलम्

४८—वावसाने (पा० सू०) यदि शब्द के अन्त में झल् आवे तो विकल्प से जश् होता है। जैसे—

रामात्, रामाद्
वाक्, वाग्

४९—झयो होऽन्यतरस्याम् (पा. सू.) यदि झय् (अनुनासिक को छोड़कर वर्ग का कोई भी अक्षर के बाद 'ह' आवे तो विकल्प से पूर्वसवर्ण (अर्थात् उस अक्षर 'झय्' के स्थान पर उसी वर्ग का तीसरा अक्षर तथा 'ह' के स्थान पर उसी वर्ग का चौथा अक्षर) हो जाता है। जैसे—

वाक् + हरि: = वाग्हरि: = वाग्घरि:
अच् + ह्रस्व: = अज् + ह्रस्व: = अज्झ्रस्व:

षट् + हलानि = षड् + हलानि = षड्ढलानि
तत् + हित: = तद् + हित: = तद्धित:
अप् + हरणम् = अव् + हरणम् = अव्भरणम्
ककुभ् + हास: = ककुब् + हास: = ककुब्भास:
संपद् + हानि: = संपद्धानि:

५०—शश्छोऽटि (पा. सू.) यदि झय् के बाद 'श' आवे और उसके बाद अट् आवे तो 'श' के स्थान पर 'छ' हो जाता है। जैसे :—

तद् + शिव: = तज् + शिव: = तच् + शिव: = तच्छिव:
तद् + श्लोकेन = तज् श्लोकेन = तच् + श्लोकेन = तच्छ्लोकेन
एतद् + शान्तम् = एतज् + शान्तम् = एतच् + शान्तम् = एतच्छान्तम्
तद् + श्रुत्वा = तज् + श्रुत्वा = तच् + श्रुत्वा = तच्छ्रुत्वा

आगम

५१—ङ्णोः कुक्टुक्शरि (पा. सू.) यदि ङ् और ण के बाद शर् (श् ष् स्) आवे और उसके बाद क्रमसे कुक् (क्) और टुक (ट्) का आगम होता है, अर्थात् ङ् के बाद कुक् तथा ण् के बाद टुक् होता है। जैसे :—

प्राङ् + षष्ठ: = प्राङ् + कुक् (क्) + षष्ठ: = प्राङ् + क् + षष्ठ:

५२—चयोः द्वितीया शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम् (वार्तिक) यदि चय (च् ट् त् क् प्) के बाद शर् आवे तो विकल्प से उसका दूसरा अक्षर हो जाता है। जैसे :—

प्राङ् + क् + षष्ठ: = प्राङ् + ख् + षष्ठ:=प्राङ्क्षष्ठ: (क् + ष् = क्ष), प्राङ्षष्ठ:
सुगण् + षष्ठ: = सुगण् + ट् + षष्ठ: = सुगण्ठ्षष्ठ: = सुगणट्षष्ठ:, सुगण्षष्ठ:

५३—ड:सि धुट् (पा. सू.):—यदि 'ड्' के बाद 'स्' आवे तो उसके बाद विकल्प से धुट् (ध्) का आगम हो जाता है। जैसे :—

सन् + स: = सन् + धुट् + स: = सन्त्स:, सन्स:।

छात्रान् + स्वापय = छात्रान् + ध् + स्वापय = छात्रान्त्स्वापय

विद्यार्थिन् + सहस्व = विद्यार्थिन् + ध् + सहस्व = विद्यार्थिन्त्सहस्व

५४—शि तुक् (पा. सू.) यदि पदान्त 'न' के बाद 'श्' आवे तो तुक् (त्) का आगम हो जाता है। जैसे :—

सन् + शम्भुः = सन् + तुक् + शम्भुः = शन् + द् + शम्भुः = शञ्चशम्भुः शञ्च्छम्भुः (शश्छोऽटि) शञ्छम्भुः ।

वालान् + शास्ति = वालान् + त् + शास्ति = वालाञ्च्छास्ति, वालाञ्च्छास्ति

५५—ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् (पा. सू.)—यदि ह्रस्व स्वर के वाद ङ् ण् न् आवे और उसके बाद कोई स्वर हो तो क्रम से ङुट् (ङ्) णुट् (ण्) नुट् (न्) का आगम हो जाता है। अर्थात् ङ् के बाद स्वर आने पर एक ङ् और हो जाता है, इसी प्रकार ण् के वाद एक ण् और 'न्' के वाद एक 'न्' और हो जाता है। जैसे :—

प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ् + ङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा

तिङ् + अतिङ् : = तिङ् + ङ् + अतिङः = तिङ्ङतिङः

सुगण् + ईशः = सुगण् + ण् + ईशः = सुगण्णीशः

सन् + अच्युतः = सन् + न् + अच्युतः = सन्नच्युतः

तस्मिन् + इति = तस्मिन् + न् + इति = तस्मिन्निति

५६—छे च (पा. सू.) यदि ह्रस्व स्वर के वाद 'छ' आवे तो तुक् (त्) का आगम हो जाता है। यथा: —

स्व + छाया = स्व + त् + छाया = स्वच्छाया

शिव + छाया = शिव + त् + छाया = शिवच्छाया

वृक्ष + छाया – वृक्ष + त् + छाया = वृक्षच्छाया

५७—पदान्ताद्वा (पा. सू.) यदि पदान्त दीर्घ स्वर के बाद 'छ' आवे तो विकल्प से तुक् (त्) का आगम होता है, यथा :—

लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मी + त् + छाया = लक्ष्मीच्छाया, लक्ष्मी छाया

नदी + छन्ना = नदी + त् + छन्ना = नदीच्छन्ना । नदी छन्ना—

३—अनुस्वारपरसवर्णसन्धि

५८—मोऽनुस्वारः (पा. सू.) यदि पद के अन्त में 'म्' आवे और उसके वाद कोई व्यंजन आवे तो 'म्' के स्थान पर अनुस्वार (ं) हो जाता है, यथा:—

हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे
मधुरम् + हसति = मधुरं हसति
सत्वरम् + याति = सत्वरं याति

विशेष:—अज्झीनं परेण संयोज्यम् :—यदि पदान्त 'म्' के वाद कोई स्वर आवें तो 'म्' स्वर में मिल जाता है।

जैसे :—सम् + आचार: = समाचार:
गुरुम् + अनुगच्छति = गुरुमनुगच्छति

५९—नश्चापदान्तस्य झलि (पा० सू०) यदि अपदान्त (अर्थात् पद के अन्त में न हो) 'न्' 'म्' के वाद झल् (अनुनासिक तथा य् व् र् ल् को छोड़कर शेष व्यजन) आवे तो 'न्' 'म्' के स्थान पर अनुस्वार हो जाता है, यथा :—

यशान् + सि = यशांसि
वासान् + सि = वासांसि
आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते
प्रणम् + स्यते = प्रणंस्यते

६०—अनुस्वरस्य ययि परसवर्णः (पा० सू०) यदि अपदान्त अनुस्वार के वाद यय् (श् ष् स् ह् को छोड़कर सभी व्यंजन) आवे तो अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण (वर्ग का पांचवा अक्षर हो जाता है जैसे :—

शाम् + त: = शां + त: = शान्त:
अम् + कित: = अं + कित: = अङ्कित:
अम् + चित: = अं + चित: = अञ्चित:
कुम् + ठित: = कुं + ठित: = कुण्ठित:
गुम् + फित: = गुं + फित: = गुम्फित:
युन् + जन्ति = युं + जन्ति = युञ्जन्ति

वा पदान्तस्य (पा० सू०) : यदि पदान्त अनुस्वार के बाद यय् आवे तो विकल्प से परसवर्ण होता है, यथा :—

त्वम् + करोषि = त्वं करोषि = त्वङ्करोषि, त्वं करोषि
मधुरम् + भाषते = मधुरं + भाषते = मधुरम्भाषते, मधुरं भाषते
गृहम् + चलति = गृहं + चलति = गृहं चलति, गृहञ्चलति
मृत्युम् + जयति = मृत्युं + जयति = मृत्युञ्जयति, मृत्युं जयति
गाम् + ददाति = गां + ददाति = गान्ददाति, गां ददाति
त्वम् + पचसि = त्वं पचसि = त्वम्पचसि, त्वं पचसि
तम् + टीकते = तं + टीकते = तण्टीकते तं टीकते,

विशेष :—यदि पदान्त अनुस्वार के बाद य् व् ल् आवे तो अनुस्वार के स्थान पर अनुनासिक यं् वं् लं् (परसवर्ण) हो जाता है, यथा :—

सम् + यन्ता = सं + यन्ता = सयँ्यन्ता, संयन्ता
सम् + वत्सरः = सं + वत्सरः = सँव्वत्सरः, संवत्सरः
यम् + लोकम् = यं + लोकम् = यंल्लोकम्, यं लोकम्
दानम् = यच्छति + दानं = यच्छति = दानंय्यँच्छति, दानं यच्छति
सुन्दरम् + लिखति = सुन्दरं + लिखिति = सुन्दरँल्लिखति; सुन्दरं-लिखति
किम् + वहति = किं + वहति = किव्वँहति, किं वहति
विद्याम् + लभते = विद्यां + लभते = विद्याँल्लभते, विद्यां लभते

समः सुटि (पा० सू०) :—सम् के बाद यदि सुट् का 'स' आवे तो 'म' के स्थान पर रु (र्) हो जाता है, तथा 'ँ' रु के पूर्व स्वर के स्थान पर विकल्प से अनुनासिक ँ एवं अनुस्वार (ं)हो जाता है।

खरवसानयोर्विसर्जनीयः (पा० सू०) :—यदि खर् प्रत्याहार आगे हो या अवसान (अन्त) का विषय हो तो र् के स्थान पर विसर्ग (:) हो जाता है।

सम्पुंकानां सो वक्तव्य: (वार्त्तिक) सम् पुम् और कान् के विसर्ग के स्थान पर 'स' हो जाता है, यथा :—

सम् + स्कर्त्ता = स + रु + स्कर्त्ता = सर्स्कर्त्ता = स: स्कर्त्ता = सँस्स्कर्त्ता संस्स्कर्त्ता ।

पुमःखय्यम्परे (पा० सू०) :—पुम् के बाद अम् परक खय् प्रत्याहार परे रहते 'म' के स्थान पर (रु) हो जाता है, यथा :—

पुम् (शेष कार्य पूर्ववत् होते हैं)

पुम् + कोकिल: = पुरुकोकिल: = पु र् कोकिल:, पु: कोकिल:, पुस्कोकिल:, पुंस्कोकिल:

पुम् + पुत्र: = पु र् पुत्र: = पु: पुत्र: = पुस्पुत्र:, पुंस्पुत्र:

पुम् + चरित्रम् = पुर् चरित्रम् = पु: चरित्रम् = पुश्चरित्रम् = पुश्चरित्रम्, पुंश्चरित्रम्

पुम् + तिलकम् = पुर्तिलकम् = पु: तिलकम्=पुस्तिलकम्, पुंस्तिलकम्

पुम् + टीका = पुर्टीका = पु: टीका = पुस्टिका = पुष्टीका, पुंष्टीका

कानाम्रेडिते (पा० सू०) :—यदि कान् शब्द के बाद कान् शब्द आवे तो कान् के 'न' के स्थान पर रु (र्) हो जाता है, यथा :—

कान् + कान्=का र् कान् = का: कान् = कास्कान्, कांस्कान्

नश्छव्यप्रशान् (पा० सू०) अम् परक छव् (छ् ठ् थ् च् ट् त्) परे रहते पदान्त 'न' के स्थान पर 'रु' हो जाता है, यथा :—

विशेष:—(शेष कार्य पूर्ववत् होगा) और यहाँ 'विसर्जनीयस्य स:' इस सूत्र के द्वारा विसर्ग के स्थान पर 'स्' होगा ।

कस्मिन् + चित्=कस्मि र् चित्=कस्मि: चित्=कस्मिस्चित्=कस्मिँश्चित् कस्मिंश्चित् ।

शार्ङ्गिन् + छिन्धि = शार्ङ्गिर् छिन्धि = शार्ङ्गिः छिन्धि = शार्ङ्गिंश्छिन्धि, शार्ङ्गिँश्छिन्धि

वेदान् + टीकस्व + वेदा र् टीकस्व = वेदाः टीकस्व = वेदास्टींकस्व = वेदांष्टीकस्व, वेदाँष्टीकस्व ।

महान् + ठकारः = महा र् ठकारः = महाः ठकारः = महांस्ठकारः = महांष्ठकारः, महाँष्ठकारः ।

पतन् + तरुः = पत र् तरुः = पतं: तरुः = पतंस्तरुः, पतँस्तरुः ।

राजन् + थकार = राज र् थकारः = राजः थकारः = राजंस्थकारः, राजँस्थकारः ।

चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रि र् त्रायस्व = चक्रिः त्रायस्व = चक्रिंस्त्रायस्व, चक्रिँस्त्रायस्व ।

(इसी प्रकार चलंष्टिट्टिभः, चलँष्टिट्टिभः, नृत्यंश्चकोरः, नृत्यँश्चकारः भक्ताँस्तारय, भक्तांस्तारय, विद्वांश्छात्रः विद्वाँश्छात्रः, धावंश्छागः, धावंश्छागः आदि भी जानना चाहिये ।

विसर्ग सन्धि

जब किसी स्वर या व्यंजन के संयोग से विसर्गों का रूप परिवर्तन हो जाता है तो उसे विसर्ग सन्धि कहते हैं । जैसे, रामः तिष्ठति = रामस्तिष्ठति । यहाँ विसर्ग के स्थान पर 'स्' हो गया है ।

खरवसानयोः विसर्जनीयः (पा० सू०):—यदि पदान्त 'र्' परे खर् प्रत्याहार हो या अवसान (अन्त) का र् हो तो उसके स्थान पर विसर्ग हो जाता है, यथा :—

पुनर् + पतति = पुनः पतति
रामर् = रामः । हरि स् = हरिः

विसर्जनीयस्य स: (पा० सू०)—यदि विसर्ग के वाद खर् (प्रत्येक वर्ग का पहला व द्वितीय अक्षर) आवे तो विसर्ग के स्थान पर 'स्' हो जाता है, यथा :—

राम: + त्रायते = रामस्त्रायते
विष्णु: + त्राता = विष्णुस्त्राता
गौ: + चरति = गौस्चरति = गौश्चरति
नि: + छल = निस्छल: = निश्छल: ।

वा शरि (पा० सू०):—यदि विसर्ग के वाद शर् (श् ष् स्) आवे तो विसर्ग के स्थान पर विकल्प से 'स्' होता है और दूसरे पक्ष में विसर्ग ही रहता हैं,

जैसे—हरि: + शेते=हरिस्शेते = हरिश्शेते, हरि: शेते
राम: + षष्ठ: = रामस्षष्ठ: = रामष्षष्ठ:, राम: षष्ठ:
नि: + सार: = निस्सार:, नि:सार: ।

खर्परे शरि विसर्गलोपोवा वक्तव्य: (वार्त्तिक) खर् (प्रत्याहार) जिसके आगे हो ऐसे शर् परे रहते (स्थ, ष्ट आदि) विकल्प से विसर्ग का लोप हो जाता है, यथा:—

राम: + स्थाता = रामस्थाता, राम: स्थाता
हरि: + स्फुरति = हरिस्फुरति, हरि: स्फुरति
दुस्थ:, दु:स्थ:

सोऽपदादौ (पा० सू०)—अपदादि (पद के आदि में न हो) कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्ग के स्थान पर 'स्' हो जाता है, यथा :—

पय: + पाशम् = पयस्पाशम्
यश: + कल्पम् + यशस्कल्पम्
यश: + काम्यति = यशस्काम्यति

इणः षः (पा० सू०) :—यदि इण् प्रत्याहार के बाद विसर्ग आवे तो कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्ग के स्थान पर 'ष्' हो जाता है, यथा:—

सर्पिः + पाशम् = सर्पिष्पाशम्
सर्पिः + कल्पम् = सर्पिष्कल्पम्
सर्पिः + काम्यति = सर्पिष्काम्यति

नमस्पुरसोर्गत्योः (पा० सू०) :—नमः और पुरः इन गतिसंज्ञक शब्दों के बाद कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्ग के स्थान, 'स्' होता है, यथा :—

नमः + करोति = नमस्करोति
पुरः + करोति = पुरस्करोति

कुप्वोः≍क≍पौ च (पा० सू०) :—कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्ग के स्थान पर विकल्प से≍क≍प होता है :

क≍खनति, कः पचति, क≍फलति क≍करोति

इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य (पा० सू०) :—कवर्ग पवर्ग परे रहते उपधा रूप ह्रस्व 'इ', 'उ' के बाद प्रत्ययभिन्न विसर्ग के स्थान पर 'ष' हो जाता है, यथा :—

निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्
दुः + कृतम् = दुष्कृतम्
आविः + कृतम् = आविष्कृतम्

इसुसोः सामर्थ्ये (पा० सू०) :—कवर्ग पवर्ग परे रहते आकांक्षा हो तो इस् उस् के 'स्' के विसर्ग के स्थान पर 'ष' हो जाता है, यथा :—

सर्पिः + करोति = सर्पिष्करोति, सर्पिःकरोति
धनुः + करोति = धनुष्करोति, धनुःकरोति

द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे (पा० सू०) :—कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ में कवर्ग पवर्ग रहते द्विः, त्रिः, चतुः के विसर्ग के स्थान पर विकल्प से 'ष' होता है, यथा :—

द्विः + करोति = द्विष्करोति
त्रिः + करोति = त्रिष्करोति
चतुः + करोति = चतुष्करोति

अतः कृ कमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य (पा० सू०) :— कृ धातु तथा कम् धातु एवं कुम्भ, पात्र, कुशा, कर्णी शब्द परे रहते अव्यय सेभिन्न 'अ' शब्द के वाद के विसर्ग के स्थान पर 'स्' होता है, यथा :—

अयः + कारः = अयस्कारः
अयः + कामः = अयस्कामः
अयः + कंसः = अयस्कंसः
अयः + कुम्भः = अयस्कुम्भः
अयः + पात्रम् = अयस्पात्रम्
अयः + कुशा = अयस्कुशा
अयः + कर्णी = अयस्कर्णी

कस्कादिषु च :—कस्कादि गण के शब्दों के इण् के वाद आने वाले विसर्ग के स्थान पर 'ष' होता है और जहाँ इण् नहीं होगा वहाँ 'स्' होता है, यथा :—

सर्पिः + कुण्डिका = सर्पिष्कुण्डिका
धनुः + कपालम् = धनुष्कपालम्
कः + कः = कस्कः
कौतः + कुतः = कौतस्कुतः

१ **कस्कादिगण** :—कस्कः, कौतस्कुतः, भ्रातुष्पुत्रः, शुनस्कर्णः, सद्यस्कालः, कांस्कान्, सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपालम्, बर्हिष्पलम्, यजुष्पात्रम्, अयस्कान्तः, तमस्काण्डः, अयस्काण्डः, मेदस्पिण्डः, भास्करः, अहस्करः ।

स्वादि सन्धि

सु, औ, जस् आदि विभक्तियों के स्थान पर जो 'रु' लोप आदि सन्धियाँ होती हैं उसे स्वादि सन्धि कहते हैं, यथा:—

ससु गच्छति = स गच्छति, यहाँ सु का लोप हो गया है ।

ससजुषो रु: (पा० सू०):—पदान्त स् तथा सजुष् शब्द के 'स्' के स्थान पर रु (र्) हो जाता है ।

अतो रोरप्लुतादप्लुते (पा० सू०):—यदि ह्रस्व 'अ' के बाद 'रु' आवे और उसके बाद भी ह्रस्व 'अ' आवे तो 'र,' के स्थान पर 'उ' हो जाता है, यथा :—

शिवस् + अर्च्य:=शिवरु अर्च्य:=शिव उ अर्च्य: = शिवो अर्च्य:=शिवोऽर्च्य:
विप्रस् + अहम् = विप्र रु अहम्=विप्र उ अहम् = विप्रो अहम् - विप्रोऽहम्
रामस् + अस्ति = राम रु अस्ति=राम उ अस्ति=रामो अस्ति = रामोऽस्ति
छात्रस् + अयम्=छात्र रु अयम् = छात्र उ अयम् = छात्रो अयम् - छात्रोऽयम्

हशि च (पा० सू०) :—यदि ह्रस्व 'अ' के बाद 'रु' आवे और उसके बाद हश् प्रत्याहार आवे तो 'रु' के स्थान में 'उ' हो जाता है, यथा :—

शिवस् + वन्द्य:=शिव रु वन्द्य:=शिव उ वन्द्य:=शिवो वन्द्य:
बालस् + वदति=वाल रु वदति=वाल उ वदति - बालो वदति
रामस् + गच्छति=राम रु गच्छति = राम उ गच्छति = रामो गच्छति
देवस् + हसति = देव रु हसति = देव उ हसति=देवो हसति

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि (पा० सू०):—भो, भगो, अघो, और 'अ' 'आ' के बाद यदि रु आवे और उसके बाद अश् (प्रत्याहार) आवे तो 'रु' के स्थान पर 'य' हो जाता है, यथा :—

देवास् + इह=देवा रु इह = देवा य् इह=देवा इह, देवायिह
छात्रास् + आगच्छन्ति = छात्रा रु आगच्छन्ति=छात्रा आगच्छन्ति=छात्रा-यागच्छन्ति ।

इसी प्रकार देवा एते, वीरा उत्सहन्ते, धार्मिका भजन्ते, भक्ता भजन्ति, विप्रा यान्ति इत्यादि भी जानना चाहिये।

हलि सर्वेषाम् (पा० सू०):—भो, भगो, अघो और 'अ' 'आ' के वाद 'रु' के स्थान पर जो 'य' उसका लोप हो जाता है यदि वाद में कोई व्यंजन हो तब, यथा:—

भगोस् + नमस्ते = भगो रु नमस्ते = भगो य् नमस्ते = भगो नमस्ते।
भोस् + देवाः = भो रु देवाः = भो य् देवाः = भो देवाः।
अघोस् + याहि = अघो रु याहि = अघो य् याहि = अघो याहि।
देवास् + नम्याः = देवा रु नम्याः = देवा य् नम्याः = देवा नम्याः।

रोऽसुपि (पा० सू०)—यदि अहन् शब्द के वाद सुप् न हो तो अहन् के न् के स्थान पर 'र' हो जाता है, यथा:—

अहन् + अहः = अहर् अहः = अहरहः
अहन् + गणः = अहर् गणः = अहर्गणः

ढो ढे लोपः (पा० सू०):—यदि 'ढ' के वाद 'ढ' आवे तो एक 'ढ' का लोप होता है,

रोरि („ „):—यदि 'र' के वाद 'र' आवे तो एक 'र' का लोप हो जाता है,

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः (पा० सू०):—जहाँ 'ढ' अथवा 'र' का लोप् होता है तो उसके पूर्व ह्रस्व अण् (अ इ उ) को दीर्घ हो जाता है, यथा:—

लिढ् + ढः = लिढः = लीढः
लिढ् + ढे = लिढे = लीढे
पुनर् + रमते = पुन + रमते = पुना रमते
हरिर् + रम्यः = हरि + रम्यः = हरी रम्यः
शम्भुर् + राजते = शम्भु + राजते = शम्भू राजते
निर् + रस = नि रस = नीरस

निर् + रोग: = नि रोग: = नीरोग:
अजर्घर् + र् = अजर्घर् = अजर्घार् = अजर्घा:

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि (पा० सू०) :—एष और स के बाद सु (स्) का लोप हो जाता है, आगे कोई हल् हो यथा :—

एष स् + विष्णु: = एष विष्णु:
सस् + शम्भु: = स शम्भु:
एषस् + हसति = एष हसति
सस् + गच्छति = स गच्छति

सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् (पा० सू०) :—यदि ससुका सु-लोप करने पर ही पाद का पूरण होता हो तो सु का लोप हो जाता है अच् परे रहते, यथा :—

ससु + इमाम् विद्धिप्रभृतिम् = स + इमामविद्धि प्रभृतिम् = सेमामविद्धिप्रभृतिम्।

ससु + एष दाशरथी राम: = स एष दाशरथी राम: = सैष दाशरथी राम:

सैष दाशरथी राम: सैष राजा युधिष्ठिरः ।
सैष कर्णो महादानी, सैष भीमो महाबल: ।।

विशेष (णत्वविधान)

रषाभ्यां नोणः समानपदे (पा० सू०) :—एक पद में 'र्' 'ष्' के बाद यदि 'न' आवे तो 'ण्' हो जाता है, यथा :—

चतुर्नाम् = चतुर्णाम्
पुष + नाति = पुष्णाति
यूष् + न: = यूष्ण:
जीर + नः = जीर्ण:

ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् (वार्त्तिक) यदि ऋ के बाद भी 'न' आवे तो उसके स्थान पर 'ण' हो जाता है, यथा :—

+ नाम् = नृणाम्
पितृ + नाम् = पितॄणाम्
चतसृ + नाम् = चतसृणाम्

अच्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि (पा० सू०): —'र्' 'ष्' तथा 'न्' के बीच में कोई स्वर अथवा कवर्ग पवर्ग तथा ह् य् व् र् या अनुस्वार हो तो भी 'न्' के स्थान पर 'ण्' हो जाता है, यथा :—

रामेन=रामेण
मूर्खेन = मूर्खेण
गुरुना = गुरुणा
रामानाम् = रामाणाम्
मूर्खानाम् = मूर्खाणाम्
हरिना = हरिणा

विशेष:—किन्तु इससे अतिरिक्त अक्षरों के बीच में आने पर न् को 'ण' नहीं होता, यथा: – दृढेन, रसेन, अर्थेन, रसानाम् ।

पदान्तस्य =यदि पद के अन्त में 'न' आवे तो उसके स्थान पर 'ण' नहीं होता, यथा: ––रामान्, हरीन्, गुरून् इत्यादि ।

षत्व विधान

आदेशप्रत्यययो: । इण्को: (पा० सू०):—इण् (अ को छोड़कर स्वर और ह् य् व् र् ल्) कवर्ग के बाद में आने वाले अपदान्त (जो पद के अन्त में न हो) प्रत्यय और आदेश के 'स्' के स्थान पर 'ष' हो जाता है; यथा : —

रामेसु = रामेषु : हरिसु = हरिषु
चतुसुं = चतुषुं : मातृसु = मातृषु
सर्वेसाम् = सर्वेषाम् : वधूसु = वधूषु

नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि (पा० सू०):—यदि इण् और 'स्' के मध्य में नुम् (अनुस्वार) विसर्ग और श्‌ष्स् का व्यवधान भी हो तो भी 'स्' के स्थान पर 'ष्' हो जाता है, यथा :—

धनूंसि = धनूंषि: आयूंसि = आयूंषि
आशी:सु आशी:षु पिठठी:सु = पिपठी:षु
चक्षु:सु=चक्षु:षु हवींसि = हवींषि

चो: कु: (पा० सू०) :—चवर्ग को कवर्ग हो जाता है, झल् आगे रहने पर तथा पदान्त में, यथा :—

वाच् = वाक्, वाग्
सुयुज् = सुयुक्, सुयुग
युज् = युक्, युग्

तृतीय अध्याय

कारक [CASE]

क्रिया और द्रव्य का संयोग तथा क्रिया की सिद्धि करने वाले को कारक कहते हैं। "क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्" अर्थात् जिसका क्रिया के साथ सम्बन्ध होता है उसे कारक कहते हैं। जिन शब्दों का क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता, वे कारक नहीं कहलाते। इसलिये सम्बन्ध (षष्ठी) को कारक नहीं माना जाता। जैसे "बालक के पिता से रास्ता पूछ रहा है।" यहाँ पर बालक का क्रिया (पूछना) से साक्षात् सम्बन्ध नहीं हैं अतः इसे कारक नहीं कहेंगे। भाव यह है कि क्रिया का जिससे साक्षात् सम्बन्ध हो उसे ही कारक कहते हैं। कारक के छः प्रकार होते हैं—

कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्॥

× × ×

कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक हैं। सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया है। उसकी गणना कारकों में नहीं होती। इस प्रकार कारकों की संख्या छः ही हैं। इन कारकों के बोध के लिये, प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्तियाँ लगाई जाती हैं। सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति है। किन्तु कारक 'विभक्ति' का पर्यायवाचक शब्द नहीं हैं। क्योंकि कहीं-कहीं कर्त्ता में प्रथमा और कहीं तृतीया विभक्ति हो जाती है। इसी प्रकार कहीं कर्म में द्वितीया और कहीं प्रथमा विभक्ति हो जाती है इस प्रकार कारकों की

संख्या छः ही है किन्तु व्यवहार में सात विभक्तियाँ (कारक) मानी जाती हैं। इसके अतिरिक्त एक सम्बोधन कारक भी होता है, जिसका अन्तर्भाव कर्त्ताकारक में है।

कर्त्ताकारक

(Nominative)

१. "प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचन-मात्रे प्रथमा" (पा० सू० १३।३।४६) प्रथमा विभक्ति का प्रयोग केवल किसी शब्द का अर्थ बतलाने के लिये अथवा लिङ्ग, परिमाण (वजन, नाप) या वचन, संख्या बतलाने के लिये होता है। जैसे :

प्रातिपदिकार्थ मात्र में	उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्.
लिङ्ग मात्र में	तटः , तटी, तटम्
परिमाण मात्र में	द्रोणो व्रीहिः (एक द्रोण चावल)
वचन मात्र में	एकः , द्वौ, बहवः

कर्मकारक

(Accusative Case)

१. "कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म" (पा० सू०) कर्त्ता को क्रिया के द्वारा जो अत्यन्त अभीष्ट हो उसे कर्म कहते हैं।

२. "कर्मणि द्वितीया" (पा० सू०) अनुक्त कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे— देवदत्तः हरिं भजति = देवदत्त हरि को भजता है।

३. "तथायुक्तं चानीप्सितम्" (पा० सू०) ईप्सित के समान क्रिया के द्वारा कहीं-कहीं अनीप्सित में [अत्यन्त अभीष्ट न होने पर भी] कर्म संज्ञा

होती है। जैसे:–ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते = भात खाता हुआ विष खाता है। यहाँ पर विष खाना अभीष्ट नहीं है फिर भी विष कर्म कारक हो गया और इसमें द्वितीया विभक्ति हो गई। इसी प्रकार 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' गाँव जाता हुआ घास छूता है—में तृण की कर्म संज्ञा होती है।

४. गत्यर्थक धातुओं के प्रयोग में द्वितीया विभक्ति होती है, यथा :—"स परं विषादमगच्छत्" (पञ्चतंत्र) = वह परम विषाद को प्राप्त हुआ। "पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम" (कुमारसम्भव) = वह सुमुखी पीछे 'उमा' नाम से प्रसिद्ध हुई।

५. अकर्मक धातुओं के पूर्व उपसर्ग लगाने से प्राय: वे सकर्मक हो जाती हैं। ऐसी धातुओं के प्रयोग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे : भू (भव) = होना (अकर्मक),

अनु + भू (अनुभव) = अनुभव करना (सकर्मक)

स: मानव: दु:खमनुभवति = वह मनुष्य दु:ख का अनुभव करता है।

प्रजा राजानमनुवर्त्तते = प्रजा राजा का अनुसरण करती है।

६. अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् (वा०) अकर्मक धातुओं के योग में, देश, काल, भाव और गमन के योग्य मार्ग इनकी कर्म संज्ञा होती है। जैसे :—

कुरून् स्वपिति=कुरु देश में सोता है। यहाँ 'स्वपिति' अकर्मक धातु के योग में देश वाचक कुरु की कर्म संज्ञा होग ई।

मासमास्ते = महीने पर रहता है। यहाँ काल वाचक मास की कर्म संज्ञा हुई।

गोदोहमास्ते = गोदोहन काल तक रहता है। यहाँ 'गोदोहन' भाववाचक की कर्म संज्ञा हुई।

क्रोशमास्ते = क्रोश भर हैं। यहाँ मार्ग व्यंजक 'क्रोश' की कर्मसंज्ञा हो गई।

७. अधिशीङ्स्थासां कर्म (पा॰सू॰) अधि उपसर्ग पूर्वक शीङ् (शेते) 'स्था' और 'आस्' धातु के आधार की कर्मसंज्ञा होती है। यथा :—

हरिः वैकुण्ठमधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा (सि॰ कौ॰) = हरि वैकुण्ठ में लेटते हैं, ठहरते हैं और वैठते हैं।

चन्द्रापीडो मुक्ताशिलापट्टमधिशिश्ये (काद॰) = चन्द्रापीड मुक्ताशिला पट्ट पर सो गया।

अर्धासनं गोत्रभिदोऽधितिष्ठौ (रघु॰) = इन्द्र के आधे आसन पर वैठ गया।

मनुष्यवाह्यं चतुरस्रयानमध्यास्य कन्यापरिवारशोभि (रघु :)

८. "अभिनिविशश्च" (पा॰ सू॰) 'नि', 'अभि', उपसर्ग पूर्वक 'विश्' धातु के आधार में कर्म कारक होता है, जैसे :—
अभिनिविशते सन्मार्गम् (सि॰ कौ॰) सन्मार्ग पर जाता है।

९. "उपान्वध्याङ्वसः" (पा॰ सू॰) 'उप', 'अनु', 'अधि' और 'आ' उपसर्ग पूर्वक वस धातु के आधार की कर्मसंज्ञा होती है ; जैसे :—

उपवसति काशीं विश्वनाथः = काशी में विश्वनाथ रहते हैं।
इसी प्रकार-अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा वैकुण्ठ हरिः (सि॰कौ॰)
अभुक्त्यर्थस्य न (वार्त्तिक)—जहाँ पर 'उप' उपसर्ग पूर्वक वस् धातु का उपवास करना (न खाना) अर्थ हो वहाँ कर्म नहीं होता, जैसे—

'वने उपवसति'

१०. "उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥

उभयतः (दोनों तरफ), सर्वतः (चारों तरफ), धिक् (धिक्कार), उपर्युपरि (ऊपर-ऊपर), अधोधः (नीचे-नीचे), अध्यधि (ऊपर-ऊपर) इन शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे :—

उभयत: कृष्णं गोपा: = कृष्ण के दोनों ओर गोप हैं।
सर्वत: कृष्णं गोपिका: = कृष्ण के चारों ओर गोपियाँ हैं।
धिक् कृष्णाभक्तम् (सि० कौ०) = कृष्ण के अभक्त (जो भक्त नहीं हैं) को धिक्कार है।
उपर्युपरि लोकं हरि: (सि० कौ०) = हरि संसार के ऊपर हैं।
अधोऽध: लोकं हरि: (सि० कौ०) = हरि संसार के नीचे हैं।
अध्यधि लोकं (सि० कौ०) =
धिक् तां तं/च मदनं च इमं/च मां च (भर्तृहरि)

११. "अभित: परित: समयानिकषा हाप्रति योगेऽपि (वार्तिक) = अभित: (दोनों तरफ) परित: (चारों तरफ), समया, निकषा (निकट), हा (अफसोस), प्रति (ओर, पर) के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे:—

प्रयागमभित: नद्यौ स्त: = प्रयाग के दोनों ओर नदियाँ हैं।
ग्रामं परित: वृक्षा: सन्ति = गाँव के चारों ओर वृक्ष हैं।

ग्रामं समया नदी = गाँव के पास नदी है।

निकषा लङ्काम् = लङ्का के पास।

हा ! नास्तिकम् = नास्तिक पर अफसास।

बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् (सि० कौ०) = भूखे को कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

मन्दोत्सुकोऽस्मि नगरगमनं प्रति (शाकु०) = नगर जाने के लिये मेरी उत्सुकता नहीं रही।

१२. 'अनुर्लक्षणे' (पा० सू०) लक्षण द्योत्य होने पर अर्थात् विशेष कारण के लक्षित करने पर 'अनु' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है।

१३. "कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया" (पा० सू०) कर्मप्रवचनीय के योग में द्वितीया होती है। जैसेः —

जपमनु प्रावर्षत् (सि० कौ०) = जप के बाद वर्षा हुई।

यहाँ पर जप के समाप्त होने पर वर्षा हुई अर्थात् वर्षा जप के कारण हुई। इसलिये 'जप' कर्मप्रवचनीय हुआ और इसमें द्वितीया विभक्ति हुई।

१४. "लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः" (पा० सू०) लक्षण, इत्थंभूताख्यान, भाग, वीप्सा इन अर्थों का विषय होने पर प्रति, परि, अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है और उनके योग में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे : —

लक्षण = वृक्षं प्रति पर्यनु वा विद्योतते विद्युत् (सि० कौ०) = वृक्ष के नीचे या सामने बिजली चमकती है।

इत्थंभूताख्यान = भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा सि० कौ०) =

भाग = लक्ष्मीः हरिं प्रति पर्यनुवा (सि० कौ०) = लक्ष्मी हरि का अंश है।

वीप्सा = वृक्षं वृक्षं प्रतिपर्यनुवा (सि० कौ०) = प्रत्येक वृक्ष पर।

१५. "हीने" (पा० सू०) हीन अर्थ द्योत्य होने पर 'अनु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। जैसे :—

अनु हरिं सुराः (सि० कौ०) = देवता हरि से न्यून है।

१६. "उपोऽधिके च" (पा० सू०) अधिक और हीन अर्थ द्योत्य होने पर 'उप' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है, जैसे :—

उप हरिं सुराः (सि० कौ०) देवता हरि से हीन हैं।

१७. "अभिरभागे" (पा० सू०) भाग (अंश) से भिन्न अर्थ में अभि (समीप, तरफ) की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। जैसे :—

भक्तो हरिमभि (सि० कौ०) = भक्त हरि के समीप है।

१८. "अतिरतिक्रमणे च" (पा० सू०) अतिक्रमण और पूजा अर्थ में 'अति' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। जैसे :—

अतिदेवान् कृष्णः = कृष्ण देवों से बढ़कर या पूज्य हैं।

१९. "अन्तरान्तरेण युक्ते द्वितीया" (पा० सू०) अन्तरा (बीच) और अन्तरेण (बिना) के योग में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे :—

अन्तरा त्वां मां च हरिः (सि० कौ०) = तुम्हारे और हमारे बीच में हरि है।

अन्तरेण हरिं न सुखम् (सि० कौ०) हरि के बिना सुख नहीं है।

क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां लभते (शाकु०)

२०. "एनपा द्वितीया" (पा० सू०) एनप् प्रत्ययान्त शब्दों के साथ द्वितीया एवं षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे :—

वाटिकां दक्षिणेन (शाकु०) = वाटिका के दक्षिण

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्य दीपम् (मेघ०) = वहाँ पर कुवेर के महल के उत्तर में मेरा घर है।

२१. "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" (पा० सू०) अत्यन्त संयोग होने पर कालवाची शब्द अथवा मार्गवाची शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा :—

मासमधीते = महीने पर पढ़ता है।

क्रोशं कुटिला नदी = कोशभर टेढ़ी नदी है।

सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता (महा०) = हे राजन्! कुबेर की सभा सौ योजन लम्बी है।

एवं क्रोशं अधीते; क्रोशं गिरिः।

अभ्यासार्थं

१. सत्य के बिना संसार में सुख नहीं है।
२. बनारस नगर के चारों ओर सुन्दर वन हैं।
३. सुशीला तथा राधा के बीच में मीरा है।
४. राम चित्रकूट पर्वत पर बहुत दिन रहे।
५. राजा सिंहासन पर बैठे हैं।
६. भक्त देवमन्दिर में दर्शनार्थ जाता है।
७. गाँव के पास एक बड़ी नदी है।
८. आचार्य के पीछे छात्र जाते हैं।
९. वह चार वर्ष में व्याकरण पढ़ा।
१०. कंजूस को धिक्कार है।
११. नास्तिक पर अफसोस! जो ईश्वर को नहीं मानता।
१२. परिश्रम के बिना विद्या नहीं आती।
१३. गाँव के दक्षिण ओर एक बाग है।
१४. वह नगरी कोसों लम्बी है।
१५. पृथ्वी के ऊपर-ऊपर वायु चलता है।

द्विकर्मक धातुएं

२२. संस्कृत में कुछ ऐसी धातुएँ हैं जो सामान्य कर्म के अतिरिक्त एक और कर्म लेती हैं। उन्हें अकथित कर्म कहते हैं (Indirect Object) प्रायः निम्नलिखित धातुएँ ही द्विकर्मक होती हैं—

दुह्याच् पच् दण्ड् रुधि प्रच्छचि ब्रू शासु जि मथ् मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी हृ कृष्वहाम्॥

× × × ×

दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (कहना), शास् (शासन करना), जि (जीतना), मथ् (मथना), मुष् (चुराना) नी (ले जाना), हृ (हरना), कृष् (जोतना, खींचना) इन धातुओं के साथ तथा इनको अर्थ की अन्य धातुओं के साथ भी साधारण कर्म के अतिरिक्त एक कर्म और आता है, जैसे :—

गाम् दोग्धि पयः	=	गाय से दूध दुहता है।
बलिं याचते वसुधाम्	=	बलि से पृथ्वी माँगता है।
तण्डुलान् ओदनं पचति	=	चावलों से भात पकाता है।
गर्गान् शतं दण्डयति	=	गर्गों पर सौ रुपये दण्ड करता है।
व्रजमवरुणद्धि गाम्	=	व्रज में गाय को रोकता है।
वृक्षमवचिनोति फलानि	=	पेड़ से फल इकट्ठा करता है।
गुरुः शिष्यं धर्मं शास्ति	=	गुरु शिष्य को धर्म का उपदेश देता है।
शतं जयति देवदत्तम्	=	देवदत्त से सौ रुपये जीतता है।
माणवकं धर्मं ब्रूते	=	बालक से धर्म कहता है।
माणवकं पन्थानं पृच्छति	=	बालक से रास्ता पूछता है।
सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति	=	क्षीरसागर से अमृत मथता है।
देवदत्तं शतं मुष्णाति	=	देवदत्त से सौ रुपये चुराता है।
ग्रामं अजां नयति	=	गाँव में बकरी ले जाता है।
चौरः कृपणं धनं हरति	=	चोर कंजूस का धन चुराता है।
नराः वसुधां कर्षन्ति	=	मनुष्य पृथ्वी को जोतते हैं।
स ग्रामं भारं वहति	=	वह गांव में बोझा ले जाता है।

इनके अर्थ की अन्य धातुओं के उदाहरण—

माणवकं धर्मं भाषते वक्ति वा	=	बालक से धर्म कहता है।
बलिं भिक्षते वसुधाम्	=	बलि से पृथ्वी माँगता है।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम् ।

२३. उपर्युक्त धातुओं के साथ जो दो कर्म होता है उसमें एक प्रधान कर्म एवं दूसरा गौण कर्म होता है, जो वक्ता की इच्छा से किसी सूत्र विशेष से कर्म होता है उसे गौण (अकथित) कर्म कहते हैं।

गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम् ।
विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः ।। (सि० कौ०)

× × × ×

उपर्युक्त धातुओं में से कर्मवाच्य बनाने में तथा १२ धातुओं (दुह से लेकर मुष तक के) गौण कर्म में नी, हृ, कृष, वह के प्रधान कर्म में प्रथमा विभक्ति होती हैं।

और शेष कर्म अर्थात् दुह् आदि १२ धातुओं के प्रधान कर्म में तथा नी, हृ, कृष्. के गौण कर्म में द्वितीया विभक्ति होती हैं; जैसे—

कर्तृवाच्य		कर्मवाच्य
गोपः धेनुं पयः दोग्धि ।	=	गोपेन धेनुः पयः दुह्यते ।
देवाः सुधां सागरं ममन्थुः ।	=	देवैः सागरः सुधां ममन्थे ।
सोऽजां ग्रामं नयति, हरति कर्षति वा	=	तेन अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते कृष्यते वा ।

: अभ्यासार्थं :

१—गोपाल अपनी गायों से दूध दुहता है ।

२—दरिद्र राजा से कपड़े माँगते हैं ।

३—वह चावलों से भात पकाता है ।

४—राजा चोरों पर सौ रुपया जुर्माना करता है ।

५—कृष्ण वन में गायों को घेरता है।

६—गुरु ने छात्रों से अनेक प्रश्न पूछे किन्तु वे उत्तर न दे सके।

७—माली बगीचे से अच्छे-अच्छे फूल चुनता है।

८—तब वैशम्पायन ने राजा से कहा कि सत्य श्रेष्ठ धर्म है।

९—आचार्य शिष्यों को व्याकरण सिखाता है।

१०—राजा शत्रु से सौ गाँव जीत लिये।

११—भगवान ने क्षीरसागर से १४ रत्न मथे थे।

१२—चोर राजा के हजार रुपये चुराता है।

१३—ग्वाला गायों को घर ले जाता है।

१४—चोर कंजूस का धन हरण कर लिये।

१५—धीर मनुष्यों को विषयलोभ पास को नहीं खींच सकता।

१६—लकड़ी बेचने वाला लकड़ी का बोझा बाजार बेचने के लिये ले जाता है।

प्रेरणार्थक क्रियाएं (णिजन्त)

२४. 'हेतुमति च' (पा० सू०) प्रयोजक (प्रेरणा करने वाले) के व्यापार में धातु से णिच् (अप्) हो जाता है। मूल धातुओं में जो कर्त्ता होता है वह णिजन्त (प्रेरणार्थक क्रिया) में तृतीया विभक्ति हो जाती है। यथा :—

देवदत्तः ओदनं पचति।	देवदत्तेन ओदनं पाचयति।
देवदत्त भात पकाता है।	देवदत्त से भात पकवाता है।
नृपः धनं ददाति।	मंत्री नृपेण धनं दापयति।
राजा धन देता है।	मंत्री राजा से धन दिलाता है।
छात्रः दोषं त्यजति।	गुरुः छात्रेण दोषं त्याजयति।

२५. "गति-बुद्धि-प्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्मकाकर्मकाणामणि कर्त्ता स णौ" (पा० सू०) गत्यर्थक, बुद्धयर्थक, ज्ञानार्थक, भक्षणार्थक तथा इन्हीं अर्थ को व्यक्त करने वाली अन्य धातुओं में जिनका कर्म कोई (शब्द) या 'साहित्यिक' विषय हो, उन धातुओं में, और अकर्मक धातुओं में जो मूल दशा में कर्त्ता है वह ण्यन्त में कर्म हो जाता है; यथा :—

१. शत्रवः स्वर्गमगच्छन् ।	शत्रून् स्वर्गं अगमयत् ।
२. ते वेदार्थं अविदुः ।	तान् वेदार्थम् अवेदयत् ।
३. देवता अमृतं आश्नन् ।	देवानमृतमाशयत् ।
४. विधिः वेदम् अध्यैत् ।	विधिं वेदमध्यापयत् ।
५. पृथ्वी सलिले अस्ति ।	पृथ्वीं सलिले आसयत् ।
६. ब्रह्मचारी गृहं प्रविशति ।	ब्रह्मचारिणं गृह प्रवेशयति ।
७. शिष्यः शास्त्रं जानाति ।	गुरुः शिष्यं शास्त्रं ज्ञापयति ।

२६. "दृशेश्च" (वार्त्तिक) दृश धातु के प्रयोग में मूल कर्त्ता में कर्म हो जाता है । यथा :—

भक्ताः हरिं पश्यन्ति = दर्शयति हरि भक्तान् ।

भक्त हरि को देखते हैं = भक्त को हरि का दर्शन कराता है ।

२७. जल्पति-प्रभृतीनामुपसंख्यानम् (वार्त्तिक) = जल्पति, प्रभृति धातुओं के योग में धातु के मूल कर्त्ता णिजन्त में कर्म हो जाता है, यथा :—

जल्पति भाषयति वा पुत्रं देवदत्तः = पुत्रः जल्पति भाषयति वा देवदत्त पुत्र से बुलवाता है = पुत्र बोलता है ।

२८. "अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्" (वार्त्तिक) अभि उपसर्ग पूर्वक वद् धातु तथा दृश् धातु के आत्मनेपद में धातु के मूल कर्त्ता में णिजन्त में विकल्प से कर्म कारक होता है । यथा :—

अभिवादयते दर्शयते वा भक्तं भक्तेन वा =
भक्त से प्रणाम करवाता है या दिखाता है।

२९. "नीवह्योर्न" (वार्त्तिक) नी (ले जाना) वह (ढोना) धातुओं के मूल कर्त्ता को णिजन्त में तृतीया विभक्ति होती है, द्वितीया विभक्ति नहीं होती : यथा—

भृत्यः भारं नयति वहति वा। भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा
भृत्य भार ले जाता है। भृत्य के द्वारा भार ढोवाता है।

३०. "आदिखाद्योर्न" (वार्त्तिक) अद् और खाद् के मूल कर्त्ता को (णिजन्त) में कर्म नहीं होता; किन्तु तृतीया विभक्ति होती है। यथा :—

वटुः अन्नं अत्ति खादति वा।=आदयति खादयति वा अन्नं वटुना।
वटु अन्न खाता है = वटु से अन्न खिलवाता है।

३१. भक्षेरहिंसार्थस्य न (वार्त्तिक)—भक्ष् धातु यदि अहिंसार्थक हो तो अद् के मूल कर्त्ता में णिजन्त में कर्म नहीं होता किन्तु तृतीया विभक्ति होती है। यथा :—

वटुः अन्नं भक्षयति। = भक्षयति अन्नं वटुना॥
वटु अन्न खाता है=वटु से अन्न खिलाता है॥

३२. विशिष्ट ज्ञानार्थक 'स्मृ' तथा 'घ्रा' धातु के प्रयोग में धातु के मूल कर्त्ता में द्वितीया विभक्ति नहीं होती; यथा :—

स्मरति, जिघ्रति देवदत्तः = स्मारयति, घ्रापयति देवदत्तेन।
देवदत्त स्मरण करता है, सूँघता है=देवदत्त से स्मरण करवाता है, सुँघवाता है।

३३. "शब्दायतेर्न" (वार्त्तिक)
'शब्दाय' धातु के मूल कर्त्ता को 'णिजन्त' में कर्म नहीं होता। यथा :—

शब्दायति देवदत्तः । = शब्दापयति देवदत्तेन ।

देवदत्त शब्द करता है । = देवदत्त से शब्द करवाता है ।

३४. "हृक्रोरन्यतरस्याम्" (पा० सू०)

हृ और कृ धातुओं का मूलकर्त्ता में णिजन्त में विकल्प से कर्म होता है। यथा :—

भृत्यः कटं करोति, हरति वा ।
भृत्य चटाई बनाता है ले जाता है ।
भृत्येन भृत्यं वा कटं कारयति, हारयति वा ।
भृत्य से चटाई बनवाता है या ढोवाता है ।

अभ्यासार्थ

१. राजा नौकर से कार्यं करवाता है ।

२. वह बगीचे से फूल तोड़कर अपने मित्र को सुँघाता है ।

३. आचार्य छात्रों को वेद पढ़ाते हैं ।

४. काशी के प्रसिद्ध विद्वान ने नगरवासियों को कथा सुनाई ।

५. गुरु छात्रों को ज्ञान का मार्ग दिखाता है ।

६. पिता पुत्र से प्रणाम करवाता है ।

७. अपने नौकरों से वह भोजन पकवाता है ।

८. विद्वान सेठ से गरीबों को वस्त्र दिलवाता है ।

९. पिता पुत्रों को स्कूल भेजता हैं ।

१०. माता बच्चे को दूध पिलाती है ।

११. अध्यापक छात्रों से लेख लिखवाता है ।

१२. राजा सिपाहियों से शत्रुओं को मरवाता है ।

१३. सेठ ब्राह्मण को इच्छा के अनुकूल भोजन करवाता है।

१४. कौरव पाण्डवों को वन भेजता है।

१५. माता बालक को चन्द्र को दिखाती है।

विशेष—

कर्म सात प्रकार का होता है।

१. ईप्सित　　२. अनीप्सित　　३. ईप्सितानीप्सित

४. उक्ताकथित　　५. अनुक्ताकथित　　६. अनुक्तकर्तृकर्म

७. उक्तकर्तृ कर्म

किन्तु ईप्सित तथा अनीप्सित में उक्त और अनुक्त लगाने से कर्म और बढ़ जाते हैं। जैसे :—

१. उक्तेप्सित　　२. अनुक्तेप्सित

३. उक्तानीप्सित　　३. अनुक्तानीप्सित

१ ईप्सित—

(अ) उक्तेप्सित कर्म—

सकर्मकाणाम् धातूनां यदा कर्मणि लादयः।
तदैवोक्तेप्सितं कर्म प्रथमा तत्र कीर्त्तिता ॥

अर्थात्—यदि सकर्मक धातु से कर्म में लकार होता है तब ईप्सित कर्म उक्त होता है। और इसमें प्रथमा विभक्ति होती है।

जैसे—'रामेण पाठशाला गम्यते' यहाँ कर्म में लकार हुआ है। अतः कर्म उक्त हुआ। और कर्ता अनुक्त, अतः कर्त्ता राम में तृतीया विभक्ति और अनुक्त कर्म में प्रथमा विभक्ति हुई।

(इ) अनुक्तेप्सितकर्म—

सकर्मकाणां धातूनां यदा कर्त्तरि लादयः।
तदानुक्तेप्सितं कर्म द्वितीया तत्र कीर्तिता ॥

अर्थात् जब सकर्मक धातुओं से कर्त्ता में लकार होता है तब कर्त्ता उक्त और कर्म अनुक्तेप्सित कर्म होता है। और उक्त कर्त्ता में प्रथमा तथा अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—

रामः पाठशालां गच्छति। यहाँ पाठशाला ईप्सित कर्म है कर्त्ता में प्रत्यय होने से उक्त कर्त्ता में प्रथमा और अनुक्तेप्सित कर्म में द्वितीया विभक्ति हुई।

२. अनीप्सित कर्म—

यदा कर्त्तुरनिष्टं यत्कर्मत्वेन विवक्षितम्।
तदानीप्सिततमं कर्म उक्तानुक्ततया द्विधा॥

× × ×

अर्थात् जब कर्त्ता का अनिच्छित कारक भी कर्म होता है तब अनीप्सित कर्म होता है। यह उक्त और अनुक्त भेद से दो प्रकार का होता है।

उक्तानीप्सित, यथा—"क्रुद्धेन विषं खाद्यते" यहाँ कर्म में प्रत्यय है। और 'विषम्' कर्म अनीप्सित है अतः उक्तानीप्सित कर्म हुआ और उक्त कर्म में प्रथमा तथा अनुक्त में तृतीया विभक्ति हुई।

अनुक्तानीप्सित—"क्रुद्धः विषं खादति" कर्म (विष) अनीप्सित है। कर्त्ता में प्रत्यय होने से उक्त कर्त्ता में प्रथमा और कर्म अनुक्त होने से द्वितीया विभक्ति हुई।

३. ईप्सितानीप्सित कर्म

यथा :—पायसं भक्षयंस्तत्पतितं रजोऽभ्यवहरति कुमारः।

अर्थात् कुमार खीर खाते हुए उसमें पड़ी धूल भी खाता है। यहाँ इच्छित (ईप्सित) खीर खाते हुए अनिच्छित (अनीप्सित) उसमें पड़ी धूलि (बिना इच्छा) के खाता है। अतः धूलि कर्मकारक हुआ।

४. अनुक्ताकथितकर्म—

यथा—'गां दोग्धि पयः' यहाँ गाम् अनुक्ताकथित कर्म है। और 'पयः' अनुक्तेप्सित कर्म है। अतः दोनों में द्वितीया हुई।

५. उक्ताकथितकर्म

यथा :—"गौर्दुह्यते दुग्धं गोपालेन" यहाँ दुग्ध ईप्सित कर्म है और कर्म में प्रत्यय होने से 'गौ' उक्ताकथित कर्मकारक हुआ। अतः ईप्सित कर्म दुग्धं में द्वितीया तथा उक्ताकथित कर्म गौः में प्रथमा विभक्ति हुई।

६ अनुक्त कर्तृकर्म

यथा–गच्छति ग्रामं पथिकः तं धनी प्रेरयति।=गमयति ग्रामं धनी पथिकं यहाँ णिच् प्रत्यय होकर कर्त्ता में लकार हुआ है, अतः शुद्ध कर्त्ता कर्म हुआ। इसमें द्वितीया विभक्ति हुई।

७. उक्त कर्तृकर्म

"गम्यते ग्रामः पथिको धनिना" यहाँ धातु से णिच् प्रत्यय होकर कर्म में लकार हुआ है। अतएव कर्म उक्त होने से प्रथमा विभक्ति हुई।

तृतीया कारक (Instrumental)

१, "साधकतमं करणम्" (पा० सू०) क्रिया की सिद्धि में जो अत्यन्त उपकारक (सहायक) हो वह करण-कारक होता है। अर्थात् जिसकी सहायता से कर्त्ता अपना कार्य पूरा करता है उसे करण-कारक कहते हैं।

यथाः—स लेखन्या पत्रं लिखति—यहाँ वह कलम की सहायता से लेखन कार्य पूरा कर रहा है। अतः लेखनी करण कारक हुआ।

२. (i) "स्वतंत्र: कर्त्ता" (पा० सू०) जो क्रिया करने में आप ही सहायक हो उसकी कर्तृ संज्ञा होती है।

(ii) "तत्प्रयोजको हेतुश्च" (पा० सू०) कर्त्ता को प्रेरित करने वाले को हेतुकर्त्ता कहते हैं।[1]

---

१. प्रवृत्तौ च निवृत्तौ वा य: स्वतंत्रं प्रयोजयेत्।
हेतुकर्त्ता भवेदेष उक्तानुक्तभिदा द्विधा॥
× × ×

प्रवृत्ति और निवृत्ति (अर्थात् विधि और निषेध) में जो स्वतंत्र होकर प्रेरित करे वह हेतुकर्त्ता कहलाता है। वह हेतु कर्त्ता उक्त अनुक्त भेद से दो प्रकार का होता है। १. अभिहित हेतुकर्त्ता २. अनभिहित हेतुकर्त्ता।

१. अभिहित हेतुकर्त्ता यथा :—

पण्डित: छात्रान् ज्ञानं लम्भयति=अर्थात् पण्डित छात्रों को ज्ञान प्राप्त कराता है। यहाँ पण्डित अभिहित हेतुकर्त्ता है, और ज्ञान अनभिहित हेतुकर्म है, छात्रान् कर्तृ. कर्म है क्योंकि "छात्रा: ज्ञानं लभन्ते" यहाँ छात्र कर्त्ता था किन्तु णिजन्त में जब कर्त्ता में प्रत्यय हुआ तो छात्र शब्द प्रेरित होने से कर्म होता है।

२. अभिहित हेतुकर्त्ता यथा :—

"ज्ञानं लभन्ते छात्रा: पण्डितेन" यहाँ ज्ञान अनभिहित कर्म है, छात्र कर्तृकर्म है और अभिहित भी है। और पण्डितेन अनभिहित हेतुकर्त्ता है, अत: अनभिहित हेतुकर्त्ता होने से इसमें तृतीया विभक्ति हुई। सारांश यह कि जब सकर्मक तथा अकर्मक धातुओं से 'नवगणिक' में कर्त्ता में लकार होता है, तब स्वतंत्र कर्त्ता अभिहित (उक्त) होता है। जब सकर्मक धातु से कर्म में प्रत्यय होता है तब स्वतंत्र कर्त्ता अनभिहित (अनुक्त) होता है। इसी प्रकार जब णिजन्त में धातु से कर्त्ता में प्रत्यय होता है तब अभिहित (उक्त) हेतुकर्त्ता होता है। और जब णिजन्त में कर्म में प्रत्यय होता हैं तब अनभिहित (अनुक्त) हेतु कर्त्ता होता है।

३. "कर्तृकरणयोस्तृतीया" (पा० सू०) अनभिहित (अनुक्त) कर्त्ता में तथा करण में तृतीया होती है, जैसे :—

रामेण वाणेन हतो वाली = राम ने वाण से वाली को मारा।

यहाँ 'क्त' प्रत्यय कर्म में होने से कर्म उक्त और राम (कर्त्ता) अनुक्त हुआ। अतएव अनुक्त कर्त्ता राम में तृतीया विभक्ति हुई। कर्म (वाली) उक्त होने से उसमें प्रथमा विभक्ति हुई 'वाण' साधन होने से उसमें करण में तृतीया विभक्ति हुई।

४. प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वार्त्तिक) प्रकृति, प्रायः, गोत्र, सम-विषम, द्विद्रोण आदि शब्दों के साथ तथा इनके अर्थों में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—

प्रकृत्या चारुः=स्वभाव से ही सुन्दर।
प्रायेण याज्ञिकः=प्रायः याज्ञिक है।
माठरोऽस्मि गोत्रेण=गोत्र से माठर हूं।
गोत्रेण गार्ग्यः=गोत्र से गार्ग्य है।
समेनैति=सम प्रदेश को जाता है।
विषमेण धावति=ऊँचे नीचे दौड़ता है।
द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति=दो द्रोण सम्बन्धी धान खरीदता है।
सुखेन गच्छति=सुख से जाता है।
दुःखेन याति=दुख से जाता है।
सहस्रेण धान्यं क्रीणाति। छात्रः सरलतयाः पठति।

५. शपथ बोधक शब्दों के योग में जिस नाम से शपथ ली जाती है, उसमें तथा वाहन (साधन) गत्यर्थक धातुओं के योग में करण-कारक होता है और करण-कारक में तृतीया विभक्ति होती है।

जैसे :— **जीवितेनैव** शपते ते = मैं तुमसे प्राणों की शपथ करता हूँ।

विमानेन गच्छन् = विमान से जाते हुये।

रथेन गच्छति राजा = राजा रथ से जाता है।

६. साद्दश्यार्थ एवं समानता वाची शब्दों के साथ तथा वाहनार्थक (धारणार्थक) धातुओं के साथ आधार में तृतीया होती है, जैसे—

धनदेन समस्त्यागे, **विष्णुना** सदृशो वीर्ये = त्याग में कुबेर के समान (रामायण) पराक्रम में विष्णु के समान।

अस्य मुखं सीताया **मुखचन्द्रेण** संवदति (उत्तर) : इसका मुख सीता के मुख चन्द्र से मिलता है।

स्वरेण रामभद्रमनुहरति (उत्तर०) = स्वर में राम से मिलता है।

सः श्वानं **स्कन्धेनो**वाह (पंच०) = वह कुत्ते को कन्धे पर ढोता है।

भर्तुराज्ञां **मूर्ध्ना** आदाय (किरात शि०) स्वामी की आज्ञा सिर पर धारण कर।

७. अलम् के योग में अपि, किम्, कार्यम्, प्रयोजनम्, अर्थ, गुण, हीन इत्यादि शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती हैं।

जैसे :—अपि पंचालतनये अलं **विषादेन** (वेणीसंहार) = हे द्रौपदी दुःख मत करो।

अलम् हसितेन = मत हँसो

अलमतिविस्तरेण = बहुत विस्तार मत करो

अलं महीपाल तव श्रमेण । (रघु०) = महीपाल तुम्हारा श्रम बेकार है । तृणेनापि कार्यं भवतीश्वराणाम् (पंचतन्त्र) धनिकों को तृण से भी कार्य होता है ।

सुसन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति (पंच०) नीच पुरुष थोड़े से भी सन्तुष्ट होता है ।

किं तया क्रियते धेन्वा (पंच०) = उस गाय से क्या करना ।

कोऽर्थः पुत्रेण मूर्खेण (पंच०) = मूर्ख पुत्र से क्या प्रयोजन ।

देवपादानां सेवकैर्न प्रयोजनम् (पंच०) = श्रीमान् को नौकरों की आवश्यकता नहीं ।

धर्मेण हीनः पशुभिः समानः = धर्म से हीन पशुओं के समान हैं ।

धनेन किं यो न ददाति । जो नहीं देता है उसके धन से क्या लाभ ?

८. "अपवर्गे तृतीया" (पा० सू०) फल प्राप्त होने पर कालवाची तथा मार्गवाची शब्दों में (अत्यन्त संयोग होने पर) तृतीया विभक्ति होती है । जैसे :—द्वादशभिर्वर्षैः व्याकरणं श्रूयते (पंच०) = बारह वर्ष में व्याकरण पढ़ी जाती है ।

तेनाह्ना पाठोऽधीतः = उसने एक दिन में पाठ याद कर लिया ।

स सप्तभिर्दिनैः नीरोगो जातः = वह सात दिनों में नीरोग हो गया ।

९. "सहयुक्तेऽप्रधाने" (पा० सू०) सह, साकम्, सार्धम्, समम्, के साथ अप्रधान में भी तृतीया विभक्ति होती है, जैसे :—

नाहं मूर्खेण सह गच्छामि = मैं मूर्ख के साथ नहीं जाता ।

त्वं वानरेण साकं धावसि = तू वानरों के साथ दौड़ता है ।

पुत्रेण सहागतः पिता (सि० कौ०) = पुत्र के साथ पिता आया ।

१०. येनाङ्गविकारः (पा० सू०) जिस अंग से शरीर का विकार प्रसिद्ध हो उस अंग वाचक में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—

अक्ष्णा काणः = आँख का काना।

पादेन खञ्जः = पैर का लंगड़ा। पृष्ठेन कुब्जः = पीठ का कुबडा है।

कर्णाभ्यां बधिरः = कानों का वहरा आदि।

११. इत्थंभूतलक्षणे (पा० सू०) जिस लक्षण या चिह्न के द्वारा कोई वस्तु या मनुष्य लक्षित हो तो उस लक्षण बोधक शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—

जटाभिस्तापसः = जटा के द्वारा तपस्वी मालूम देता है।

१२. हेतौ (पा० सू०) हेतु अर्थ मे अर्थात्, किसी वस्तु क्रिया का हेतु (प्रयोजन) प्रकट करने वाले शब्दों में तृतीया विभक्ति होती है।

जैसेः—

पुण्येन, दृष्टो हरिः (सि० कौ०) = पुण्य के कारण हरि दिखाई दिये।

अध्ययनेन, वसति (सि० कौ०) = अध्ययन के हेतु (प्रयोजन) बसता है।

शतेन शतेन वत्सान् पाययति = सौ सौ बछड़ों को जल पिलाता है।

दण्डेन घटः = दण्ड से घड़ा वनता है।

१३. दिवः कर्म च (पा० सू०) 'खेलना' अर्थक दिव-धातु के प्रयोग में द्वितीया या तृतीया विभक्ति होती है। जैसे :—

अक्षैरक्षान् वा दीव्यति (सि० कौ०)—पाशों से जुआ खेलता है।

१४. संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि (पा० सू०) सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा धातु के कर्म में तृतीया या द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे—पित्रा पितरं वा संजानीते = पिता को जानता है।

अभ्यासार्थ

१. रमेश प्रातःकाल प्रतिदिन जल से मुख धोता है ।

२. यह बालक नाम से मोहन है ।

३. धर्म के समान पृथ्वी पर कोई दूसरा भाई नहीं है ।

४. विद्या से हीन मनुष्य का जीवन व्यर्थ है ।

५. विना परिश्रम के किसी प्रकार भी विद्या नहीं आती ।

६. उसके धन से क्या लाभ जो याचकों को दान नहीं देता ।

७. राम ने काशी जाकर एक ही माह में जाकर व्याकरण पढ़ डाली ।

८. सुरेश पैर का लंगड़ा और पीठ का कुबड़ा है ।

९. लड़कों ! शोर न करिये यहाँ लड़के पढ़ रहे हैं ।

१०. सारी प्रजा एक स्वर से बोल उठी कि महाराज आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ।

११. मैं तुम्हारे प्राणों की कसम खाकर कहता हूँ कि आपका कार्य अवश्य करूँगा ।

१२. रमेश उस मृग शावक को कंधे पर रख कर ले गया ।

१३. बालक भोजन के कारण यहाँ रहता है ।

१४. राजा घोड़े पर जाकर शत्रु का संहार किया ।

१५. ऐ बालकों ! तुम्हें इस पुस्तक से क्या प्रयोजन है ।

१६. शोक मत करो तुम्हारा पुत्र शीघ्र लौट आयगा ।

चतुर्थी कारक (Dative)

१. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् (पा०सू०) जिसके उद्देश्य से अर्थात्

जिसको कोई वस्तु दी जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं।[1]

२. सम्प्रदाने चतुर्थी (पा० सू०) सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे:—

विप्राय गाम् ददाति।=ब्राह्मण को गाय देता है। यहाँ ब्राह्मण के लिये गाय प्रदान करता है। अतः ब्राह्मण सम्प्रदान कारक हुआ है और इसमें चतुर्थी विभक्ति (ब्राह्मणाय) हुई।

'किं वस्तु विद्वन् गुरवे प्रदेयमिति'=हे विद्वन् गुरु को क्या देना है।

---

१. सम्प्रदान कारक तीन प्रकार का होता है।—(१) प्रेरक (२) अनुमन्तृक (३) अनिराकर्तृक।

(१) प्रेरक सम्प्रदान :—रामः भक्ताय मुक्तिं ददाति=राम भक्त को मुक्ति देता है। यहाँ जब भक्त भक्ति द्वारा राम को प्रेरित करता है तब राम भक्त को मुक्ति देता है।

(२) अनुमन्तृक सम्प्रदान :—जिसमें न प्रेरणा की जाय न निराकरण ही किया जाय उसे अनुमन्तृक सम्प्रदान कहते हैं। जैसे :—

तापसः वने फलपुष्पाणि रामाय ददाति=तपस्वी वन में राम को फल-फूल देता है।

यहाँ राम फल-फूल देने के लिये न प्रेरणा करता है न निराकरण।

(३) अनिराकर्तृक सम्प्रदान :—जिसमें प्रेरणा, निराकरण और अनुमति भी न हो, उसे अनिराकर्तृक सम्प्रदान कहते हैं। यथा—

पुरुषोत्तमाय पुष्पं ददाति=पुरुषोत्तम के लिये फूल देता है।

यहाँ पुरुषोत्तम पुष्प के लिये प्रेरणा तथा निराकरण नहीं करते हैं, और यह भी निश्चय नहीं होता कि पुष्प को स्वीकार ही कर लिया है।

३. **क्रियया यमभिप्रेति सोऽपि सम्प्रदानम् (वार्त्तिक)** क्रिया के द्वारा जो वस्तु अभिप्रेत हो उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे—

पत्ये शेते=पति को अनुकूल करने को सोती है। यहाँ पर पति अभिप्रेत हैं अतः उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई।

४. **यजे: कर्मण: करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा (वार्त्तिक)**— यज् धातु (यज्ञ करना) के प्रयोग में कर्म में करण और सम्प्रदान कारक होता है। यथा :—

पशुना रुद्रं यजते=वह रुद्र को पशु देता है। (चढ़ाता है) यहाँ कर्म पशु करण कारक और सम्प्रदान रुद्र में द्वितीया विभक्ति हुई।

५. **रुच्यर्थानां प्रीयमाण: (पा०सू०)** रुच् धातु तथा रुच् धातु के अर्थ की अन्य धातुओं के प्रयोग में प्रसन्न होने वाले में सम्प्रदान कारक होता है, जैसे :—

हरये रोचते भक्ति:=हरि को भक्ति अच्छी लगती है।

यतो मे रोचते ततो गमिष्यामि (शा०)=जहाँ मुझे अच्छा लगेगा वहाँ जाऊँगी।

विशेष :—प्रसन्न होने वाले की ही सम्प्रदान संज्ञा होती है। अन्य की नहीं जैसे

देवदत्ताय रोचते मोदक: पथि।=यहाँ पर देवदत्त को ही लड्डू प्रिय है अत: मार्ग की सम्प्रदान संज्ञा नहीं हुई।

६. **श्लाघ ह्नुङ् स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः (पा० सू०)**—श्लाघ्, ह्नुङ्, स्था, शप् इन धातुओं के प्रयोग में जिसको जनाया जाय उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा :—

गोपी स्मरात् **कृष्णाय** श्लाघते=गोपी कामवश हो कृष्ण की श्लाघा करती हैं।

गोपी स्मरात् कृष्णाय ह्नुते=गोपी कामवश हो कृष्ण को सपत्नी से दूर करती हैं।

गोपी स्मरात् कृष्णाय तिष्ठते=गोपी कामवश हो कृष्ण को स्थित होकर अपना अभिप्राय कहती हैं।

गोपी स्मरात् कृष्णाय शपते=गोपी कामवश हो कृष्ण को उलाहना देती हैं।

७. धारेरुत्तमर्णः (पा० सू०) 'धृ' धातु (ऋणी होना, उधार लेना, अर्थ में) के प्रयोग में ऋण देने वाले में सम्प्रदान कारक होता है, यथा :—

त्वं मह्यं शतं धारयसि (सि० कौ०)=तुम मुझसे १००) रु० ऋण ले रहे हो।

द्वे वृक्षसेचनके मे धारयसि (शाकु०)=तू मेरे दो वृक्ष सींचने की ऋणी हो!

८. स्पृहेरीप्सितः (पा० सू०) ण्यन्त 'स्पृह' धातु के प्रयोग में जो वस्तु चाही जावे उसमें सम्प्रदान कारक होता है; यथा :—

पुष्पेभ्यः स्पृहयति (सि० कौ०)=फूलों की स्पृहा करता है।

विशेष :—जो वस्तु ईप्सित मात्र हो उसी की सम्प्रदान संज्ञा होती है। अत्यधिक चाहे हुए की (ईप्सिततम) कर्म संज्ञा ही होगी। अत एव 'पुष्पाणि स्पृहयति' की सम्प्रदान संज्ञा नहीं हुई, क्योंकि यहाँ पुष्प ईप्सिततम है।

९. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रतिकोपः (पा० सू०) 'क्रुध' (क्रोध-करना) 'द्रुह' (द्रोह करना), ईर्ष्य (ईर्ष्या करना) असूय (जलन करना) इन धातुओं के तथा इन धातुओं के अर्थ की अन्य धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है, उसकी संप्रदान संज्ञा होती है। यथा :—

हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति वा=हरि पर क्रोध अथवा द्रोह करता है।

हरये ईर्ष्यति असूयति वा=हरि पर ईर्ष्या या दोषारोप करता है।

जामात्रे कुप्यसि (उत्त० च०) = दामाद पर क्रोध करती हो।

विशेष :—जिसके प्रति क्रोध किया जाता है उसी को सम्प्रदान संज्ञा होती है।

अतएव "भार्यामीर्ष्यति मैनामन्यो द्राक्षीत्" यहाँ पर भार्या के प्रति कोप नहीं बल्कि अन्य के प्रति क्रोध है। अत: इसकी सम्प्रदान संज्ञा नहीं हुई। इसी प्रकार "अहो स्नेहस्य गरिमा कान्तामीर्ष्यति वल्लभ:" यहाँ भी नहीं।

१०. क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयो: कर्म (पा० सू०) यदि क्रुध व द्रुह धातु उपसर्ग युक्त हो तो जिसके प्रति क्रोध, कोप किया जाय उसकी कर्मसंज्ञा होती है। यथा :—

हरिमभिक्रुध्यति अभिद्रुह्यति वा = हरि पर क्रोध अथवा द्रोह करता है।

११. प्रत्याङ्भ्यां श्रुव: पूर्वस्य कर्त्ता (पा० सू०) प्रति पूर्वक या आ पूर्वक 'श्रु' (प्रतिज्ञा करना) धातु के योग में जिससे प्रतिज्ञा की जाती है उसमें सम्प्रदान कारक होता है। यथा :—

विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति = विप्र से गाय की प्रतिज्ञा करता है।

१२. "राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्न:" (पा० सू०) राध् धातु (आराधना या खुश करना) या ईक्ष् धातु (कल्याण कामना करना) के प्रयोग में जिसके विषय में कुशल या सुख सौभाग्य सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाय उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है, जैसे :—

कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्ग: = पूछे जाने पर गर्ग कृष्ण के बारे में शुभाशुभ विचार कर रहे हैं।

१३. अनुप्रतिगृणश्च (पा० सू०) अनु और प्रति उपसर्ग पूर्वक 'गृ' धातु के योग में पूर्व व्यापार पर (क्रिया) के कर्त्ता में सम्प्रदान होता है। यथा:—

होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति च (सि० कौ०) = होता पहले कहता है। अध्वर्यु उसे उत्साहित करता है यहाँ पूर्वकर्त्ता होता में चतुर्थी हुई।

१४. परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् (पा० सू०) नियत काल में परिक्रयण में (धनादि के द्वारा जो भृत्य को अत्यन्त अधीन करना) अत्यन्त साधक में जिससे वश में किया जाता है विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे :—

शतेन शताय वा परिक्रीतः (सि० कौ०) = सौ रुपये में खरीद लिया गया है।

१५. 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' (वार्त्तिक) जिस प्रयोजन के लिये कोई कार्य किया जाता है उस प्रयोजन में चतुर्थी विभक्ति होती है, यथा :—

मुक्तये हरिं भजति = मुक्ति के लिये हरि को भजता है।

काव्यं यशसे (काव्यप्रकाश) = काव्य यश के लिये होता है।

यूपाय दारु (म० भा०) यूप (स्तम्भ) के लिए लकड़ी।

कुण्डलाय हिरण्यं (म० भा०) कुण्डल के लिये सोना।

कवीनां यशसे काव्यं हास्याय अन्यच्च ज्ञायते = कवियों के लिये तो काव्य यश है। अन्यों के लिये हास्य उत्पन्न करता है।

१६. क्लृपि संपद्यमाने च'' (वार्त्तिक) 'क्लृप' धातु (उत्पन्न होना, समर्थ होना) के योग में तथा उसी प्रकार की अर्थ की अन्य धातुओं के प्रयोग में (संपद, जन, भू) आदि परिमाण में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :—

भक्तिः ज्ञानाय कल्पते संपद्यते जायते भवति वा = भक्ति ज्ञान के लिये होती है।

साधोः शिक्षा गुणाय सम्पद्यते, नासाधोः (पंच) = साधु की शिक्षा गुणकारी है असाधु की नहीं।

१७. "उत्पातेन ज्ञापिते च" (वार्त्तिक) शुभाशुभ को जताने वाले (पृथ्वी आदि के उत्पात में) में चतुर्थी विभक्ति होती है; यथा—

वाताय कपिला विद्युदातपयातिलोहिनी।
कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत्॥

पीले वर्ण की बिजली आँधी या तूफान का बोधक है और लाल रंग की बिजली अत्यन्त धूप का द्योतक है, काले रंग की बिजली सर्वनाश का द्योतक है और श्वेत चमकने वाली बिजली दुर्भिक्ष का द्योतक है।

१८. "हितयोगे च" (वार्त्तिक) हित के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है,

यथा—ब्राह्मणाय हितम् = ब्राह्मण का हित।

१९. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (पा० सू०) जब किसी वाक्य में तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का अर्थ या भाव छिपा हो तो उसका कर्म चतुर्थी हो जाता है, जैसे—

फलेभ्यो याति (सि० कौ०) = फलान्याहर्तुं याति = वह फलों के लिये जाता है।

वनाय गां मुमोच (रघु०) = वनं गन्तुं गाम् मुमोच = वन जाने को गाय छोड़ी।

नमस्कुर्मो नृसिंहाय (सि० कौ०) = नृसिंहमनुकूलयितुम् = नृसिंह को अनुकूल करने के लिए नमस्कार है।

स्वयंभुवे नमस्कृत्य = ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार कर।

२०. तुमर्थाच्च भाववचनात् (पा० सू०]) भाववाची संज्ञा शब्दों से तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :—

यागाय याति (सि० कौ०) = यष्टुं याति = यज्ञ करने के लिये जाता है।
समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम् (शाकु०) समिधमाहर्तुमित्यर्थः।

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतः (किराता०)।

त्यागाय सम्भृतार्थानाम् (रघु०)।

२१. नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च (पा० सू०) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, अलम्, वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा :—

हरये नमः = हरि को नमस्कार। स्वस्ति भवते (माल०) आपका कल्याण हो।

अग्नये स्वाहा = अग्नि को यह बलि (आहुति)।

पितृभ्यः स्वधा (सि० कौ०) = पितरों के लिए हवि (अन्नादि) का दान।

इन्द्राय वषट् = इन्द्र के लिये हविष का दान।

२२. "अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणमिति" अलम् के भूषणादि अनेक अर्थ हैं किंतु यहाँ पर्याप्ति (समर्थ) अर्थ का ही ग्रहण होगा तथा तदर्थक वाचक समर्थः, शक्तः प्रभुः के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे :—

दैत्येभ्यः हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्तः इत्यादि (सि० कौ०) = हरि दैत्यों के लिये समर्थ हैं।

अलं मल्लो मल्लाय (म० भा०)

प्रभु के योग में षष्ठी विभक्ति भी होती है।

यथा :—प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य (शिशुपाल०)

२३. **"उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी"** (वार्त्तिक) उपपद विभक्ति अर्थात् किसी पद के आश्रय से होने वाली विभक्ति, से कारक अर्थात् क्रिया के सम्बन्ध से होने वाली विभक्ति बलवती होती है। जैसे:—

नमस्करोति देवान् = देवों को नमस्कार करता है।

मुनित्रयं नमस्कृत्य (सि० कौ०) = तीनों मुनियों को नमस्कार कर।

२४. "प्रणाम करना" "आशीर्वाद" तथा "स्वागत" करने में (स्वागतं, कुशल) आदि शब्दों के योग में द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे :—

धातारं प्राणिपत्य (कुमार०) = ब्रह्मा को प्रणाम कर।

तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम (कादम्बरी) = भक्ति पूर्वक मन से उन्हें प्रणाम किया। प्रणिपत्य सुरास्तस्मै (रघु०) = देवता उन्हें प्रणाम कर।

स्वागतं दैव्यै = देवी के लिये स्वागत।

तस्मै प्रणिपत्य (कुमार०) =

२५. **मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु** (पा० सू०) प्राणी को छोड़कर तिरस्कार अर्थ दिखाना हो तो मन् धातु के कर्म में चतुर्थी विभक्ति या द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—

न त्वाम् तृण मन्ये तृणाय वा (सि० कौ०) = मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता।

विशेष :—जब तिरस्कार अर्थ न हो तो चतुर्थी विभक्ति न होकर द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—

त्वां तृणं मन्ये = तुझे मैं तिनके के समान समझता हूँ।

२६. (क) **गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि** (पा० सू०) मार्गवाचक से भिन्न गत्यर्थक धातु के कर्म में जब क्रिया

की सिद्धि में शरीर से व्यापार करना पड़े तो उस कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति होती है; जैसे :—

ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति = (गाँव को जाता है)। यहाँ गम् धातु का कर्म मार्ग न होकर गाँव है अत: द्वितीया चतुर्थी दोनों विभक्ति ही हुई।

(ख) यदि गत्यर्थक धातु का कर्म मार्ग हो तो कर्म में केवल द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे :—

"पन्थानं गच्छति" (सि० कौ०) यहाँ पथिन् शब्द मार्ग वाचक होने से केवल द्वितीया विभक्ति हुई।

(ग) जहाँ शरीर सम्बन्धी व्यापार नहीं करना पड़ता वहाँ केवल द्वितीया विभक्ति होती है।

जैसे :—**मनसा** हरिं भजति = मन से हरि को भजता है।

इसी प्रकार— नरपतिहितकर्त्ता द्वेष्यतां याति लोके ॥ पंच० ॥

विद्या ददाति विनयं **विनया**द्याति पात्रताम्।

पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम ॥ कुमार० ॥

२७. कहना (कथ, ख्या, शंस, चक्ष् आदि) निवेदन करना (नि उपसर्ग पूर्वक णिजन्त विद्धातु) भेजना (प्रहि) वि उपसर्ग पूर्वक सृज् धातु तथा इनकी अर्थ की अन्य धातुओं के योग में जिससे कुछ कहा जाय अथवा जिससे कुछ वस्तु भेजी जाय वह सम्प्रदान कारक होता है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है।

यथा—तुभ्यं सत्यं कथयामि = तुझसे सच कहता हूँ

आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् = आर्ये तुमसे सच कहती हूँ।

एहि इमां वनस्पतिसेवां काश्यपाय निवेदयाव: (शकु०) आओ चलें इन वृक्षों की सेवा को कश्यप से निवेदन करें।

उपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि = हवन के समय को गुरुजी से निवेदन करूँ।

भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः (रघुः) भोज ने रघु के पास दूत भेजा।

माधवं मालतीं प्रहिण्वता (मालती०) माधव को मालती के पास भेजते हुए।

अभ्यासार्थ

१. सेठ गरीब विद्यार्थियों को कपड़े देता है।

२. उस वन में बन्दर फलों की इच्छा करते हैं।

३. दुर्योधन पाण्डवों से सदा ईर्ष्या करता था।

४. लड़कों को मिठाई बहुत अच्छी लगती है।

५. राम ने श्याम से १००) कर्ज लिया।

६. ऐसी प्रतिज्ञा कर वह राजा के पास से चला गया।

७. आपसे मेरा सादर निवेदन है कि मैं घर जाऊँगा।

८. शत्रु की सारी सेना हराने के लिये तुम अकेले समर्थ हो।

९. हरिण वन में दोपहर के समय पानी पीने की इच्छा रखते हैं।

१०. वह स्थान मुझे अच्छा नहीं लगता।

११. इस पर ब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार है।

१२. भगवान् साधुओं की रक्षा तथा दुष्टों के विनाश के लिये अवतार लेते हैं।

१३. राज्य सम्पत्ति देखकर दुष्ट जलने लगता है।

१४. यह ब्राह्मण चपल है, कहीं मेरी बात अन्तःपुर की रानियों से न कह दे।

१५. गुरु की शिक्षा गुण के लिये होती है।

१६. छात्र कुश लाने के लिये वन को गये।

१७. जिनके ऊपर ब्रह्मा का भी जोर नहीं चलता।

१८. राजन् मैं तुझे घास के समान समझता हूँ।

——

पञ्चमीकारक (Ablative)

१. ध्रुवमपायेऽपादानम् (पा० सू०)—अपाय (विभाग पृथक् होना) की सिद्धि में ध्रुव (अवधिभूत, स्थिर) कारक की अपादान संज्ञा होती है।[1] जैसे:—

२. अपादाने पञ्चमी (पा० सू०) अपादान कारक में पंचमी विभक्ति होती है।

जैसे :—ग्रामादयाति = गाँव से आता है यहाँ गाँव से आने वाले व्यक्ति का पृथक्त्व पाया जाता है अतः यह अपादान कारक हुआ और इसमें पंचमी विभक्ति हुई। एवम् :—

---

१. अपाये यदुदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम्।
ध्रुवमेव तदावेशात्तदपादानमुच्यते ॥ हरि० ॥
चल और अचल भेद से अपादान दो प्रकार का होता है।
चल यथा—धावतोऽश्वात् पतति = दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है।
अचल यथा—वृक्षात् पत्रं पतति = पेड़ से पत्ता गिरता है।
परस्परान्मेषावपसरतः = आपस में मेष टक्कर से हटते हैं, यहाँ जो हटना है उसकी अपेक्षा दूसरे की अपादान संज्ञा होगी,

वृक्षात् पर्णं पतति = पेड़ से पत्ता गिरता है।

धावतोऽश्वात् पतति = दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है।

३. "जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्" (वार्त्तिक) जुगुप्सा, (घृणा निन्दा) विराम (रुकना) प्रमाद (भूल लापरवाही) वाची धातुओं के योग में पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—

पापात् जुगुप्सते=पाप से घृणा करता है।

धर्मात् प्रमाद्यति = धर्म से प्रमाद करता है।

अध्ययनात् विरमति = पढ़ने से रुकता है।

न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः (नीति०) = धीर मनुष्य अपने निश्चित अर्थ से नहीं रुकते। कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वधिकारात्प्रमत्तः (मेघ०) = कोई कान्ता के वियोग में अपने अधिकार से पराङ्मुख (प्रमत्त) कोई यक्ष।

४. भीत्रार्थानां भयहेतुः (पा० सू०)—भय अर्थ वाची तथा रक्षा अर्थ वाले धातुओं के प्रयोग में जिससे भय व रक्षा हो उसमें अपादान कारक होता है। यथा :—

वानरात् बिभेति = वानर से डरता है।

चौरात् त्रायते = चोर से रक्षा करता है।

न भीतो मरणादस्मि (मृच्छ०) = मृत्यु से मैं नहीं डरता हूँ।

त्रायते महतो भयात् (भाग०) = महान भय से रक्षा करता है।

५. पराजेरसोढः (पा० सू०)—परा उपसर्ग पूर्वक 'जि' धातु के प्रयोग में असह्य वस्तु या मनुष्य में अपादान कारक होता है।

जैसे :—अध्ययनात् पराजयते = पढने से हार रहा है।

६. वारणार्थानामीप्सितः(पा० सू०)-वारण (दूर करना) (हटाना) अर्थ की धातु के प्रयोग में अत्यन्त इष्ट कारक में अपादान कारक होता है। जैसे :—

यवेभ्यो गां वारयति = यव भक्षण रूप कार्य से गाय को रोकता है।

पापान्निवारयति (नीति०) = पाप से हटाता है।

७. अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति (पा० सू०) 'छिपना' या 'छिपाना' अर्थ की धातुओं के योग में जिससे छिपाना चाहता है उसमें अपादान कारक होता है।

जैसे—मातुर्निलीयते कृष्णः = कृष्ण माता से छिपना चाहता है।

८. आख्यातोपयोगे (पा० सू०)—नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में पढ़ाने वाले में अपादान कारक होता है। यथा—

उपाध्यायादधीते (सि० कौ०) = उपाध्याय से पढ़ता हैं।

९. जनिकर्तुः प्रकृतिः (पा० सू०)—जन् (उत्पन्न होना) धातु के कर्त्ता के हेतु (कारण) में अपादान कारक होता है। यथा—

कामात् क्रोधोऽभिजायते (गीता०) = काम से क्रोध उत्पन्न होता है।

मुखादग्निरजायत (यजुर्वेद) = मुख से अग्नि पैदा हुई।

१०. भुवः प्रभवः (पा० सू०) 'भू' धातु के कर्त्ता के प्रादुर्भाव स्थाने में अपादान कारक होता है। यथा—

हिमवतो गंगा प्रभवति (सि० कौ०) = हिमालय से गंगा निकलती है।

लोभात् क्रोधः प्रभवति (सि० कौ०) = लोभ से क्रोध होता है।

११. ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" (वार्त्तिक) जब ल्यप् अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त धातु प्रकट न हो (छिपा हो) तो कर्म तथा सप्तमी (अधिकरण) में पञ्चमी विभक्ति होती है; यथा—

प्रासादात् प्रेक्षते (सि० कौ०) = प्रासादमारुह्य प्रेक्षते–महल पर चढ़कर देखती है।

आसनात् प्रेक्षते (सि० कौ०) = आसने उपविश्य प्रेक्षते—आसन पर बैठ कर देखता है।

श्वशुरात् जिह्रेति (सि० कौ०) = श्वशुरं वीक्ष्य जिह्रेति = श्वसुर को को देखकर लजाती है।

१२. "प्रश्नाख्यानयोश्च" (वार्त्तिक)—प्रश्न और आख्यान वाची उत्तर) शब्दों से पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—

कुतो भवान्? पाटलिपुत्रात् (म० भा०) आप कहाँ से आ रहे हैं? पाटलि पुत्र अर्थात् पटना से आरहा हूँ।

१३. यतश्चाध्वकालनिर्माणं पत्र पञ्चमी। तद्युक्तादध्वन: प्रथमा-सप्तम्यौ। कालात्सप्तमी च वक्तव्या (वार्त्तिक) जहाँ से मार्ग एवं काल (समय) परिमाण किया जाय (दूरी नापी जाय) वहाँ पर पञ्चमी विभक्ति होतो है। तथा स्थान की दूरी व्यक्त करने वाले मार्ग वाली शब्दों में प्रथमा विभक्ति होती है। और सप्तमी भी होती है। और काल वाची शब्द में केवल सप्तमी विभक्ति होती है। जैसे—

समुद्रात्पुरी क्रोशेऽक्ति = समुद्र से पुरी एक कोस है।

वनात् ग्रामो योजनं योजने वा = वन से गाँव योजन भर है।

कार्तिक्या आग्रहायणी मासे = कार्तिक की पूर्णिमा से अगहन की पूर्णमासी एक मास है।

(१४) अन्यारादितरर्त्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते (पा० सू०) अन्य तथा उसके अर्थ वाची शब्द (भिन्न अतिरिक्त) आरात् (समीप या दूर) इतर (दूसरा) ऋते (विना) दिशावाची शब्द 'अञ्चू' से निष्पन्न दिशा वाची शब्द (जैसे प्राक्-प्रत्यक् आदि) एवं आदि से अन्त होने वाले शब्दों के योग में पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—

कृष्णात् भिन्न इतरो वा (सि० कौ०) = कृष्ण से भिन्न या दूसरा।

वनादारात् (सि० कौ०) = वन के पास या दूर।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः = ज्ञान के विना मुक्ति नहीं।

चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः (सि० कौ०) चैत्र से पूर्व फाल्गुन होता है।

ग्रामात्पूर्वः उत्तरो वा = गाँव के पूर्व या उत्तर।

प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात् (सि० कौ०) ग्राम से पूर्व या पश्चिम।

दक्षिणाहि ग्रामात् = गाँव से दक्खिन।

(अ) विशेष = अपपरि बहिरञ्चवः पञ्चम्या–इस सूत्र के द्वारा बहिः शब्द का पञ्चमी शब्द के साथ जो समास होता है। उससे ज्ञापन होता है। कि 'वहि' के योग में पञ्चमी विभक्ति भी होती है। जैसे—

ग्रामाद्बहिः (सि० कौ०) गाँव से वाहर।

(आ) "कार्तिक्या प्रभृति" इस भाष्य प्रयोग से ज्ञापन होता कि प्रभृति (लेकर) और 'आरम्भ' के योग में भी पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—

स शशवात्प्रभृति चतुरः = वह लड़कपन से ही चतुर है।

वत्से मालति ! जन्मनः प्रभृति वल्लभा ते लवंगिका (मालती)

वत्से मालती, जन्म से ही लेकर तुझे वह लता प्यारी है।

(इ) इसी प्रकार 'अनन्तरम्' 'परम्' ऊर्ध्वम्' अर्थ में पंचमी विभक्ति होती है। यथा :—

भोजनादनन्तरम् = भोजन के बाद।

पाणिपीडनविधेरनन्तरम् (कुमा०) विवाह के पश्चात्।

अस्मात् परम् (शाकु०) इसके वाद।

मुहूर्त्तादूर्ध्वम् = क्षण भर के बाद।

६

(१५) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् (पा० सू०) = पृथक (अलग) विना और नाना के योग में तृतीया, पञ्चमी और द्वितीया होती है। जैसे—

पृथक् रामेण, रामं, रामात् वा = राम से अलग।

(१६) पञ्चमी विभक्ते (पा० सू०) :—तरप् और ईयसुन प्रत्ययान्त शब्दों से जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक भेद हो उसमें पंचमी होती है। जैसे—

माथुरा: पाटलिपुत्रकेभ्य: आढ्यतरा: = मथुरा वाले पटना वालों से अधिक धनी हैं।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।

सत्यादप्यनृतं श्रेय:—सत्य से भी झूठा श्रेष्ठ है।

मोहादभूत्कष्टतर: प्रबोध: = चेतनावस्था मोह से भी बढ़कर कष्टप्रद है।

अपपरी वर्जने आङ्-मर्यादावचने (पा० सू०) अप परि उपसर्ग का वर्जन अर्थ में और 'आ' उपसर्ग का मर्यादा अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

(१७) पंचम्यपाङ्परिभि: (पा० सू०) = मर्यादा और अभिविधि अर्थ में आङ् के योग में तथा 'वर्जन' अर्थ में 'अप' और 'परि' के योग में पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—

आमुक्तेः संसारः = मुक्ति पर्यन्त संसार है।

आपरितोषाद्विदुषाम् (शाकु०)—विद्वानों के सन्तोषपर्यन्त।

आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि (शाकु) = प्रारम्भ से सुनना चाहता हूं।

आकैलासात् = कैलास पर्यन्त।

(१८) अकर्त्तर्यृणे पंचमी (पा० सू०) कर्तृभिन्न हेतु अर्थात् कारणभूत जो ऋण उससे पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—

शताद्बद्ध: = सौ रुपये के कारण बँधा है।

अतिदानाद्बलिर्बद्ध:—अति दान से बलि बाँधे गए।

(१६) विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् (पा० सू०) स्त्रीलिंग भिन्न गुण वाचक हेतु भूत (कारण भूत) वर्तमान शब्द से पंचमी व तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—

जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः = मूर्खता के कारण बाँधा गया।

यहाँ जाड्य शब्द गुण वाचक नपुंसक लिंग है और बन्धन में हेतु है। अतः पंचमी या तृतीया विभक्ति हुई।

(विशेष)—कहीं २ गुण रहित और स्त्रीलिंग में भी पंचमी विभक्ति होती है। यथा—पर्वतो वह्निमान् धूमात् = पर्वत पर धूँआ होने से अग्नि है।

नास्ति घटोऽनुपलब्धेः—घड़ा नहीं है, अप्राप्य होने से।

(२०) प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् (पा० सू०) प्रतिनिधि और प्रतिदान (बदलना) के योग में पंचमी विभक्ति होती है। जैसे—

प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति (सि० कौ०) प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं।

तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान् (सि० कौ०) तिलो से उड़द बदलता है।

(२१) दूरान्तिकार्थेभ्यः द्वितीया च (पा० सू०) दूर और अन्तिक शब्द से द्वितीया, तृतीया पंचमी होती है यथा—ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा।

अभ्यासार्थं

१—नरेन्द्र पढ़ने के लिए प्रतिदिन गाँव से बाहर आता है।

२—क्रोध से मोह और काम से क्रोध उत्पन्न होता है।

३—ईश्वर के अतिरिक्त संसार की रक्षा करने में कौन समर्थ है।

४—भोजन करने के बाद कभी भी दौड़ना नहीं चाहिए।

५—आगरा से पूर्व एक सुन्दर वाटिका है।

६—वन से दूर (आरात्) सुन्दर नगर शोभित है।

७—नगर के बाहर विश्वविख्यात ताजमहल बना हुआ है।

८—जिसे देखने के लिए लाखों यात्री प्रतिवर्ष विदेश से आते हैं।

९—दुर्जन से सभी लोग डरते हैं।

१०—राजा सब प्रकार की आपत्तियों में प्रजा की रक्षा करता है।
११—सत्संगति पाप से हटाती है और सत्कर्म में लगाती है।
१२—वह दूकानदार तिलों से गेहूँ बदलता है।
१३—बालिकायें महल पर चढ कर नगर की शोभा देख रही हैं।
१४—रमेश पढ़ने में नरेन्द्र से अधिक गुणवान मालूम होता है।
१५—प्राचीन काल में सभी लोग गुरुकुल में जाकर गुरु से विद्या पढ़ते थे।
१६—आज से लेकर मैं कभी भी झूठ नहीं बोलूंगा।
१७—उसके भाषण के अन्त में करतल ध्वनि से सभा गूंज उठी।
१८—काशी से सारनाथ दो कोश की दूरी पर है।
१९—जननी और जन्म भूमि स्वर्ग से भी अधिक प्रिय है।
२०—बुरे आदमियों से सभी लोग घृणा करते हैं।

षष्ठी (Genitive)

१—शेषे षष्ठी (पा० सू०) प्रातिपादिक और कारक से व्यतिरिक्त [1]स्व-स्वामिभावादि सम्बन्ध को शेष कहते हैं। और उसमें षष्ठी विभक्ति होती है। अर्थात् षष्ठी विभक्ति एक संज्ञा शब्द का दूसरे से सम्बन्ध बताती है।

यथा:—गङ्गाया जलम् पवित्रम् (गंगा का जल पवित्र है) यहाँ गंगा का जल से सम्बन्ध है।

स्व-स्वामिजन्यजनकावयवाङ्गी तृतीयक:।
स्थान्यादेशश्च विज्ञेय: सम्बन्धोऽसौ चतुर्विध:॥

जैसे—१. स्वस्वामिभाव सम्बन्ध २. जन्यजनक भाव सम्बन्ध ३. अवयावयविभाव सम्बन्ध ४.स्थान्यादेशभाव सम्बन्ध आदि, इसके अतिरिक्त और भी हैं। किन्तु मुख्य ये ही हैं। उदाहरण यथा—

साधोर्धनं पितु: पुत्र: पशो: पादो ब्रुवो वचि:।
उदाहृतश्चतुर्धा तु कविभि: परिशीलित:॥

१—**स्वस्वामिभाव सम्बन्ध,** जैसे—'साधो: धनम्' यहाँ साधु और धन का स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है।

२—षष्ठी हेतुप्रयोगे (पा० सू०) हेतुवाचक शब्दों के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है, यथा—

अन्नस्य हेतोर्वसति (सि० कौ०) = अन्न के कारण रहता है।

अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् (सि० कौ०) = थोड़े के लिए बहुत त्यागने की इच्छा करता हुआ।

३—सर्वनाम्नस्तृतीया च (पा० सू०) हेतुवाचक शब्दों के प्रयोग में सर्वनाम शब्दों से तृतीया होती है तथा षष्ठी होती है। यथा—

केन हेतुना वसति, कस्य हेतोः (सि० कौ०) = किस निमित्त रहता है।

४—निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासाम् प्रायदर्शनम् (वार्त्तिक) निमित्त शब्द के अर्थ वाले (कारण, हेतु, प्रयोजन) शब्दों का प्रयोग होने पर सर्वनाम से सभी विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

किम् निमित्तम्, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मात् निमित्तात्, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन् निमित्ते इसी प्रकार, किं कारणं वसति? को हेतुः, किम् प्रयोजनमित्यादि।

विशेष—किन्तु सर्वनाम न होने पर प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति नहीं होती। यथा—

ज्ञानेन निमित्तेन, ज्ञानाय निमित्ताय, ज्ञानात् निमित्तात् इत्यादि।

२—जन्यजनकभाव सम्बन्ध, यथा :—पितुः पुत्रः (पिता का पुत्र) यहाँ पिता पुत्र में जन्यजनक भाव सम्बन्ध है।

३—अवयवावयविभाव सम्बन्ध यथा :—पशोः पादः (पशु का पैर) यहाँ पशु अवयवी तथा पशु का पैर अवयव है। अतः दोनों का सम्बन्ध अवयवावयवि भाव सम्बन्ध है।

४—स्थान्यादेशभाव सम्बन्ध, यथा—'ब्रुवो वचिः' = ब्रू के स्थान पर वच आदेश हो। यहाँ पर ब्रू स्थानी बच आदेश हैं अतः इनका स्थान्यादेश भाव सम्बन्ध है।

५—**षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन** (पा० सू०) दिशा वाची अतस् (तस्) प्रत्ययान्त शब्दों से तथा इस प्रकार के अर्थ के अन्य शब्द (उपरि अधः पुरः पश्चात् पुरस्तात् इत्यादि) के साथ षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

ग्रामस्य दक्षिणात् पुरः पुरस्तात् वा (सि० कौ०)=गांव के दक्षिण या सामने।

तरूणाम् अधः—वृक्षों के नीचे।

प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम् (उ० स०) राजपुत्र को रथ पर चढ़ाओ।

अवाङ्मुखस्योपरि तस्य वृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता (रघु०)

६—**एनपा द्वितीया**—(पा० सू०) दिशा वाची एनप् प्रत्ययान्त शब्दों से षष्ठी व द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

ग्रामस्य ग्रामं वा दक्षिणेन (सि० कौ०) गाँव के दक्षिण।

दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् (शाकु०)=वृक्षवाटिका के दक्षिण।

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयम् (मेघ०) वहाँ कुबेर के घर के उत्तर ओर मेरा घर है।

दण्डकान्दक्षिणेनाहम् (माहि) दण्डकवन के दक्षिण।

—**दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्** (पा० सू०) दूर और अन्तिक (समीप) तथा इनके अर्थ वाले अन्य शब्दों के योग में पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति होती है। यथाः—

दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा (सि० कौ) गाँव से दूर या समीप।

अतः समीपे परिणेतुरिष्यते (शाकु०)

—**अधीगर्थदयेशां कर्मणि** (पा० सू०) स्मरण अर्थ वाली (स्मृ० आदि) धातु तथा दय् (दया करना) ईश (राज्य करना-मालिक होना) प्र+भू (प्रभुता पाना या समर्थन होना) अधि पूर्वक इ धातु (याद करना) इनके कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे—

मातुः स्मरणं करोति (सि० कौ०)=माता का स्मरण करता है।

रामस्य दयते=राम पर दया करता है।

ईश्वर: जगत: ईष्टे—ईश्वर संसार का राज्य करता है।

गुरु: शिष्यस्य प्रभवति = गुरु शिष्यका प्रभु है।

स तव अध्येति —वह तुम्हारी याद करता है।

न खलु स उपरत: यस्य वल्लभो जन: स्मरति = वह मरा हुआ नहीं है जिसका प्रिय जन याद करता है।

६—व्यवहृपणो: समर्थयो: (पा० सू०) क्रय विक्रय (सौदा का लेन देन) तथा द्यूत (जुआ) अर्थ में 'वि' और 'अव' उपसर्ग पूर्वक हृ और पण धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

शतस्य व्यवहरणं पणनं वा (सि० कौ०) सौ रु० का लेन देन करना या पण=दाँव लगाना।

शतस्य व्यवहरति स:—वह सौ रुपये से व्यवहार करता है।

१०—दिवस्तदर्थस्य (पा० सू०) द्यूत (जूआ) अर्थ तथा क्रय विक्रय रूप व्यवहार में दिव धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

शतस्य दीव्यति (सि० कौ०) सौ रुपए से जुआ खेलता है।

११—विभाषोपसर्गे (पा० सू०) परन्तु जब उपरोक्त अर्थ में दिव धातु-उपसर्ग पूर्वक रहती है तब षष्ठी और द्वितीया दोनों होती हैं। यथा:

शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति (सि० कौ०) सौ रुपए से जुआ खेलता है।

१२. कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे :—(पा० सू०) वार वार या अनेक वार अर्थ प्रगट करने वाला 'कृत्वसुच्' (कृत्व:) प्रत्यय तथा उसके समान अर्थ को व्यक्त करने वाले प्रातिपादिक (द्वि: त्रि: आदि) शब्दों के प्रयोग में काल तथा अधिकरण वाचक शब्दों से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

पंचकृत्वोऽह्नो भोजनं करोति (सि० कौ०) दिन में पाँच बार खाता है।

द्विरह्नो भोजनं (सि० कौ०) दो वार दिन में खाता है।

त्रिसप्तकृत्वो जगतीपतीनां हन्ता गुरुर्यस्य स जामदग्न्य: (किरात) पृथ्वीपति (क्षत्रियों) का २१ वार संहार करने वाले परशुराम।

१३. **कृर्तृकर्मणोः कृति** (पा० सू०) कृत् प्रत्ययान्त (क्तिन् ति) तृच (तृ) ल्युट् (अन) आदि आदि शब्दों के प्रयोग में कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

जगतः कर्ता ईश्वरः (सि० कौ०) संसार के बनाने वाले ईश्वर हैं। ईश्वरस्य सृष्टिः (ईश्वर की रचना) जगतः सृष्टिः = संसार की रचना। सुहृदो दर्शनम् (उत्तर०) मित्र का दर्शन।

१४. **गुणकर्मणि वेष्यते** (वार्त्तिक) द्विकर्मक धातुओं के प्रयोग में गौण कर्म में षष्ठी और द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

नेताऽश्वस्य सुघ्नं स्रुघ्नस्य वा (सि० कौ०) स्रुघ्न देश के पास घोड़े को ले जानेवाला।

१५. **उभयप्राप्तौ कर्मणि** :—(पा० सू०) कृत् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में यदि कर्त्ता और कर्म दोनों में षष्ठी प्राप्त हो तो कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन (सि० कौ०) ग्वाले के विना गाय का दुहना आश्चर्य है।

विशेष :—स्त्रीलिंग मे ण्वुल (अक) तथा अ कृत् प्रत्यय में यह नियम नहीं लगता अर्थात् कर्त्ता में भी षष्ठी विभक्ति हो जातो है। जैसे—

भेदिका विभित्सा वा रुद्रस्य जगतः।

१६. **शेषे विभाषा** :–(वार्तिक) स्त्री प्रत्यय इत्येके। केचिदविशेषेण-विभाषामिच्छन्ति। कृत् प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग में और किसी के मत में कृत् प्रत्ययान्त शब्द किसी लिंग में कर्त्ता और कर्म यदि दोनों में हों तो कर्त्ता में तृतीया षष्ठी दोनों होती है।

यथा : विचित्रा जगतः कृतिर्हरेः हरिणा वा (सि० कौ०) हरि के द्वारा या हरि का संसार का बनाना विचित्र है। शब्दानामनुशासनमाचार्येणा-चार्यस्य वा (सि० कौ०) आचार्य के द्वारा शब्दों का अनुशासन (आदेश)। शोभना खलु पाणिनेः पाणिनिना वा सूत्रस्य कृतिः—पाणिनि की सूत्र रचना सुन्दर है।

१७. क्तस्य च वर्त्तमाने—(पा० सू०) यदि 'क्त' प्रत्यय वर्तमान अर्थ में प्रयुक्त हो तो उसके साथ षष्ठी विभक्ति होती है।

यथा—राज्ञां मतः बुद्धः पूजितो वा (सि० कौ०) राजाओं द्वारा सम्मानित व पूजित है।

अहमेव मतो महीपतेः (रघु०)=राजा मुझे ही मानते हैं।

अहं हि संमतो राज्ञः (पंच०) मैं ही राजा का प्रिय हूँ।

विशेष—जब भाव में 'क्त' प्रत्यय नपुंसक लिंग होता है तो उसके योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

यथा—मयूरस्य नृत्तम्=मोर का नाच। छात्रस्य हसितम्=छात्रकी हसी।

१८—कृत्यानां कर्त्तरि वा (पा० सू०) कृत् प्रत्ययान्त (तव्य, अनीयर, यत्, ण्यत्, क्यप्, केलिमर) शब्दों के प्रयोग में उसके कर्ता में षष्ठी व तृतीया दोनों विभक्ति होती है। यथा—

मया मम वा सेव्यो हरिः (सि० कौ०) मुझे हरि की सेवा करनी चाहिए।

न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः (किरात) नौकर को राजा को नहीं ठगना चाहिए।

गन्तव्या ते वसतिरलका (मेघ०) तुझे अलका जाना चाहिए।

१९—तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् (पा० सू०) तुल्य, सदृश, सम, सकाश आदि सादृश्य वाची शब्दों के योग में षष्ठी व तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

कृष्णस्य कृष्णेन वा सदृशः तुल्यः समो वा—कृष्ण के समान।

२०—चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः (पा० सू०) आशीर्वाद, आयुष्यं मद्र, भद्र, कुशल, सुख अर्थ, हित इन शब्दों के साथ षष्ठी व चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशलं मद्रं भद्रं हितं वा भूयात्=कृष्ण का हित व कल्याण हो।

२१—न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (पा० सू०) 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से सभी कृदन्त प्रत्ययों के योग में षष्ठी का विधान किया है। किन्तु इस

सूत्र के द्वारा लकार के अर्थ में प्रयोग किए जाने वाले प्रत्यय (शतृ, शानच, क्वसु, कानच) तथा 'उ' 'उक्' से अन्त होने वाले शब्द कृदन्त का अव्यय क्त, क्तवतु, खल् तथा खल के समानार्थ वाले प्रत्यय तथा तृन् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होती। यथा—

बालकं पश्यन् = बालक को देखता हुआ।

दुखं: सहमान:—दु:ख सहते हुए।

वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्—वन में दुष्ट सत्वों को सिखाता हुआ।

हरिं दिदृक्षु: = हरिको देखने का इच्छुक।

दैत्यान् घातुको हरि: = हरि दैत्यों के नाशक हैं।

स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारि: = अपने घर का चरित याद कर (मुरारि) काष्ठ हो गए।

यशोऽधिगन्तुं सुखमीहितुंवा—यश पाने के लिए अथवा सुख पाने के लिए।

विष्णुना हता: दैत्या: = विष्णु द्वारा दैत्य मारे गए।

ईषत्कर: प्रपञ्चो हरिणा = हरि को प्रपंच ईषत्कर है।

कर्ता कटान् = चटाइयों का बनाने वाला।

अभ्यासार्थ

१. भारत के प्रधान मंत्री का नाम पं० जवाहरलाल नेहरू है।
२. मुझे ऐसा काम करना चाहिए जिससे निन्दा न हो।
३. मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं सदा सत्य भाषण करूँ।
४. जिसके लिए (कृते) तुम्हारी यह दशा है वह तुझे अवश्य मिलेगा।
५. मुझे गुरु की आज्ञा हमेशा माननी चाहिए।
६. पहले सभी विद्वान राजाओं द्वारा पूजे जाते थे। (पूज)
७. कर्म के समान पृथ्वी पर और कोई वस्तु नहीं है।
८. उसकी हँसी सुनकर सब लोग चकित हो गए।
९. कवि कालिदास की सर्वोत्तम रचना (कृति) अभिज्ञानशाकुन्तलम् है।
१०. वह दिन में पाँच बार (पंचकृत्व:) भोजन करता है।

११. रमेश पढ़ने के हेतु काशी जाकर गुरु से शिक्षा प्राप्त की ।
१२. वाराणसी के उत्तर ओर एक सुन्दर उपवन है ।
१३. बालिका बारंबार अपने माता-पिता को याद करती है ।
१४. गाँव के दक्षिण से वह मनुष्य गाँव में गया ।
१५. बालिकाएं पेड़ों को सींचकर पेड़ों के नीचे बैठ गईं ।
१६. यह अंगूठी किसकी है यह मैं जानना चाहता हूँ ।
१७. शिव का दर्शन करना पुण्य दायक है ।
१८. तुम्हारे भाई का विवाह कब होगा ।
१९. बनारस के आम भारत में प्रसिद्ध एवं मीठे होते हैं ।
२०. मैं यह चाहता हूं कि तुम्हारा कुशल मंगल हो ।

[1]सप्तमी (Locative)

१. आधारोऽधिकरणम् - (पा० सू०) किसी वस्तु के आधार को अधिकरण कारक कहते हैं अर्थात् जिस स्थान पर कोई कार्य होता है उसे अधिकरण कारक कहते हैं । जैसे - आसन पर बैठता हूँ (आसने उपविशति) यहाँ बैठने का आधार आसन है अतः आसन में सप्तमी हुई ।

१—उपश्लेषोपविषयौ सामीप्यो व्यापकस्तथा ।
चतुर्विधोऽयमाधारो विभक्तिस्तत्र सप्तमी ॥

प्राचीनों के मतानुसार १—औपश्लेषिक २—वैषयिक ३—सामीप्य ४—अभिव्यापक भेद से चार प्रकार के आधार होते हैं । और इनमें सप्तमी विभक्ति होती है ।

औपश्लेषिक यथा—जहाँ आधार और आधेय का संयोग होता है । जैसे—कटे आस्ते = चटाई पर बैठता है ।

वैषयिक यथा—जिसमें जो रहे, जैसे-मोक्षे इच्छास्ति = मोक्ष में इच्छा है ।

३—सामीप्यं यथा — जगति विश्वेश्वरो वर्तते = विश्वेश्वर संसार के समीप हैं ।

४—अभिव्यापक यथा—सर्वस्मिन्नात्मास्ति = सब में आत्मा व्याप्त है ।
तिलेषु तैलम्— तिल में तैल व्याप्त है ।

२—सप्तम्यधिकरणे च (पा० सू०) अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

स्थाल्यां पचति (सि० कौ०) = पतेली में भोजन पकाता है।

आषाढस्य प्रथमदिवसे (मेघ०) आषाढ़ मास के प्रथमदिन (प्रतिपदा)

३—क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वार्त्तिक) 'अधीतिन्' (पढ़-चुकने वाला) इत्यादि इन् विषयक 'क्त' प्रत्ययान्त शब्दों के कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

अधीती व्याकरणे = वह व्याकरण पढ़ा हुआ।

यहाँ पर 'अधीतमनेन' इस विग्रह में 'क्त' प्रत्यायान्त अधीत शब्द से "इष्टादिभ्यश्च" इस सूत्र द्वारा 'इन्' प्रत्यय हुआ है।

गृहीती षट्स्वङ्गेषु = छः अंगों में ज्ञानी।

४—साध्वसाधुप्रयोगे च—(वार्त्तिक) साधु और असाधु शब्दों के प्रयोग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

साधु कृष्णो मातरि (सि० कौ०) कृष्ण अपनी माता के साथ सद्व्यवहार करता है।

असाधुर्मातुले (सि० को०) और मामा के प्रति दुर्व्यवहार करता है।

५—निमित्तात्कर्मयोगे (वार्त्तिक) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाय तो निमित्त वाची शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।

केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥

चर्म (चमड़े) के निमित्त गेंड़े को मारता है। दाँतों के निमित्त हाथी को मारता है चंवर के लिए चमरी गाय की पूछें काटता है और कस्तूरी के लिए मृग को मारता है।

६—यस्य च भावेन भावलक्षणम् (पा० सू०) जहाँ कार्यविशेष के होते रहने पर या हो चुकने पर किसी दूसरे कार्य का होना पाया जाय उस भाव में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

गोषु दुह्यमानासु गतः (सि० कौ०) गाय दुहने पर चला गया।

कः पौरवे पृथिवीं शासति अविनयमाचरति (शाकु०) = कौन पौरव राजा के पृथ्वी पर शासन करते हुए यह दुष्टता कर रहा है।

विशेष—जिस अर्थ में अंग्रेजी मे (Nominative absolute) का प्रयोग होता है वहाँ संस्कृत में भावे सप्तमी का प्रयोग होता है।

७—षष्ठी चानादरे (पा० सू०) जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है, वहाँ भाव में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—रुदति पुत्रे रुदतः पुत्रस्य वा पिताऽव्राजीत् (सि० कौ०) = रोते हुए पुत्र को कुछ न समझ कर पिता सन्यासी हो गया।

८—स्वमीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च (पा० सू०) स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षि, प्रतिभू, प्रसूत इन सात शब्दों के प्रयोग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

गवां गोषु वा स्वामी (सि० कौ०) गायों के स्वामी।

गवां गोषु वा प्रसूतः (सि० कौ०) गायों से पैदा हुआ।

९—आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् (पा० सू०) आसेवा अर्थ में, तात्पर्य अर्थ में वर्तमान आयुक्त और कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा (सि० कौ०) हरिपूजन में सब प्रकार से लगा हुआ या कुशल है।

१०—यतश्च निर्धारणम् (पा० सू०) जहाँ किसी वस्तु का अपने समुदाय के अन्य अवयसों से किसी विशेषण द्वारा विशिष्टता दिखाई जाय तो समुदाय वाचक (जहाँ जाति, गुण, क्रिया, संज्ञा के द्वारा समुदाय के एक देश (अवयव) में किसी की विशेषता बताई जावे) शब्द में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

१—नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः (सि० कौ०) मनुष्यो में ब्राह्मण श्रेष्ठ है।

२—गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा (सि० कौ०) गायों में कृष्णा गौ बहुत दूध देती है।

३—गच्छताम् गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः (सि० कौ०) चलने वालों में दौडनेवाला शीघ्र होता है ।

४—छात्राणाम् छात्रेषु वा मैत्रः पटुः (सि० कौ०) छात्रों में मैत्र चतुर है ।

५—कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः = कवियों 'में' कालिदास श्रेष्ठ हैं ।

११—साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः (पा० सू०) पूजन अर्थ गम्यमान हो तो साधु और निपुण शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है । यथा—साधुर्निपुणो वा मातरि (सि० कौ०) माता के विषय में सत्कार करने वाला और चतुर है ।

१२. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतोया च—प्रसित और उत्सुक (अत्यन्त इच्छुक) शब्दों के प्रयोग में तृतोया और सप्तमी विभक्ति होती है, यथा—प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा (सि० कौ०) = हरि में उत्सुक या आसक्त है ।

१३. नक्षत्रे च लुपि (पा० सू०) प्रकृत्यर्थ नक्षत्र के लुप् संज्ञा से लुप्यमान प्रत्यय के अर्थ में वर्तमान लुबन्त नक्षत्रवाची शब्द से तृतीया और सप्तमी होती है । यथा—मूलेनावहयेद् देवीं श्रवणे च विसर्जयेत् (मूले श्रवणे वा) = मूल में देवी का आवाहन करे और श्रवण में विसर्जन करे ।

यहाँ 'नक्षत्रेण युक्तः कालः" इससे अण् प्रत्यय होकर 'लुबविशेषे' से उनका लोप हो जाता है । अतः श्रवण और मूल में तृतीया या सप्तमी हुई ।

१४. सप्तमीपंचम्यौ कारकमध्ये (पा० सू०) दो शक्तियों के मध्य में जो काल (समय) और मार्ग वाचक शब्दों से सप्तमी पंचमी विभक्ति होती है । यथा—

(१) अद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता (सि० कौ०) आज भोजन करके यह दो दिन वाद भोजन करेगा । (२) इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत् (सि० कौ०) यहाँ बैठा हुआ यह एक कोस पर लक्ष्य वेध सकता है ।

१५. **यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी** (पा० सू०) अधिक अर्थ वाले शब्द ईश्वर अर्थ में (स्वस्वामि भाव सम्बन्ध में) अधि शब्द के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

अधिभुवि रामः (सि० कौ०) } राम पृथ्वी के ईश्वर हैं।
अधिरामे भूः (सि० कौ०) } यह ईश्वर के अर्थ में सप्तमी हुई।

उपपरार्द्धे हरेर्गुणाः (सि० कौ०) हरि के गुण परार्ध से भी अधिक हैं। यहाँ 'उपोऽधिके च' इस सूत्र से कर्म प्रवचनीयसंज्ञा होने से यहाँ सप्तमी विभक्ति हुई।

१६. **विभाषा कृञि** (पा० सू०) ईश्वर अर्थ होने पर 'कृ' धातु के प्रयोग में अधि के योग में विकल्प से कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—

यदत्र मामधिकरिष्यति (सि० कौ०) इसमें मुझे नियुक्त करेगा।

यहाँ कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से गति संज्ञा का अपवाद होता है।

१७. 'ग्रहणार्थक' और 'प्रहारार्थक' धातुओं के प्रयोग में पकड़ा जाने वाला या प्रहार करने वाले में सप्तमी होती है।

यथा हस्ते गृहीत्वा = हाथ पकड़कर।
केशेषु गृहीत्वा = केश पकड़कर।

आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि (शाकु०) = आपका अस्त्र दुःखियों की रक्षा के लिए है न कि निरपराधियों को मारने के लिए।

१८. 'फेंकना' या 'झपटना' अर्थ वाचक क्षिप, मुच्, अस् धातुओं के योग में जिस पर कोई वस्तु फेंकी जाय या झपटी जाय उसमें सप्तमी विभक्ति होती है, यथा—

तस्यापरेष्वपि मृगेषु शरान् मुमुक्षोः (रघुवंश) = दूसरे मृगों पर वाण छोड़ने की इच्छा वाले उस राजा के।

न खलु न खलु वाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्मृगशरीरे (शाकु०) हरिण के इस शरीर पर वाण नहीं छोड़ना चाहिए। सचिवेषु निचिक्षिपे (रघु०) मन्त्रियों पर छोड़ दिया।

१९. 'विश्वास' एवं 'व्यवहार' (चर्चा) अर्थ वाली धातुओं के साथ में जिसमें विश्वास किया जाय सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

कुमारी पुंसि कुत्र विश्वसिति = कुमारी पुरुषों पर कहाँ विश्वास कर सकती है।

त्वयि विश्वसिति मे हृदयम् (काद०) तुझ पर मेरा हृदय विश्वास कर रहा है।

मूर्खो मयि सुष्ठु न व्यवहरति = मूर्ख मुझसे अच्छा व्यवहार नहीं करता है।

कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने (शाकु०) सौतों पर प्रिय सखी जैसा व्यवहार करो।

२०. स्नेह, अभिलाषा, अनुरञ्ज, आदि धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति स्नेह इच्छा सम्मान प्रगट किया जाय उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

किनु खलु बालेऽस्मिन् स्नेहयति मे मनः (शाकु०) मेरा मन इस बालक के प्रति क्यों प्यार कर रहा है।

न तापसकन्यायां शकुन्तलायां मेऽभिलाषः (शाकु०)

मुनि कन्या शकुन्तला के प्रति मेरी अभिलाषा नहीं है।

नृपे प्रजाः अनुरक्ताः = राजा पर प्रजा अनुरक्त हैं।

अस्ति सहोदरस्नेह एतेषु (शाकु०) इनके प्रति मेरा सहोदर ऐसा स्नेह है।

विशेष—'अनुरञ्ज' यदि प्रत्यय से निष्पन्न हो तो कभी २ द्वितीया हो जाती है।

यथा—एषा भवन्तम् अनुरक्ता (शाकु०) यह आप पर अनुरक्त है।

अदि वृषलानुरक्ताः प्रकृतयः (मुद्रा०) प्रजा चन्द्रगुप्त पर अनुरक्त है।

२१. 'युज' धातु के साथ युज धातु से निष्पन्न शब्द के साथ एवम् 'योग्यता' अर्थों का बोध कराने वाले शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते (शाकु०) = पूज्य काश्यप जी बुद्धिमान नहीं हैं, जो इसे आश्रम धर्म में नियुक्त किया है। अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि (शाकु०) = पूर्वजनों का अनुकरण करने वाले आप में यह योग्य ही है।

यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः (शाकु०)
जो पौरव राजा दुष्यन्त के द्वारा धर्म की रक्षा के अधिकार में नियुक्ति है।

२२. 'अप्' उपसर्ग पूर्वक 'राध्' धातु के प्रयोग में जिसके प्रति अपराध होता है उसे सप्तमी में और कभी कभी षष्ठी विभक्ति में रखते हैं। यथा—

१ कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला (शाकु०) किसी पूज्यके प्रति शकुन्तला अपराध कर चुकी है।

२. ननु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु।

३. अपराद्धाऽपि तत्र भवतः कश्यपस्य (शाकु०) श्रीमान कश्यप का अपराध कर चुकी है।

अभ्यासार्थ

१. गंगानदी के तट पर वाराणसी नगरी सुशोभित है।
२. राम के चित्रकूट चले जाने पर अयोध्या सूनी हो गई।
३. वह शिल्पकला में निपुण है इसलिए सब लोग उसका आदर करते हैं।
४. भारत के कवियों में कालिदास सबसे प्रसिद्ध है।
५. यह बालों को पकड़ कर नीचे गिराकर रमेश को पीटा।
६. उस मनुष्य के गुणों पर सारी जनता अनुरक्त है।
७. उस मनुष्य के प्रति मेरा मन स्नेह कर रहा है।
८. रमेश पर मेरा हृदय विश्वास नहीं करता क्योंकि वह एक दुष्ट बालक है।
९. राजा दिलीप ने राज्यभार पुत्र पर सौंपकर वान प्रस्थ में प्रवेश किया।
१०. प्राचीन काल में राजा लोग विद्वानों की सेवा परम कर्तव्य समझते थे।
११. वह कुलक्षणा स्त्री रोते हुए पुत्र को छोड़कर घर चली गई।
१२. सूर्य के उदय होने पर अंधकार दूर हो जाता है।
१३. आपके राजा रहते कौन प्रजा को सता सकता है।
१४. पर्वतों में हिमालय सबसे ऊँचा है।
१५. पहले तक्षशिला में विश्वविख्यात विद्यालय था।

अध्याय ४

समास (Compound)

'तत्र समसनम्' इति समासः। सम् उपसर्ग पूर्वक अस् धातु से घञ् प्रत्यय होकर समास शब्द बनता है। समास शब्द का अर्थ होता है संक्षेप। अर्थात् विभक्ति रहित अनेक पदों के समुदाय को समास कहते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि अनेक पदों का एक पद होना ही समास है, जैसे राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः, यहाँ पर 'राज्ञः' और 'पुरुषः' दोनों पदों की विभक्तियाँ हटाकर एक पद बना देने पर राजपुरुष शब्द बना है। अतः 'राजपुरुष' समासनिष्पन्न शब्द हुआ।

विग्रह (Discompound)

'वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः' समस्त पद के अर्थ को ज्ञान कराने वाले वाक्य को विग्रह कहते हैं। विग्रह का अर्थ है अलग-अलग करना अर्थात् अर्थात् समस्तपदों का पूर्वक्रमानुसार पृथक् पृथक् रख देना 'विग्रह' कहलाता है; जैसेः— राजपुरुषः को पूर्वक्रमानुसार राज्ञः पुरुषः रख दिया गया। अतः इसे विग्रह कहेंगे। विग्रह दो प्रकार का होता है :—

१—लौकिक

२—अलौकिक

१—लौकिक विग्रह उसे कहते हैं जो परिनिष्ठित (प्रयोग के योग्य) और साधु जैसे :—राज्ञः पुरुषः।

२—अलौकिक विग्रह उसे कहते हैं जो प्रयोग के योग्य न हो और असाधु हो; जैसे :—राजन् ङस् पुरुष सु

पुनः विग्रह दो प्रकार का होता है :—

१—स्वपदविग्रह

२—अस्वपदविग्रह

१—जिस पद के साथ विग्रह हो उसी पद के साथ यदि समास भी हो तो उसे 'स्वपदविग्रह' कहते हैं। जैसे—

राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः। यहाँ पर राजन् का पुरुष के साथ विग्रह हुआ और उसी के साथ समास हुआ है। अतः इसे स्वपद विग्रह कहेंगे।

२—अस्वपदविग्रह :—जहाँ विग्रह तो अन्य पद के साथ हो और समास अन्य पद के साथ हो उसे अस्वपद विग्रह कहते हैं; जैसे कृष्णस्य समीपम् = उपकृष्णम्—यहाँ पर विग्रह तो कृष्ण का समीप के साथ है और समास 'उप' के साथ हुआ, अतः इसे अस्वपद विग्रह कहेंगे।

समास के भेद (Kinds)

समास कितने प्रकार का होता है? इस प्रश्न पर आचार्यों का मतैक्य नहीं है। कुछ आचार्य अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि और द्वन्द्व भेदसे समास चार प्रकार मानते हैं, किन्तु भट्टोजि दीक्षित उसे प्रायोवाद कहकर छः भेद बताते हैं। कौण्डभट्ट भी इसी मत को मानते हैं। मञ्जूषाकार और वरदराजाचार्य समास के ५ प्रकार मान्य करते हैं। पहले समास के दो भेद करते हैं: + १ – विशेष-संज्ञा विनिर्मुक्त :—जो एक प्रकार का होता है जिसे केवल समास कहते हैं।

२—विशेषसंज्ञायुक्त—यह चार प्रकार का होता है—१—अव्ययीभाव, (२) तत्पुरुष, (३) बहुव्रीहि (४) द्वन्द्व। इस प्रकार कुल पांच प्रकार हुए।

अग्निपुराण और गरुडपुराण में समास के छः प्रकार बताये गये हैं। वस्तुतः यही मत मान्य और प्रचलित है। हिन्दी जगत् में भी समास के ६ भेद ही माने जाते हैं। इस सम्बन्ध में कोई आचार्य श्लेषात्मक एक श्लोक का उदाहरण देते हैं जिसमें समास के ६ भेदों का स्पष्टीकरण मिलता है।

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मम गेहे नित्यमव्ययीभावः।
तत्पुरुष! कर्मधारय येन स्यामहं बहुव्रीहिः॥

इस प्रकार समास के मुख्य ६ भेद है :—

१—अव्ययीभाव
२—तत्पुरुष

३—कर्मधारय

४—द्वन्द्व

५—बहुव्रीहि

६—द्विगु

विशेष :—१—समास होने पर प्रातिपदिक संज्ञा होती है[1] । और प्रातिपदिक संज्ञा होने से विभक्तियों का लोप हो जाता है[2] ।

२—अव्ययीभाव में प्रथमा से निर्दिष्ट पद की उपसर्जन संज्ञा होती है[3]। और उपसर्जन संज्ञा होने पर उसका पूर्व प्रयोग हो जाता है[4] ।

३—अव्ययीभाव समास होने पर पूरा पद अव्यय हो जाता है[5] । और उससे आनेवाली विभक्ति का लोप हो जाता है ।

४—अव्ययीभाव समास नपुंसक लिंग होता है ।

केवल समास

१—सह सुपा (पा० सू०) सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है, जैसे— पूर्वम् + भूत: = भूतपूर्व: ।

'पूर्वं भूत:' इस विग्रह में यहाँ 'सहसुपा' से समास हुआ । समास होने पर प्रातिपादिक संज्ञा होने से विभक्ति का लोप हो गया । और 'भूतपूर्वे चरट्' इस सूत्रनिर्देश से भूत शब्द का पूर्व प्रयोग हो गया, तब 'भूतपूर्व' यह समास निष्पन्न शब्द बना ।

२—इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च (वार्त्तिक) 'इव' के साथ समास होने पर विभक्ति का लोप नहीं होता, जैसे :—

---

१. कृत्तद्धितसमासाश्च । (पा० सू०)

२. सुपो धातुप्रातिपदिकयोः । (पा० सू० २।४।७२)

३. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् । (पा० सू० १।२।४३।)

४. उसर्जनं पूर्वम् । (पा० सू० २।१।३०)

५. अव्ययीभावश्च (पा० सू० १।१।४१)

वागर्थौ + इव = वागर्थाविव । (वाणी और अर्थ के समान)

जीमूतस्य + इव = जीमूतस्येव । (मेघ के समान)

अव्ययीभाव समास

३—'पूर्व पदार्थप्रधानोऽव्ययीभाव:' अर्थात् जिस समास में पूर्व (प्रथम) पदार्थ (पद का अर्थ) प्रधान होता है वह अव्ययीभाव समास होता है। इस समास में पहला शब्द अव्यय होता है समास होने पर पूरा वाक्य (पद) अव्यय हो जाता है तथा वह नपुंसक लिंग हो जाता हैं।

यदि समस्त पद के अन्त में दीर्घ स्वर आवे तो वह ह्रस्व[1] हो जाता है, अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धिव्यृद्धयर्थाभावात्ययासंप्रति-शब्द-प्रादुर्भाव-पश्चाद्यथानु-पूर्व्ययौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्तवचनेषु" (पा० सू०) अव्यय का विभक्ति, समीप, समृद्धि आदि शब्दों के साथ अव्ययीभाव समास होता है।

विभक्ति = इति = अधि हरौ + इति = अधिहरि।

सामीप्य = समीप = उप। कृष्णस्य समीपम् = उपकृष्णम् (कृष्ण के पास)

गंगाया: समीपम् = उपगंगम्

समृद्धि = सु। मद्राणां समृद्धि: = सुमद्रम्

वृद्धि = दुर्। यवनानां वृद्धि: = दुर्यवनम्

अभाव = निर्। मक्षिकाणामभाव: = निर्मक्षिकम्।

अत्यय = अति। हिमस्यात्यय: = अतिहिमम्

सम्प्रति = अति। निद्रा सम्प्रति न युज्यते=अतिनिद्रम्

शब्दप्रादुर्भाव (प्रकाश)। हरिशब्दस्य प्रकाश: = इतिहरि

पश्चात् = अनु। विष्णो: पश्चात् = अनुविष्णु

---

१. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य (पा० सू०)

अनतिक्रम्य यथा । शक्तिमनतिक्रम्य = यथाशक्ति
योग्य = अनु रूपस्य योग्यम् = अनुरूपम्
वीप्सा = अर्थं अर्थं प्रति = प्रत्यर्थम्
,, दिने दिने = प्रतिदिनम्
आनुपूर्व्यं = अनु ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण = अनुज्येष्ठम् ।

४—**अव्ययीभावे चाकाले** (पा० सू०) अव्ययीभाव समास में 'सह' के स्थान पर 'स' आदेश हो जाता है । जैसे :—
सादृश्य = सह (स) । हरेः सादृश्यम् = सहरि ।
युगपत् = सह (स) । चक्रेण युगपत् = सचक्रम् ।
संपत्ति = सह (स) । क्षत्राणां संपत्तिः = सक्षत्रम् ।
अपरित्यज्य = सह (स) । तृणमपरित्यज्यात्ति = सतृणम् ।
अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते = साग्नि ।

५—**नदीभिश्च** (पा० सू०) समाहार में नदी वाचक शब्दों का संख्या वाचक शब्दों के साथ समास होता है । जैसे—
सप्तानां गङ्गानां समाहारः = सप्तगङ्गम्
द्वयोः यमुनयोः समाहारः = द्वियमुनम्

६—**अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** (पा० सू०) अव्ययीभाव समास में शरद्[1] आदि शब्दों से टच् (अ) प्रत्यय होता है । जैसे :—
शरदः समीपम् = उपशरद् + टच् (अ) = उपशरदम्
दिशः समीपम् = उपदिश् + टच् (अ) = उपदिशम् ।

७—**प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः** (वार्त्तिक) प्रति, पर, सम्, अनु के साथ अक्षि

१—शरद्, विपाश, अनस्, मनस्, उपानह्, अनडुह्, दिक्, हिमवत् हिसक्, विद्, सद्, दिश्, दृश्, विश्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद्, कियद्, जरस् ।

शब्द का समास होने पर टच् (अ) प्रत्यय होता है। और 'यस्येति च' सूत्र से इकार का लोप हो जाता है। जैसे—

अक्ष्णः प्रति = प्रति + अक्षि – अ = प्रत्यक्षम्

अक्ष्णः परम् = पर + अक्षि + अ = परोक्षम्। (यहाँ पर 'परोक्षे लिट्' इस निर्देश से 'ओ' हो गया)

अक्ष्णः योग्यम् = समक्षम्।

अक्ष्णः पश्चात् = अन्वक्षम्।

८—अनश्च (पा० सू०) अन्नन्त (अन् अन्त में हो जिसके) अव्ययीभाव से टच् (अ) प्रत्यय होता है।

नस्तद्धिते (पा० सू०) भ संज्ञक नकारान्त शब्दों के हि (अन्) का लोप होता है तद्धित में। जैसे :—

राज्ञः समीपम् = उपराजन् + टच् (अ) = उपराजम्

आत्मनि अधि = अध्यात्मम्

९—नपुंसकादन्यतरस्याम् (पा० सू०) अन्नन्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों से अव्ययीभाव समास में विकल्प से टच् होता है, जैसे—

चर्मणः समीपम् = उपचर्मन् + टच् (अ) = उपचर्मम्, उपचर्म।

१०—झयः (पा० सू०) झय् प्रत्याहारान्त शब्दों से अव्ययीभाव में विकल्प से टच् होता है; जैसे :—

समिधः समीपम् = उपसमिध्, उपसमिधम्।

तत्पुरुष समास

"उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः" अर्थात् जिस समास में उत्तर पदार्थ-(पद का अर्थ) प्रधान होता है वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

यथा : = राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः यहाँ पर पुरुष की प्रधानता है। अतः यह तत्पुरुष समास हुआ।

तत्पुरुष के भेद

१—व्यधिकरण २—समानाधिकरण

१—व्यधिकरण तत्पुरुष में दोनों पदों की पृथक् २ विभक्तियाँ होती है। और उसे 'विभक्तितत्पुरुष' भी कहते है। जैसे-राज्ञ: पुरुष:।

२—समानाधिकरणं तत्पुरुष में दोनों पदों में समान विभक्तियां होती हैं और इसे कर्मधारय तथा द्विगु समास कहते हैं, जैसे,—कृष्णः सर्प: = कृष्णसर्प:। इस प्रकार तत्पुरुषसमास के मुख्य तीन भेद हुए।

१—विभक्ति तत्पुरुष
२—कर्मधारय तत्पुरुष
३—द्विगु तत्पुरुष

इसके अतिरिक्त तत्पुरुष समास के उपभेद भी होते हैं।

विभक्ति तत्पुरुष

विभक्ति तत्पुरुष समास में दो या दो से अधिक पदों के मध्य में प्रथमा द्वितीया तृतीया आदि विभक्तियाँ लगी रहती हैं। अतः इसे विभक्ति समास कहते हैं। यह ६ प्रकार का होता है। जैसे :—

प्रथमा तत्पुरुष
द्वितीया तत्पुरुष
तृतीया तत्पुरुष
चतुर्थी तत्पुरुष
पञ्चमी तत्पुरुष
षष्ठी तत्पुरुष
सप्तमी तत्पुरुष

१--प्रथमा तत्पुरुष

११पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे (पा० सू०) पूर्व, पर, अधर, उत्तर शब्दों का अवयवी के साथ समास होता है; जैसे—

पूर्वं कायस्य = पूर्वकाय:
अपरं कायस्य = अपरकाय:

१२—अर्धं नपुंसकम् (पा० सू०) नपुंसकलिंग में

मध्यम् = मध्याह्न:
सायाह्न: = पूर्वराम:
अर्ध शब्द का षष्ठयन्त पद के साथ समास होता है,
जैसे—अर्धं पिप्पल्या: = अर्धपिप्पली ।

२--द्वितीया तत्पुरुष

१३—द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नै: (पा० सू०) द्वितीया विभक्त्यन्त शब्दों का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न शब्दों के साथ (द्वितीया तत्पुरुष) समास होता है:, यथा :=

कृष्णं श्रित: = कृष्णश्रित:
दु:खम् अतीत: = दु:खातीत:
नरकं पतित: = नरकपतित:
गामं गत: = ग्रामगत:
सुखम् प्राप्त: = सुखप्राप्त:
दु:खंम् आपन्न: = दु:खापन्न: ।

३--तृतीया तत्पुरुष

१४—तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन (पा० सू०) तृतीया विभक्त्यन्त शब्दों का तत्पुरुष गुणवचन के साथ (तृतीया तत्पुरुष) समास होता है; यथा :—

शंकुलया खण्ड: = शंकुलाखण्ड:
धान्येन अर्थ: = धान्यार्थ:

१५—कर्त्तृकरणे कृता बहुलम् (पा० सू०) कर्त्ता और करण में तृतीया विभक्त्यन्त शब्दों का कृदन्त शब्दों के साथ समास होता है; यथा :—

सुखेन युक्तः = सुखयुक्तः
हरिणा त्रात: = हरित्रात:
विद्यया हीनः = विद्याहीन:
मदेन शून्य: = मदशून्य:
नखैः भिन्न: = नखभिन्न:

१६—पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः (पा० सू०) तृतीया विभक्त्यन्त शब्दों का पूर्व, सदृश, सम, ऊन, अर्थ, कलह, निपुण मिश्र, श्लक्ष्ण शब्दों के साथ तथा इनके अर्थ के अन्य शब्दों के साथ (तृतीया तत्पुरुष) समास होता है; यथा :—

मासेन पूर्वः = मासपूर्वः
मात्रा सदृश: = मातृसदृश:
पित्रा सम: = पितृसम:
मासेन ऊनम् = मासोनम्
धान्येन अर्थः = धान्यार्थः
वाचा कलहः = वाक्कलहः
आचारेण निपुण: = आचारनिपुण:
गुडेन मिश्र: = गुडमिश्र:
आचरेण श्लक्ष्ण: = आचारश्लक्षण:
दध्ना ओदन: = दध्योदन:
व्यवहारेण कुशल: = व्यवहारकुशल: ।

चतुर्थी तत्पुरुष

१७—चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखार्थरक्षितैः (पा० सू०) चतुर्थी विभक्त्यन्त शब्दों का तदर्थ, अर्थ, बलि, हित, सुख, रक्षित शब्दों के साथ समास होता है; यथा:—

यूपाय दारु = यूपदारु
द्विजाय अयम् = द्विजार्थः
भूताय बलिः = भूतबलिः
गवे हितम् = गोहितम्
ब्राह्मणाय सुखम् = ब्राह्मणसुखम्
गवे रक्षितम् = गोरक्षितम्

पञ्चमी तत्पुरुष

१८—पञ्चमी भयेन (पा० सू०) पञ्चमी विभक्त्यन्त शब्दों का भय वाचक शब्दों के साथ (पञ्चमी तत्पुरुष) समास होता है; यथा :—

चोरात् भयम् = चोरभयम् ।
वृकात् भीतिः = वृकभीतिः ।
व्याघ्रात् भीतः = व्याघ्रभीतः ।

१६—अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः (पा० सू०) पञ्चमी विभक्त्यन्त शब्दों का अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित, अपत्रस्त, अल्पश शब्दों के साथ समास होता है ।

यथा :—सुखाद् + अपेतः = सुखापेतः
कल्पनायाः + अपोढः = कल्पनापोढः
चक्रात् + मुक्तः = चक्रमुक्तः ।
स्वर्गात् + पतितः = स्वर्गपतितः ।

२०—स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन (पा० सू०) स्तोक, अन्तिक, दूर और इनके अर्थ के अन्य शब्दों का तथा कृच्छ्र शब्द का 'क्त' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ पञ्चमी समास होता है । और पञ्चमी विभक्ति का लोप नहीं होता[1]; जैसे :—

स्तोकात् + मुक्तः = स्तोकान्मुक्तः
अल्पात् = मुक्तः = अल्पान्मुक्तः
अन्तिकात् आगतः = अन्तिकादागतः

दूरात् + आगतः = दूरादागतः

कृच्छ्रात् + आगतः = कृच्छ्रादागतः[1]

षष्ठीतत्पुरुष

२१—षष्ठी (पा० सू०) षष्ठी विभक्त्यन्त शब्दों का समर्थ सुबन्त के साथ समास होता है; यथा :—

राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः

देवस्य मन्दिरम् = देवमन्दिरम्

२२—याजकादिभ्यश्च (पा० सू०) याजक[2] आदि शब्दों का षष्ठ्यन्त शब्दों के साथ समास होता है; यथा :—

ब्राह्मणानां याजकः = ब्राह्मणयाजकः

देवनां पूजकः = देवपूजकः

राज्ञां परिचारकः = राजपरिचारकः

वेदानामध्यापकः = वेदाध्यापकः

२३—तृजकाभ्यां कर्त्तरि (पा० सू०) कर्तृवाच्य तृ च् एवं अक प्रत्ययान्त शब्दों के साथ षष्ठीसमास नहीं होता है, यथा :—

अपां स्रष्ट्रा, वज्रस्य भर्त्ता,

ओदनस्य पाचकः ।

विशेष :—किन्तु कर्तृवाच्य न होने पर समास होता है, यथा :—

इक्षूणां भक्षिका = इक्षुभक्षिका

भुवः भर्त्ता = भूभर्त्ता

२४—पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणेन (पा० सू०) पूरण प्रत्ययान्त, गुणवाचक शतृ, शब्द एवं शानच् प्रत्ययान्त शब्द,

---

१. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ।

२. याजक, पूजक, परिचारक, परिवेषक, परिषेचक, स्नाप अध्यापक, उत्सादक, उद्वर्त्तक, होतृ, भर्तृ, रथगणक, पत्तिगणक ।

तव्यप्रत्ययान्त, अव्यय (त्वा, तुमुन् आदि) और समानाधिकरण के साथ षष्ठी समास नहीं होता। यथा :—

पूरण प्रत्ययान्त = सतां षष्ठः
गुणवाचक: = ब्राह्मणस्य शुक्ला:
शतृ एवं शानच् = द्विजस्य कुर्वन् कुर्वाणो वा
तव्यप्रत्ययान्त: = ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम्
अव्यय = ब्राह्मणस्य कृत्वा
समानाधिकरण में: = तक्षकस्य सर्पस्य

सप्तमीतत्पुरुष

२५—सप्तमी शौण्डैः (पा० सू०) सप्तमी विभक्त्यन्त शब्दों का शौण्ड, कितव, धूर्त, व्याड, प्रवीण, संवीत, अन्तर, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, निपुण, चपल शब्दों के साथ (सप्तमी तत्पुरुष) समास होता है यथा :—

अक्षेषु + शौण्ड: = अक्षशौण्ड:
सभायां पण्डित: = सभापण्डित:
वाचि पटु: = वाक्पटु:
युद्धे निपुण: = युद्धनिपुण:
कार्ये कुशल: = कार्यकुशल: ।
विद्यायां प्रवीण: = विद्याप्रवीण: ।
वचने धूर्त्त:=वचनधूर्त्त: ।
ईश्वरेषु अधि=ईश्वराधीन:

२६—सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च (पा० सू०) सप्तमी विभक्त्यन्त शब्दों का सिद्ध, शुष्क, पक्व, बन्ध शब्दों के साथ समास होता है, यथा :—

सांकाश्ये सिद्ध:=सांकाश्यसिद्ध:
आतपे शुष्क:=आतपशुष्क:
स्थाल्यां पक्व:=स्थालीपक्व:
चक्रे बन्ध:=चक्रबन्ध:

२७—ध्वाङ्क्षेण क्षेपे (पा० सू०) सप्तम्यन्त शब्दों का निन्दा अर्थ में ध्वाङ्क्षवाची शब्दों के साथ समास होता है, यथा :—

तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव = तीर्थध्वाङ्क्षः

तीर्थे काक इव = तीर्थकाकः ।

कर्मधारयतत्पुरुष

२८—तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः (पा० सू०) विशेष्य और विशेषण का जहाँ समानाधिकरण समास होता है उसे कर्मधारय समास कहते हैं, यथाः कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः = काला साँप । कर्मधारय समास में प्रायः दोनों पदों में प्रथमा विभक्ति होती है, और दोनों पदों के वीच में, 'च असौ, तत्, इव, एव' शब्द लगाकर विग्रह किया जाता है । इसके ६ भेद होते हैं ।

१—विशेषण पूर्वपद कर्मधारय

२—उपमान पूर्वपद कर्मधारय

३—उपमानोत्तर पद कर्मधारय (उपमितसमास)

४—अवधारणापूर्व पद कर्मधारय

५—विशेषणोभयपद

६—विशेषणोत्तरपद

१—विशेषणपूर्वपद कर्मधारक

२९—विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (पा० सू०) जहाँ पर पूर्वपद में विशेषण हो, और बाद में विशेष्य इन दोनों के समास को 'विशेषणपूर्वपद-कर्मधारय समास होता है । यथा :—

नीलमुत्पलम् = नीलोत्पलम्

कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः

सुन्दरः पुरुषः = सुन्दरपुरुषः

सप्त च ते ऋषयः = सप्तर्षयः

२—उपमानपूर्वपद कर्मधारय (उपमान समास)

३०—उपमानानि सामान्यवचनैः (पा० सू०) उपमान वाचक शब्द

तथा उपमेय वाचक शब्दों के बीच 'इव' लगाने पर 'उपमानपूर्वपदकर्मधारय' समास होता है, यथा :—

घन इव श्यामः=घनश्यामः
नवनीतमिव कोमलम्=नवनीतकोमलम्
कमलमिव मुखम्=कमलमुखम्

विशेष :—यदि कर्मधारय का पूर्वपद 'स्त्रीलिङ्ग' हो तो वह समास होने पर पुल्लिङ्ग हो जाता है; यथा :—

सुन्दरी नारी=सुन्दरनारी

३–उपमानोत्तरपद कर्मधारय (उपमित समास)

३१—उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे (पा० सू०) उपमेय वाचक शब्दों का [1]व्याघ्रादि शब्दों के साथ (उपमित कर्मधारय) समास होता है; यथा :—

पुरुषः व्याघ्र इव=पुरुषव्याघ्रः
मुखं चन्द्र इव=मुखचन्द्र।
नरः शार्दूल इव=नरशार्दूलः

४–अवधारणापूर्वपद कर्मधारय

उपमित समास में ही दोनों पदों के बीच 'एव' लगाकर जो समास किया जाता है उसे 'अवधारणा पूर्वपद कर्मधारय' समास कहते हैं, यथा :—

विद्या एव धनम्=विद्या धनम्
दुःखमेव समुद्रः=दुःख समुद्रः
मुखमेव चन्द्रः=मुखचन्द्रः

५–विशेषणोभयपद कर्मधारय जहाँ पर दोनों पदों पर विशेषण

---

१. व्याघ्र, सिंह, ऋक्ष, ऋषभ, चन्दन, वृक, वृष, वराह, हस्तिन्, तरु, कुञ्जर, रुरु, पृषत्, पुण्डरीक, पलाश, कितव ।

होते हैं उसे 'विशेषणोभयपद समास' कहते हैं, जैसे—

१–शुक्लश्च कृष्णश्च = शुल्ककृष्ण: (मृग:) ।

२–शीतश्च उष्णं च = शीतोष्णम् (जलम् ।

३–पूर्वं स्नात: पश्चादनुलिप्त: = स्नातानुलिप्त: ।

४–पूर्वं पीत; पश्चात् प्रतिवद्ध: = पीतप्रतिवद्ध: ।

५–कृष्णश्चासौ सारंगश्च = कृष्णसारंग: ।

६–तुल्यश्चासौ श्वेतश्च = तुल्यश्वेत: ।

७–युवतिश्चासौ जरती च = युवजरती ।

८– युवा चासौ पलितश्च = युवपलित: ।

६ – विशेषणोपद कर्मधारय जहाँ पर विशेष्य पहले हो और विशेषण बाद में हो उसे 'विशेषणोत्तरपद' कहते हैं ।

जैसा — वैयाकरणश्चासौ खसूचिश्च = वैयाकरणखसूचि: । मीमांसकदुर्दुरूढ: ।

द्विगु समास

३२—संख्या पूर्वो द्विगु: (पा० सू०) यदि कर्मधारय समास का पूर्वपद संख्यावाची शब्द हो तो वह 'द्विगुसमास' कहलाता है ।

३३—तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारेच (पा० सू०) तद्धितार्थ का विषय हो या उत्तरपद बाद में हो, या समाहार वाच्य होतो दिशावाचक एवं संख्यावाचक शब्दों के साथ समास हो ता है ।

इस प्रकार द्विगु समास तीन प्रकार का होता है ।

१–तद्धित्तार्थं द्विगु

२–उत्तर पद द्विगु

३–समाहार द्विगु

तद्धितार्थद्विगु

यदि दिशावाची शब्दों के साथ अन्त में तद्धित प्रत्यय लगाकर जो समास होता है उसे 'तद्धितार्थं द्विगु' समास कहते हैं, यथा:--

पूर्वस्यां शालायां भवः = पौर्वशालः
अपरस्यां शालायां भवः = आपरशालः
पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः = पञ्चकपालः

उत्तरपद द्विगु

३४ यदि दोनों पदों में जिसका स्वतन्त्र समास न इष्ट हो ऐसा कोई पद उत्तर पद में लगा हो तो वह 'उत्तरपदद्विगु' समास कहलाता है। यथा :-

पञ्च गावो धनं यस्य स = पञ्चगवधनः
द्वाभ्यां मासाभ्यां जातः = द्विमासजातः
पञ्च हस्ताः प्रमाणमस्य = पञ्चहस्तप्रमाणः

३. 'समाहार' द्विगु

३५ समूह अर्थ का ज्ञान कराने वाले द्विगु समास को 'समाहार द्विगु' कहते हैं। समाहार द्विगु एकवचन होता है और वह नपुंसक लिंग हो जाता है[1], जैसे—

पञ्चानां गवां समाहारः=पञ्चगवम् ।

विशेष :—अकारान्त उत्तरपद परे रहते द्विगु समास में स्त्रीलिंग होता है, किन्तु पात्र, युग, भुवन आदि शब्दों को छोड़कर[2]; जैसे—

त्रयाणां लोकानां समाहारः = त्रिलोकी ।
शतानाम् अब्दानां समाहारः = शताब्दी ।
पञ्चानाम् वटानां समाहारः = पञ्चवटी ।
पञ्चानां पात्राणां समाहारः=पञ्चपात्रम् ।
चतुर्णां युगानां समाहारः = चतुर्युगम् ।
त्रयाणां भुवनानां समाहारः=त्रिभुवनम् ।

---

१. द्विगुरेकवचनम् (पा० सू०), स नपुंसकम् (पा० सू०)
२. अकारान्तोत्तरपदेन द्विगुः स्त्रियामिष्टः । पात्राद्यन्तस्य न ॥

८

१. नञ् तत्पुरुष

३६ नञः (पा० सू०) नञ् (न) का सुबन्त के साथ समास होता है।

३७ नलोपो नञः (पा० सू०) यदि नञ् के बाद कोई व्यञ्जन होता है तो नञ् (न) का लोप होकर (अ) शेष बचता है; जैसे :—

न ब्राह्मणः = अब्राह्मणः

न चरः = अचरः

न गतिः = अगतिः

३८ तस्मान्नुडचि (पा० सू०) यदि नञ् (न) के बाद कोई स्वर आते तो लोप हुए नञ् के बाद नुड् (न) का आगम हो जाता है; जैसे :—

न अश्वः = अनश्वः

न उचितः = अनुचितः

न आगतः = अनागतः

२. प्रादि तत्पुरुष

३९ कुगतिप्रादयः (पा० सू०) कुत्सित अर्थ को कहने वाले 'कु' तथा गतिसंज्ञक शब्द एवं प्र आदि उपसर्ग का सुबन्त के साथ समास होता है, जैसे :—

कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः

प्रकृष्टः आचार्यः = प्राचार्यः

अतिक्रान्तो मालाम् = अतिमालः

निर्गतः अङ्गुलिभ्यः = निरङ्गुलः

रथमतिक्रान्तः = अतिरथः

३. गतित[1]त्पुरुष समास

---

१. समासे नञ्पूर्वो क्त्वो ल्यप् (पा० सू०) समास में क्त्वा के स्थान पर ल्यप् (य) हो जाता है।

४० अव्यय शब्दों का प्रत्ययान्त शब्दों के साथ जो समास होता है, उसे गति तत्पुरुष समास कहते हैं, यथा :—

अलं कृत्वा = अलंकृत्य

पुरः कृत्वा = पुरस्कृत्य

साक्षात् कृत्वा = साक्षात्कृत्य

तिरः कृत्वा = तिरस्कृत्य

अशुक्लं शुक्लं कृत्वा = शुक्लीकृत्य

४. उपपद तत्पुरुष समास

४१ उपपदमतिङ् (पा० सू०) उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ उपपद समास होता है, यथा :—

कुम्भं करोतीति = कुम्भकारः

साम गायति = सामगः

धनं ददाति = धनदः

५. अलुक् तत्पुरुष समास

४२ जिस समास में पूर्व पद के विभक्तियों का लोप न हो उसे अलुक् तत्पुरुष समास कहते हैं, यथा :—

मनसा कृतम् = मनसाकृतम् । मनसा गुप्ता = मनसागुप्ता

आत्मने पदम् = आत्मनेपदम्

परस्मै पदम् = परस्मैपदम्

दूरात् आगतः = दूरादागतः । स्तोकात् मुक्तः स्तोकान्मुक्तः

युधि स्थिरः = युधिष्ठिरः

सरसि जातम् = सरसिजम्

युधि स्थिरः = युधिष्ठिरः

अन्ते वसति = अन्तेवासी

देवानां प्रियः = देवानांप्रियः (मूर्ख)

वाचः युक्तिः = वाचो युक्तिः

६. मध्यमपदलोपी समास

४३ जिस समास में मध्य के पद का लोप हो जाय उसे मध्यपद लोपी समास कहते हैं, यथा :—

शाकप्रियः पार्थिवः=शाकपार्थिवः
देवपूजकः ब्राह्मणः=देवब्राह्मणः
कण्ठे स्थितः कालः = कण्ठेकालः
अविद्यमानः पुत्रः = अपुत्रः
प्रपतितः पर्णः = प्रपंर्णः
चन्द्र इव आननं यस्याः सा = चन्द्रानना
छायाप्रधानस्तरुः = छायातरुः

विशेष

४४—मयूरव्यंसकादयश्च (पा० सू०) मयूरव्यंसक आदि शब्दों का नियम विरुद्ध समास होता है। जैसे :—

मयूरो व्यंसकः = मयूरव्यंसकः
अन्यो राजा = राजान्तरम्
अन्यद् मित्रम् = मित्रान्तरम्
उदक् च अवाक् च = उच्चावचम्
निश्चितं च प्रचितं च = निश्चप्रचम्
नास्ति किंचन यस्य स = अकिंचनः

४५—राजाहःसखिभ्यष्टच् (पा० सू०) तत्पुरुष समासमें जब अन्त में राजन्, अहन् और सखि शब्द आये तो उसके बाद टच् (अ) हो जाता है और 'अन्' एवं सखि के 'इ' का लोप हो जाता है; यथा : —

परमः चासौ राजा = परमराजन् + टच् (अ) = परमराजः
महान् च असौ राजा = महाराजन् + अ = महाराजः
पुण्यं च अहः = पुण्याहन् + अ = पुण्याहः

कृष्णस्य सखा = कृष्णसखि + अ = कृष्णसखः

४६—आन्महतःसमानाधिकरणजातीययोः (पा० सू०) कर्मधारय या बहुव्रीहि समास में महत् शब्द के स्थान पर 'महा' हो जाता है, यथा :-

महान् च असौ राजा = महाराजः
महांश्चासौ देवश्च = महादेवः
महांश्चासौ जातीयश्च = महाजातीयः

४७—अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः (पा० सू०) अहन्, सर्व, एकदेश, संख्यात, पुण्य शब्द तथा अव्यय एवं संख्यावाचक शब्दों के अन्त में यदि रात्रि शब्द हो तो अच् (अ) प्रत्यय हो जाता हैं और रात्रि में 'इ' का लोप हो जाता है। यथा :—

अहश्च रात्रिश्च = अहोरात्रि + अ = अहोरात्रः
सर्वा रात्रिः = सर्वरात्रि + अ = सर्वरात्रः
पूर्वं रात्रेः = पूर्वरात्रि + अ = पूर्वरात्रः
द्वयोः रात्र्योः समाहारः = द्विरात्रि + अ = द्विरात्रम्
अतिक्रान्तो रात्रिम् = अतिरात्रि + अ = अतिरात्रः
गणानां रात्रीणां समाहारः = गणरात्रि + अ = गणरात्रम्
त्रयाणां रात्रीणां समाहारः = त्रिरात्रि + अ = त्रिरात्रम्।

४८—विभाषासेनासुराच्छायाशालानिशानाम् (पा० सू०) सेना, सुरा, छाया, शाला और निशाशब्दान्त तत्पुरुष समास होने पर नपुंसक लिङ्ग होता है और वह ह्रस्व हो जाता है यथा :—

ब्राह्मणस्य सेना = ब्राह्मणसेनम्
यवस्य सुरा = यवसुरम्
इक्षूणाम् छाया = इक्षुच्छायम्
गोः शाला = गोशालम्
शुनः निशा = श्वनिशम्

४९—द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः (पा० ₹०) बहुव्रीहि समास एवं अशीति पद को छोड़ कर शेष संख्या वाचक शब्दों के समास होने पर द्वि और अष्टन् शब्द के टि को 'आ' हो जाता है; जैसे :—

द्वौ च दश च = द्वादश ।
द्वौ च विंशतिश्च = द्वाविंशतिः ।
अष्टौ च दश च = अष्टादश ।
अष्टौ च विंशतिश्च = अष्टाविंशतिः ।

५०—त्रेस्त्रयः (पा० सू०) त्रि शब्द के साथ संख्यावाचक शब्दों का समास होने पर 'त्रि' के स्थान पर 'त्रयस्' (त्रयो) आदेश हो जाता है; जैसे—

त्रयश्च दश च = त्रयोदश ।
त्रयश्च विंशतिश्च = त्रयोविंशतिः ।

५१—सभाराजाऽमनुष्यपूर्वा (पा० सू०) राजा के पर्यायवाचक शब्दों के साथ तथा मनुष्य को छोड़ कर रक्षस्, पिशाच आदि शब्दों के साथ तत्पुरुष समास नपुंसक लिङ्ग हो जाता है; जैसे :—

ईश्वरस्य सभा = ईश्वरसभम् ।
रक्षसः सभा = रक्षःसभम्
पिशाचस्य सभा = पिशाचसभम् ।

बहुव्रीहि समास

५२—अनेकमन्यपदार्थे (पा०सू०) "अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः" अर्थात् जिसका अन्यपद का अर्थ प्रधान हो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं अर्थात् जो पद बहुव्रीहि समास में हो उनका अर्थ न होकर दूसरे अर्थ का बोध करे उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं ।

जैसे :—पीतम् अम्बरं यस्य सः = पीताम्बरः ।
यहाँ पीत एवं अम्बर (वस्त्र) का अर्थ न होकर कृष्ण अर्थ बोध कराता है । अतः यह बहुव्रीहि समास हुआ ।

बहुव्रीहि और तत्पुरुष समास के भेद

तत्पुरुष समास में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है जैसे—
पीतम् + अम्बरम् = पीताम्बरम् (पीला वस्त्र)

और बहुव्रीहि समास में दोनों शब्द मिलकर एक तीसरे का विशेषण हो जाते हैं। जैसे—
पीतम् + अम्बरं यस्य सः = पीताम्बरः कृष्णः (पीलावस्त्र है जिसका अर्थात् पीतवस्त्र धारण करने वाले कृष्ण)

यहाँ पीला और वस्त्र दोनों कृष्ण का विशेषण हो गये, अतः इसे बहुव्रीहि समास कहेंगे। इस प्रकार एक शब्द बहुव्रीहि और तत्पुरुष दोनों हो सकता है।

यथा :— अहं च त्वं च राजेन्द्र ! लोकनाथावुभावपि ।
बहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठीतत्पुरुषो भवान् ॥

अर्थात् किसी समय एक निर्धन मनुष्य (विद्वान्) एक राजा के पास जाकर कहा कि 'अहं च त्वं च राजेन्द्र लोकनाथावुभावपि' हे राजन् हम और आप दोनों लोकनाथ हैं। इस प्रकार सभी दरबारी आश्चर्य में पड़ गये और उसे पागल समझ कर बाहर निकालने लगे। तब वह विद्वान पुनः दूसरा पद्यांश 'बहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठीतत्पुरुषो भवान्' बोल उठा। हे राजन् मैं तो बहुव्रीहि समास हूँ और आप षष्ठी तत्पुरुष हैं। अर्थात् मेरे पक्ष में 'लोकनाथ' का अर्थ "लोका नाथाः (पालकाः) यस्य सः" बहुव्रीहि समास (लोक ही पालक जिसका) होगा और आप के पक्ष में-लोकनाथ का अर्थ षष्ठीतत्पुरुष 'लोकस्य नाथः' लोकनाथ अर्थात् लोक (संसार) के नाथ (स्वामी) होगा। इसपर राजा प्रसन्न होकर बहुत पुरस्कार दे कर विदा किया।

बहुव्रीहि समास के ७ भेद होते हैं।

१—समानाधिकरण बहुव्रीहि

२—व्यधिकरणबहुव्रीहि समास

३—तुल्ययोगबहुव्रीहि

४—व्यतिहारबहुव्रीहि

५—संख्योत्तरपद बहुव्रीहि

६—संख्योभयपद बहुव्रीहि

७—दिगन्तलक्षण बहुव्रीहि

विशेष = बहुव्रीहिसमास में 'यद्' शब्द का रूप (येन, यस्य) आदि तद् शब्द का रूप (सः, सा) आदि लगता है।

१. समानाधिकरण बहुव्रीहि समास

५३—जहाँ दोनों पदों में समान विभक्ति हों उसे समानाधिकरण बहुव्रीहि कहते हैं।

यथा :— प्राप्तमुदकं यम् सः = प्राप्तोदको ग्रामः
पीतमम्बरं यस्य सः = पीताम्बरः
महान् आशयः यस्य सः = महाशयः
वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः = वीरपुरुषको ग्रामः
चित्रा गौः यस्य सः = चित्रगुः

५४—गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यश्च (पा० सू०) उद्, पूति, सु और सुरभि शब्द के बाद गन्ध शब्द के 'अ' स्थान पर 'इ' हो जाता है; यथा :—

उद्गतः गन्धो यस्य सः = उद्गन्धिः
पूतिः गन्धो यस्य सः = पूतिगन्धिः
शोभनः गन्धो यस्य स = सुगन्धिः
सुरभिः गन्धो यस्य सः = सुरभिगन्धिः

५५—स्त्रियां पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (वार्त्तिक) बहुव्रीहि समास में विशेषण स्त्रीलिंग (जो पुंलिङ्ग शब्दों से बना हो) पुंलिङ्ग हो जाता है।

यथा :—रूपवती भार्या यस्य सः = रूपवद्भार्यः।

चित्रा: गाव: यस्य स: = चित्रगुः
वैयाकरणी भार्या यस्य सः = वैयाकरणभार्यः

५६—कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु (वार्तिक) अण्ड, पद, क्षीर, शाव आदि पदों का कुक्कुटी, मृगी, काकी आदि शब्दों के साथ समास होता है; यथा—

कुक्कुट्या: अण्डम् = कुक्कुटाण्डम्
मृग्या: पदम् = मृगपदम्
मृग्या: क्षीरम् = मृगक्षीरम्
काक्या: शाव: = काकशाव:

५७—सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयो: (पा० सू०) मित्र अर्थ होने पर 'सु' उपसर्ग पूर्वक हृदय शब्द और अमित्र (शत्रु) अर्थ होने पर दुर् उपसर्ग पूर्वक हृदय शब्द के स्थान पर हृद् आदेश हो जाता है; यथा :—

सुष्ठु हृदयं यस्य स: = सुहृद् (मित्र)
दुष्टं हृदयं यस्य स: = दुर्हृद् (शत्रु)

५८—नद्यृतश्च (पा० सू०) नदी संज्ञक (ईकारान्त, ऊकारान्त शब्द) एवं ऋकारान्त शब्द के उत्तर पद में होने पर कप् (क्) प्रत्यय हो जाता है;

बह्व्य: नद्य: यस्मिन् स = बहुनदीक: देश: ।
सुन्दरी वधू: यस्य स: = सुन्दरवधूक: पुरुष: ।
बहव: कर्त्तार: यस्मिन् स: = बहुकर्तृक: ग्राम: ।
ईश्वर: कर्त्ता यस्य तत् = ईश्वरकर्तृकं जगत् ।

५९—उर:प्रभृतिभ्य: कप् (पा० सू०) बहुव्रीहि समास में उरस्, सर्पिष् उपानह्, पुमान् अनड्वान्, पय:, नौ, लक्ष्मी:, दधि, मधु, शालि शब्दों के बाद कप् (क) प्रत्यय होता है यथा :—

व्यूढं उर: यस्य स: = व्यूढोरस्क:
प्रिय: सर्पि: यस्य स: = प्रियसर्पिष्क:
द्वौ पुमांसौ यस्मिन् स: = द्विपुंस्क:

६०— **द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः** (पा० सू०) द्वि और त्रि शब्द का मूर्धन् शब्द के साथ बहुव्रीहि समास होने पर 'ष' (अ) प्रत्यय होता है, जैसे—

द्वौ मूर्धानौ यस्य सः = द्विमूर्धन् + ष (अ) = द्विमूर्धः ।

त्रयो मूर्धानः यस्य सः = त्रिमूर्धन् + ष (अ) = त्रिमूर्धः ।

६१—**अन्तर्बहिर्भ्यां लोम्नः** (पा० सू०) अन्तर् और बहिर् शब्द का लोमन् शब्द के साथ बहुव्रीहि समास होने पर 'अप्' (अ) प्रत्यय होता है, जैसेः-

अन्तर् लोमानि यस्य सः = अन्तर् + लोमन् + अप् (अ) = अन्तर्लोमः ।

बहिः लोमानि यस्य सः = बहिर् + लोमन् + अप् (अ) = बहिर्लोमः ।

६२— **धर्मादनिच् केवलात्** (पा० सू०) = एक ही पूर्वपद होने पर धर्मन् शब्द के साथ बहुव्रीहि समास होने पर अनिच् (अन्) प्रत्यय होता हैं; जैसे—

कल्याणं धर्मः यस्य सः = कल्याणधर्मा ।

निवृत्तिधर्मा सन्दिग्धसाध्यधर्मा आदि ।

६३—**नित्यमसिच् प्रजामेधयोः** (पा० सू०) नञ्, सु और दुर् शब्द से परे प्रजा और मेधाशब्द के वाद असिच् (अस्) प्रत्यय होता हैं; यथा :-

अविद्यमाना प्रजा यस्य सः = अप्रजाः (सन्तान रहित)

शोभना प्रजा यस्यसः = सुप्रजाः

शोभना मेधा यस्य सः = सुमेधाः

दुष्टा मेधा यस्य सः = दुर्मेधाः

दुष्टा प्रजा यस्य सः = दुष्प्रजाः

६६—**धनुषश्च** (पा० सू०) बहुव्रीहि समास में धनुष् शब्द के 'ष' के स्थान पर अनङ् (अन्) होता है यथा, :—

शार्ङ्गं धनुः यस्य सः = शार्ङ्गधनु + अन् = शार्ङ्गधन्वन् = शार्ङ्गधन्वा

अधिज्यं धनुः यस्य सः = अधिज्यधन्वन् = अधिज्यधन्वा० (रघु०)

६७— **उद्विभ्यां काकुदस्य** (पा० सू०) 'उद्' और 'वि' उपसर्ग से 'काकुद' शब्द के साथ बहुव्रीहि समास होने पर अन्त का लोप हो जाता है, जैसे—

उद्गतं काकुदं यस्य सः = उत्काकुत् ।

विगतं काकुदं यस्य सः = विकाकुत् ।

६८—पूर्णाद्विभाषा (पा० सू०) पूर्ण शब्द के बाद काकुद शब्द के 'अ' का विकल्प से लोप होता है; जैसे—

पूर्णं काकुदं यस्य सः = पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः ।

६९—इनः स्त्रियाम् (पा, सू०) बहुव्रीहि समास में इन् प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'क' प्रत्यय होता है यथा :—

बहवः दण्डिनः यस्यां सा = बहुदण्डिका नगरी ।

बहवः वाग्मिनः यस्यां सा = बहुवाग्मिका नगरी ।

७०—शेषाद्विभाषा (पा० सू०) जब बहुव्रीहि समास में अन्तिम शब्द में अन्य नियमों के द्वारा यदि कोई विकार न हुआ तो विकल्प से कप् (क) प्रत्यय होता है, यथा :—

महत् यशः यस्य सः = महायशस्कः, महायशाः

अन्यत् मनः यस्य सः = अन्यमनस्कः, अन्यमनाः

द्वौ पुमांसौ यस्य सः = द्विपुस्कः, द्विपुमान्

बहवः मालाः यस्य सः = बहुमालकः, बहुमालः

२. व्यधिकरण बहुव्रीहि समास

७१—जहाँ दोनों पदों में भिन्न भिन्न विभक्तियाँ होती हैं उसे व्यधिकरण बहुव्रीहि समास कहते हैं यथा :—

पुण्ये मतिः यस्य सः = पुण्यमतिः

धनुः पाणौ यस्य सः = धनुष्पाणिः ।

शशी: शेखरे यस्य सः = शशिशेखरः ।

७२—अल्पाख्यायाम् (पा० सू०) अल्प अर्थ को बोध करने वाले गन्ध शब्द के 'अ' के स्थान 'इ' हो जाता है, यथा :—

सूपस्य गन्धः (लेशः) यस्मिन् तत् = सूपगन्धि ।

घृतस्य गन्धः (लेशः) यस्मिन् तत् = घृतगन्धि ।

७३–पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः (पा० सू०) बहुव्रीहि समास में हस्तिन्, अश्व, अज, कपोत, कुसूल, गणिका आदि से भिन्न उपमानवाचक शब्द से परे पाद शब्द के अन्त के 'अ' का लोप हो जाता है, यथा :—

व्याघ्रस्येव पादौ अस्य = व्याघ्रपात्

७४–संख्यासुपूर्वस्य (पा० सू०) संख्यावाचक शब्द और 'सु' पूर्वक पाद शब्द के 'अ' का लोप होता है। यथा :—

द्वौ पादौ अस्य = द्विपात्

शोभनौ पादौ अस्य = सुपात्

३. संख्योत्तरपद बहुव्रीहि

जिस समस्त पद के अन्त का पद संख्यावाचक हो उसे संख्योत्तर पद बहुव्रीहि कहते हैं।

७५—संख्ययाऽव्ययासन्नदूराधिकसंख्याः संख्येये—(पा० सू०) संख्या वाचक अर्थ में संख्याशब्दों का अव्यय के साथ समास होता है। और वह बहुव्रीहि समास होता है; जैसे—

दशानां समीपे ये सन्ति ते = उपदशाः (नव या एकादश)

विंशतेरासन्ना इति = आसन्नविंशाः ।

चतुर्णां समीपे ये सन्ति = उपचतुराः ।

चत्वारिंशद्भ्यः अधिकाः = अधिकचत्वारिंशाः ।

त्रिंशतः अदूराः = अदूरत्रिंशाः ।

७६—संख्योभयपद बहुव्रीहि (४)

जिस समस्त पद के दोनों पद संख्या वाचक हों उसे संख्योभयपदबहुव्रीहि कहते हैं; जैसे—

द्वौ वा त्रयो वा = द्वित्राः ।

त्रयो वा चत्वारो वा = त्रिचतुराः ।

द्विः आवृताः दश इति = द्विदशाः ।

५. तुल्ययोग बहुव्रीहि

७७—**तेनसहेति तुल्ययोगे (पा० सू०)** तुल्ययोग में तृतीयान्त पद का 'सह' के साथ समास होता है और 'सह' के स्थान पर 'स' हो जाता है यथाः—

विनयेन सह = सविनयम्

अनुजेन सह = सानुजः

पुत्रेण सह = सपुत्रः

प्रकृत्याशिषि (पा० सू०) आशीर्वाद अर्थ में 'सह' के स्थान पर 'स' आदेश नहीं होता; जैसे :—

स्वस्ति राज्ञे = सहपुत्राय, सहामात्याय ।

६. व्यतिहार बहुव्रीहि

७८—**इच्कर्मव्यतिहारे (पा० सू०)** कर्मव्यतिहार बहुव्रीहि में उत्तर पद के बाद इच् प्रत्यय होता है ।

७९—**तत्र तेनेदमितिसरूपे (पा० सू०)** समान रूप वाले सप्तमी विभक्त्यन्त शब्दों के ग्रहण विषय में तथा समान रूप वाले तृतीयान्त के प्रहरण विषय में (युद्ध बोधक अर्थ में) समास होता है और उसे व्यतिहार बहुव्रीहि समास कहते हैं । यथा :—

केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम् = केशाकेशि

बाहुषु बाहुषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम् = बाहूबाहवि

दण्डैः च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम् = दण्डादण्डि

मुष्टिभिः मुष्टिभिः प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम् = मुष्टीमुष्टि

मुसलैः मुसलैः प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम् = मुसलामुसलि

हस्तैः हस्तैः प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं = हस्ताहस्ति

७. दिगन्तलक्षण बहुव्रीहि

८०—**दिङ्नामान्यन्तराले (पा० सू०)** दिशाओं के मध्य अर्थ अभिप्रेत होने पर बहुव्रीहि समास होता है, जैसे—

दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं दक्षिणपूर्वा ।
उत्तरस्याः पूर्वस्याश्च दिशोन्तरालं = उत्तरपूर्वा ।
ऐन्द्र्याश्च कौबेर्याश्चान्तरालं दिक् = ऐन्द्रकौबेरी ।

द्वन्द्व समास

८१—चार्थे द्वन्द्वः (पा० सू०) 'च' के अर्थ में अर्थात् दो या दो से अधिक ऐसे शब्द जिसके बीच में 'च' (और) आवे तो वह द्वन्द्वसमास होता है । 'च' के चार अर्थ होते हैं =

(१) समुच्चय (२) अन्वाचय (३) इतरेतर योग (४) समाहार ।

(१) परस्पर निरपेक्ष अनेक पदार्थों का एक पदार्थ में अन्वय (सम्बन्ध) होना समुच्चय कहलाता है । जैसे–'ईश्वरं गुरुञ्च भजस्व' इस उदाहरण में ईश्वर और गुरु पद परस्पर निरपेक्ष हैं और उनका सम्बन्ध 'भजस्व' क्रिया के साथ हैं ।

(२) एक पदार्थ का प्रधान रूप से और दूसरे का गौण रूप से जो किसी अन्य पदार्थ से सम्बन्ध होता है उसे 'अन्वाचय' कहते हैं । जैसे—

'भिक्षामट गाञ्चानय' इस उदाहरण में भिक्षाटनरूप मुख्य कार्य है और गवानयन गौण ।

३. इतरेतर द्वन्द्व

८२—जहाँ पर दो पद होने पर द्विवचन और दो से अधिक पद होने पर वहुवचन होता है उसे इतरेतर द्वन्द्व समास कहते हैं यथा :—

धवश्च खदिरश्च = धवखदिरौ
हरिश्च हरश्च = हरिहरौ
शिवश्च केशवश्च = शिवकेशवौ
हरिश्च हरश्च गुरुश्च = हरिहर गुरवः
रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च = रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः ।
अहश्च दिवा च = अहर्दिवम्

४. समाहार द्वन्द्व

८३—जहाँ अनेक पदों का समूह अर्थ प्रकट हो उसे समाहार द्वन्द्व कहते हैं। समाहार द्वन्द्व में एक वचन और नपुंसकलिंग होता है। यथा :—

पाणी च पादश्च = पाणिपादम्
बदराणि च आमलकानि च = बदरामलकम्
गङ्गा च शोणश्च = गङ्गाशोणम्
वाक्च त्वक्च = वाक्त्वचम्।
रथिकश्च अश्वारोहश्च = रथिकाश्वरोहम्।

८४—येषां च विरोधः शाश्वतिकः (पा० सू०) जिन जन्तुओं का परस्पर विरोध स्वभाविक हो वहाँ भी समाहारद्वन्द्व समास होता है। यथा :—

अहिश्च नकुलश्च = अहिनकुलम्
गौश्च व्याघ्रश्च = गोव्याघ्रम्
काकश्च उलूकश्च = काकोलूकम्

८५—विभाषा - वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जन-पशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् (पा० सू०) वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि इन सात शब्दों का द्वन्द्व तथा अश्ववडव, पूर्वापर, अधरोत्तर, इन तीन द्वन्द्वों में भी समाहारद्वन्द्व होता है : यथा—

प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च = प्लक्षन्यग्रोधम्, प्लक्षन्यग्रोधाः।
दधिच घृतञ्च = दधिघृतम्, दधिघृते
गौश्च महिषाश्च = गोमहिषम् = गोमहिषाः
शुकः च बकाश्च = शुकबकम्, शुकबकाः
अश्वश्च वडवाश्च = अश्ववडवम् = अश्ववडवाः।
बदराणि चामलकानि च = बदरामलकम्।
कुशाश्च काशाश्च = कुशकाशम्।

एकशेष द्वन्द्व

८६ जहाँ समान पदों के समास में एक का शेष रहे उसे एकशेष द्वन्द्व कहते हैं। यथा—

रामश्च रामश्च = रामौ

हरिश्च हरिश्च हरिश्च = हरयः ।

८७ पुमान् स्त्रिया (पा० सू०) स्त्रीलिङ्ग वाचक पद के साथ समास होने पर पुल्लिङ्ग पद शेष रहता है; यथा :—

हंसी च हंसश्च = हंसौ

पुत्रश्च दुहिता च = पुत्रौ

भ्राता च स्वसा च = भ्रातरौ

श्वश्रूश्च श्वशुरश्च = श्वशुरौ

माता च पिता च = पितरौ = मातापितरौ ।

८८ त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् (पा० सू०) सब शब्दों के साथ समास होने पर त्यदादि शब्द शेष रहता है; यथा—

स च देवदत्तश्च = तौ

तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्तश्च = तानि

विशेष :— त्यदादि में आपस में समास होने पर बाद वाला शेष बचता है; यथा स च यः च = यौ

कहीं कहीं पहले का भी शेष रहता है यथा : = स च यः च = तौ

अध्याय ५

तद्धितप्रत्यय

शब्दों के बाद प्रत्यय लगाकर जो शब्द बनते हैं वे तद्धित प्रत्ययान्त शब्द कहलाते हैं और उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं। तद्धित शब्द का अर्थ है 'तेभ्य: प्रयोगेभ्य: हिता: इति तद्धिता:' ऐसे प्रत्यय जो उन प्रयोगों के काम में आते हैं। महर्षि पाणिनि ने तद्धित प्रत्यय के लिए कुछ आवश्यक नियम बताये हैं उन्हें ध्यान में रखना चाहिए। वे निम्न लिखित हैं :

१—तद्धितेष्वचामादे: (पा० सू०) तद्धित में ञिति और णिति (अर्थात् जहाँ ञ् और ण् की इत्संज्ञा (लोप) हुई हो) प्रत्यय परे रहते शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है।

दशरथ + इ = दाशरथि:

२—किति च (पा० सू०) तद्धित में कित् (जहाँ क् को इत्संज्ञा (लोप) हुई हो) प्रत्यय परे रहते शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि होती है, यथा :—

दिन + ठक् = दिन + इक = दैनिक:

३—यस्येति च (पा० सू०) भ संज्ञक शब्द के अन्तिम इ और अ को लोप होता है, तद्धित में ईकार परे रहते। यथा :—

वसुदेव + अण् = वसुदेव् + अ = वासुदेव

४—ओर्गुण: (पा० सू०) यदि उकारान्त शब्द से कोई प्रत्यय होता है तो उसका गुण हो जाता है।

मनु + अ = मनो + अ = मानव:

५—ठस्येक: (पा० सू०) प्रत्यय के ठ के स्थान पर इक हो जाता है, यथा—

दिन + ठ = दिन + इक = दैनिक:

६—युवोरनाकौ (पा०सू०) यदि प्रत्यय का यु तथा वु आवे तो यु के स्थान पर अन और वु के स्थान पर अक हो जाता है। यथा :—

नन्द + यु = नन्द + अन = नन्दन:

राजन् + वु = राज + अक = राजक

७—आयनेयीनी यियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् (पा०सू०) प्रत्यय के आदि के फ, ढ, ख, छ, घ के स्थान पर क्रम से आयन्, एय, ईन, ईय, इय आदेश होता है।

अण् प्रत्यय

१—(क) तस्यापत्यम् (पा०सू०) अपत्य (सन्तान बोधक अर्थ में शब्दों से अ (अ) प्रत्यय होता है, यथा—

वसुदेवस्यापत्यम् = वासुदेव:

शिवस्यापत्यम् = शैव:

वसिष्ठस्यापत्यम् = वासिष्ठः

नकुलस्यापत्यम् = नाकुल:

पृथाया: अपत्यम् = पार्थ:

पर्वतस्यापत्यं = पार्वती

(ख) अश्वपत्यादिभ्यश्च (पा० सू०) अश्वपति, गणपति, पशुपति, राष्ट्रपति, धान्यपति, सभापति आदि से भी + अण् प्रत्यय होता है, यथा :—

अश्वपतेरपत्यं = आश्वपतम्

गणपतेरपत्यं = गाणपतम्

पशुपतेरपत्यं = पाशुपतम्

२—तस्येदम् (पा० सू०) सम्बन्ध अर्थ में भी अण् (अ) प्रत्यय होता है, यथा :—

देवस्येदं = दैवम् (देव का)

इन्द्रस्येदम् = ऐन्द्रम् (इन्द्र का)

३—तस्य भावः (पा० सू०) भाव अर्थ में भी अण् (अ) प्रत्यय होता है, यथा :—

मुनेः भावः = मौनम्
यूनो भावः = युवन् + अण् = यौवनम्
लघोः भावः = लघु + अण्=लाघवम्

४—सास्य देवता (पा० सू०) अस्य इस षष्ठ्यन्त पद से प्रथमान्त देवता वाचक शब्दों से भी अण् प्रत्यय होता है, यथा :—

इन्द्रो देवता अस्य = इन्द्र + अण् = ऐन्द्रं हविः
पशुपतिः देवता अस्य = पशुपति + अण् = पाशुपतम्
बृहस्पतिः देवता अस्य = बार्हस्पतम्

५—तस्य समूहः (पा० सू०) समूह अर्थ में षष्ठ्यन्त शब्द से भी अण् (अ) प्रत्यय होता है, यथा :—

काकानाम् समूहः=काक + अण् = काकम्
बकानाम् समूहः=बक + अण् = बाकम्
युवतीनां समूहः=युवन् + अण् = यौवतम्
भिक्षाणां समूहः = भिक्षा + अण् = भैक्षम्
गर्भिणीनां समूहः = गर्भिणी + अण् = गार्भिणम्

६—तस्य निवासः (पा० सू०) निवास अर्थ में षष्ठ्यन्त प्रातिपदिक से भी अण् (अ) प्रत्यय होता है, यथा :—

कुरूणां निवासः = कुरु + अण् = कौरवम्
शिबीनां निवासः = शिबि + अण् = शैबम्

७—तदधीते तद्वेद (पा० सू०) तद्धिते (वह पढ़ता है) तद्वेद (उसे जानता है) इस अर्थ में प्रातिपदिक से अण् (अ) प्रत्यय होता है यथा :—

व्याकरणमधीते वेद वा = व्याकरण + अण्

८—नय्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौतु ताभ्यामैच् (पा० सू०) पदान्त से और य्, व् से परे वृद्धि न होकर उसके पूर्व क्रमसे ऐ, औ का आगमन हो जाता है, यथा :—

व्याकरण—अ—वैयाकरणः

९—तस्य विकरः (पा० सू०) विकार अर्थ में भी प्रातिपदिक से अण् (अ) प्रत्यय होता है, यथा :—

सुवर्णस्य विकारः = सुवर्ण + अण् = सौवर्णः

अश्मनः विकारः = अश्मन् + आण् = आश्मनम्

१०—तत्र जातः (पा० सू०) जात (पैदा होना) अर्थ में सप्तम्यन्त प्रतिपादिक से अण् प्रत्यय होता है, यथा :—

स्रुघ्ने जातः + स्रौघ्नः = अण् = स्रोघ्नः । कुरुषु जातेः + अणू = कौरवः

११—तत्र भवः (पा० सू०) सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से भी भवः (होना) अर्थ में अण् (अ) प्रत्यय होता है, यथा :—

स्रुघ्ने भवः = स्रौघ्नः

१२—तत आगतः (पा० सू०) पंचम्यन्त प्रातिपदिक से आगतः (आया) अर्थ में अण् प्रत्यय होता है, यथा :—

तीर्थादागतः = तीर्थ + अण् = तैर्थः

१३—तस्येश्वरः (पा० सू०) ईश्वरः (स्वामी) अर्थ में षष्ठ्यन्त प्रातिपादिक से अण् (अ) प्रत्यय होता है, यथा :—

पृथिव्या = ईश्वरः = पृथिवी + अण् = पार्थिवः

सर्वभूमेरीश्वरः = सर्वभूमि + अण् = सार्वभौमः

१४—प्रज्ञादिभ्यः (पा० सू०) स्वार्थ में प्रज्ञ आदि शब्दों से भी अण् (अ) प्रत्यय होता है, यथा :—

चोर एव = चौरः । देवता एव = दैवतः

प्रज्ञः एव = प्राज्ञः । बन्धुः एव = बान्धवः

इगन्ताच्च लघुपूर्वात् (पा० सू०) ह्रस्व वर्णपूर्व में है जिसके ऐसे इकारान्त, उकारान्त ऋकारान्त, लृकारान्त शब्दों से भाव और कर्म में अण् प्रत्यय होता है, यथा:—

शुचेः भावः कर्म वा = शुचि + अण् (अ) = शौचम्

मुनेः भावः कर्म वा = मुनि + अण् (अ) मौनम्

इ प्रत्यय

अत इञ् (पा० सू०) अपत्य अर्थ में अकारान्त शब्दों से इञ् (इ) प्रत्यय होता है, यथा :—

दक्षस्य + अपत्यम् = दक्ष + इ = दाक्षिः

दशरथस्य + अपत्यम् = दशरथ + इ = दाशरथिः

ढक् ढ् प्रत्यय या 'ढ' प्रत्यय

स्त्रीभ्यो ढक् (पा० सू०) स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दों से अपत्य अर्थ ढक् प्रत्यय होता है (ढ के स्थान पर एय होता है) यथा :—

विनताया + अपत्यम् = विनता + ढक् = विनता + एय = वैनतेयः (गरुड़) । कुलटायाः + अपत्यम् कुलटा + ढक् = कुलटा + एय = कौलटेयः (कुटनी का पुत्र) राधायाः + अपत्यम् = राधा + ढक् - राधा + एय = राधेयः (राधा का पुत्र) । गंगायाः अपत्यम् = गँगा + एय = गांगेयः (भीष्म) । भगिन्याः + अपत्यम् = भगिनी + ढक् = भागिनेयः (भांजा) । नद्यादिभ्यो ढक् (पा० सू०) जातः (पैदा होना) आदि अर्थों में नदी, वाराणसी, मही, श्रावस्ती, कौशाम्बी, पाठा, माया आदि शब्दों से भी ढक् प्रत्यय होता है, यथा :—

नद्यां जातः = नदी + ढक् + एय = नादेयम्

वाराणस्यां जातः = वाराणसी + ढक् = वाराणसी + एय = वाराणसेयम्

---

† प्रज्ञ, वणिज, उष्णिज, प्रत्यक्ष, विडस्, विद्या, मनस्, श्रोत्र, शरीर, कृष्ण, मृग, चौर, शत्रु, चक्षुस्, वसु, मरुत्, वयस्, असुर, रक्षस्, पिशाच देवता, बन्धु (आदि) ।

कोशाड्ढञ् (पा० सू०) कोश शब्द से सम्भवति (पैदा होता है) अर्थ में ढ् प्रत्यय होता है, यथा :—

कोशे सम्भवति = कोश + ढ = कोश + एय = कौशेयम्। पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् (पा० सू०) साधु अर्थ में सप्तम्यन्त पथिन्, अतिथि, वसति, और स्वपति शब्द से ढ प्रत्यय होता है, यथा :—

पथिषु साधु = पथिन् + ढ् = पथिन् + एय = पाथेयम्
अतिथिषु साधु = अतिथि + ढ् = अतिथि + एय = आतिथेयः
स्वपतौ साधु = स्वपति + ढ् स्वपति + एय = स्वपातेयम्

ठक्, ठ, ठन्, ठप् आदि प्रत्यय

१—रेवत्यादिभ्यष्ठक् (पा० सू०) रेवती, अश्वपाली, द्वारपाली, दण्डग्राह कर्णग्राह, ग्राह आदि शब्दों से अपत्य अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है और ठ के स्थान पर 'इक्' होता है।

रेवत्याः + अपत्यम् = रेवती + ठक् = रेवती + इक = रैवतिकः
अश्वपाल्याः + अपत्यम् = अश्वपाली + ठक् = अश्वपाली + इक् = अश्वपालिकः
द्वारपाल्याः + अपत्यम् = द्वारपाली + ठक् = द्वारपाली + इक = द्वारपालिकः।

संस्कृतम् (पा० सू०) तृतीयान्त शब्द से संस्कृतम् अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है, यथा :—

दध्ना संस्कृतम् = दधि + ठक् = दधि + इक = दाधिकम्।
मरिचेन संस्कृतम् = मरिच + ठक् = मरिच + इक = मारीचिकम्।

चरति (पा० सू०) चरति अर्थ में (जाता है, खाता है) तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है, यथा :—

हस्तिना चरति = हस्ति + ठक् = हस्ति + इक = हास्तिकः
शकटेन चरति = शकट + ठक् = शकट इक = शाकटिकः।

धर्मं चरति (पा० सू०) अधर्माच्चेति वक्तव्यम् (वार्त्तिक) चरति अर्थं में द्वितीयान्त धर्म और अधर्म शब्द से भी ठक् प्रत्यय होता है, यथा :—

धर्मं चरति = धर्म + ठक् = धर्म + इक = धार्मिकः ।

अधर्मं चरति = अधर्म + ठक् = अधर्म + इक = आधर्मिकः ।

रक्षति (पा० सू०) रक्षति (रक्षा करता है) अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है ।

समाजं रक्षति = समाज + ठक् = समाज + इक = सामाजिकः ।

शब्ददर्दुरं करोति (पा० सू०) करोति (करता है) अर्थ में द्वितीयान्त शब्द और दर्दुर से ठक् प्रत्यय होता है, यथा :—

शब्दं करोति = शब्द + ठक् = शब्द + इक = शाब्दिकः

दर्दुरं करोति दर्दुर + ठक् = दर्दुर + इक = दार्दुरिकः

पक्षिमत्स्यमृगान्हन्ति (पा० सू०) हन्ति (मारता है) अर्थ में द्वितीयान्त पक्षिवाचक मत्स्यवाचक और मृग वाचक शब्दों से भी ठक् प्रत्यय होता है, यथा : —

पक्षिणः + हन्ति = पक्षि + ठक् = पक्षि + इक = पाक्षिकः

शकुनान् + हन्ति = शकुन + ठक् = शकुन + इक = शाकुनिकः

मयूरं हन्ति = मयूर + ठक् = मयूरं + इक = मायूरिकः

मीनान् + हन्ति = मीन + ठक् = मीन इक = मैनिकः

हरिणान् + हन्ति = हरिण + ठक् = हरिण + इक = हारिणिकः

अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः (पा० सू०) अस्ति मतिः यस्य, नास्ति मतिः इत्यादि अर्थ में भी ठक् प्रत्यय होता है, यथा :

अस्ति मतिर्यस्य स = अस्ति + ठक = अस्ति + इक = आस्तिकः

नास्ति मतिर्यस्य सः = नास्ति + ठक् = नास्ति + इक = नास्तिकः

दिष्टं मतिर्यस्य सः = दिष्ट + ठक् = दिष्ट + इक = दैष्टिकः

तत्र नियुक्तः (पा० सू०) नियुक्तः, अर्थ में सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से ठक् और ठन् प्रत्यय होता है, यथा :—

आकरे नियुक्तः —आकर + ठक् = आकर + इक = आकरिकः

देवागारे नियुक्तः = देवागार + ठन् = देवागार इक = दैवागरिकः

कालाट्ठञ् (पा० सू०) काल (समय) वाची शब्दों से भवः अर्थ में ठ्, प्रत्यय होता है, यथा :—

कालेभवः = काल + ठ् = काल + इक = कालिकः

मासे भवः = मास + ठ् = मास + इक = मासिकः

संवत्सरे भवम् — संवत्सर + ठ्—संवत्सर + इक—सांवत्सरिकम्

वर्षासु भवः—वर्षा + ठ्—वर्षा इक—वार्षिकः

गच्छतौ परदारादिभ्यः (पा० सू०) गच्छति अर्थ में परदार, गुरुतल्प आदि शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है, यथा—

परदारान् गच्छति—परदार + ठक्—पारदारिकः

गुरुतल्पं गच्छति — गुरुतल्प + ठक्—गौरतल्पिकः

तदधीते तद्वेद (पा० सू०) तदधीते । उसे पढ़ता है। तद्वेद (उसे जानता है) इस अर्थ में द्वितीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय भी होता है, यथा—

न्यायमधीते वेद वा = न्याय + ठक् नैयायिकः

वृत्तिमधीते वेद वा = वृत्ति + ठक् = वार्त्तिकः

वेदमधीते वेद वा = वेद + ठक् = वैदिकः

पुराणमधीते वेद वा = पुराण + ठक् = पौराणिकः

इतिहासमधीते वेद वा = इतिहास + ठक् = ऐतिहासिकः

तेन क्रीतम् (पा०सू०) क्रीतम् (खरीदा हुआ) अर्थ में तृतीयान्त प्रातिपदिक से ठक् प्रत्यय होता है ।

प्रस्थेन क्रीतम् = प्रस्थ + ठक् = प्रास्थिकम्

गोपुच्छेन क्रीतम् = गोपुच्छ + ठक् = गौपुच्छिकम्

नौद्व्यचष्ठन् (पा सू०) तरति अर्थ में नौ तथा दो स्वर वाले शब्दों से ठन् प्रत्यय होता है, यथा—

नावा तरति = नौ + ठन् = नाविकः

घटेन तरति=घट + ठन् = घट + इक्=घटिकः

पर्पादिभ्यष्ठन् (पा०सू०) चरति अर्थ में तृतीयान्त पर्प आदि शब्दों से ठन प्रत्यय होता है, यथा—

रथेन चरति=रथ + ष्ठन्=रथ + इक = रथिकः

अश्वेन चरति = अश्व + ष्ठन्=अश्व + इक=आश्विकः

जालेन चरति=जाल + ठन् = जाल + इक = जालिकः

अञ् प्रत्यय

उत्सादिभ्योऽञ् (पा०सू०) उत्सादि शब्दों से अपत्य आदि अर्थों में अञ प्रत्यय होता है, यथा —

भारतस्य अपत्यं राजा वा= भारतम् भारतः

जनपदानां राजा=जानपदः

उशीनरस्य राजा=औशीनरः

पाचालानां राजा = पाचालः

कुरूणाम् राजा = कौरवः

उत्स, भरत, जनपद, उशीनर, ग्रीष्म, कुरु, पांचाल, सुवर्ण, देव, महानस, महानद, महाप्राण, उदपान, विकिर, तरुण, तलुन, पृथिवी, रथन्तर, मध्यंदिन आदि। विद, कश्यप, दुर्व, कुशिक, भरद्वाज, कन्दर्प, विश्वानर, आपस्तम्ब, धनु, विष्णु, रक्षन्तर, निषाद, शवर, मठर, मृडु, प्रम, दुहितृ आदि।

अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्यो (पा०सू०) विद आदि शब्दों से अपत्य अर्थ में प्रत्यय होता है, यथा—

विदस्य गोत्रापत्यम्=वैदः

पुत्रस्यापत्यम् = पौत्रः

दुहितुरपत्यम् = दौहित्रः

जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् (पा० सू०) जनपद वाची और क्षत्रियवाची शब्दों से अपत्य और 'तद्राजा' (उसका राजा) अर्थ में अञ् होता है, यथाः-

इक्ष्वाकोरपत्यम् = ऐक्ष्वाकः

पंचालानाम् राजा अपत्यम् = पांचालः

ण्य प्रत्यय

दित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः (पा०सू०) दिति, अदिति, आदित्य और पति शब्दान्त शब्दों से अपत्यादि अर्थों में ण्य (य) प्रत्यय होता हैं, यथा—

दितेः + अपत्यम् = दिति + ण्य = दैत्यः

अदितेः + अपत्यम् = अदिति + ण्य = आदित्यः

प्रजापतेः + अपत्यम् = प्रजापति + ण्य = प्राजापत्यः

कुरूणामपत्यं राजा वा (पा सू०) करु और नकारादि शब्दों के बाद अपत्य या राजा अर्थ में ण्य प्रत्यय होता है, यथा :–

कुरूणामपत्यं राजा वा = कौरव्यः

निषधानां राजा = नैषध्यः

य्, यत्, य प्रत्यय

गर्गादिभ्यो यञ् (पा०सू०) अपत्य अर्थ में गर्ग आदि शब्दों से यञ् (य) प्रत्यय होता यथा :—

गर्गस्य + अपत्यम् = गर्ग + य = गार्ग्यः

धूमस्य गोत्रापत्यम् = धूम + य = धौम्यः

शाण्डिलस्य गोत्रापत्यम् = शाण्डिल + य = शाण्डिल्यः

वर्ग, वत्स, व्याघ्रपात्, विदभृत, अगस्ति, पुलस्ति, चमस, रेभ, शङ्ख, शक, धूम, लोहित, बभ्रु, भण्डु, जिगीषु, मनु, वृक्ष, वतण्ड, शकल, अगस्त्य, यज्ञवल्क, शण्डिल, चणक, मुद्गल, मुसल, जमदग्नि, पराशर, अश्मरथ, कृष्ण, भिषज्, पिप्पलू आदि ।

राजश्वशुराद्यत् (पा०सू०) राजन्, और श्वशुर शब्द से अपत्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है ।

यथा :—राज्ञः अपत्यम् = राजन्यः

श्वशुरस्य अपत्यम् = श्वशुर + यत् = श्वशुर्यः (साला)

गोपयसोर्यत् (पा० सू०) गो और पयस् शब्द से विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होता है,

यथा :—गोः विकारः = गो + यत् = गव्यम्

पयसः विकारः = पयस् + यत् = पयस्यम्

तत्र साधुः (पा० सू०) साधु अर्थ में सप्तम्यन्त प्रातिपदिक से यत् प्रत्यय होता है, यथा :—

अग्रे साधुः = अग्र + यत् = अग्र्यः

कर्मणि साधुः = कर्मन् + यत् = कर्मण्यः

शरणे साधुः = शरण + यत् = शरण्यः

सभायाः यः (पा० सू०) साधु अर्थ में सप्तम्यन्त सभा शब्द से य प्रत्यय होता है।

यथा :—सभासु साधुः = सभा + य = सभ्यः

समान तीर्थे वासी (पा० सू०) वासी (रहनेवाला) अर्थ में सप्तम्यन्त समान तीर्थ शब्द से यत् प्रत्यय होता है और समान के स्थान पर स हो जाता है, यथा:—

समाने तीर्थे वसति = समानतीर्थ + यत् = सतीर्थ्यः

उगवादिभ्यो यत् (पा० सू०) हितम् अर्थ में चतुर्थ्यन्त उकारान्त एवं गो आदि शब्दों के बाद यत् प्रत्यय होता है, यथा :—

शंकवे हितम् = शंकु + यत् = शंकव्यम्

गवे हितम् = गो + यत् = गव्यम्

हविषे हितम् = हविष् + यत् = हविष्यम्

(गो आदि-गो, हविरन्, अक्षर, विष, बर्हिष्, युग, मेधा, असुर, अध्वन्, वेद, दीप्त, वीज आदि)

शरीरावयवाद्यत् (पा० सू०) हितम् अर्थ में चतुर्थ्यन्त तथा भवः अर्थ में सप्तम्यन्त शरीर के अवयववाची शब्दों से यत् प्रत्यय होता है, यथा :—

दन्ते भवम् = दन्तेभ्यो हितम् = दन्त + यत् = दन्त्यम्

कण्ठे भवम् कण्ठाय हितम् = कण्ठ + यत् = कण्ठ्यम्

नाभौ भवम् नाभये हितम् = नाभि + यत् = नाभ्यम्

शिरसि साधुः = शिरस् + यत् = शीर्षण्यः, शिरस्यः

दण्डादिभ्यो यत् (पा० सू०) अर्हति (योग्य) अर्थ में दण्ड आदि शब्दों से यत् प्रत्यय होता है, यथा :—दण्डमर्हति = दण्ड + यत् = दण्ड्य।

अर्घमर्हति = अर्घ + यत् = अर्घ्यः

वधमर्हति = वध् यत् = वध्यः

दण्ड, मुसल, मधुपर्क, कशा, अर्घ, मेघ, सुवर्ण उदक, वध्य, युग, गुहा, भाग, भंग आदि।

सख्युर्यः (पा० सू०) दूतवणिग्भ्यां च (वार्तिक) सखि, दूत, वणिज शब्द से भाव या कर्म अर्थ में य प्रत्यय होता है, यथा :—

सख्युर्भावः कर्म वा = सखि + य = सख्यम्

दूतस्य भावः कर्म वा = दूत + य = दूत्यम्

वणिजः भावः कर्म वा = वणिज + य = वाणिज्यम्

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते (पा० सू०) अनपेत अर्थ में पंचम्यन्त धर्म, पथिन्, अर्थ न्याय शब्द से यत् प्रत्यय होता है, यथा :—

धर्मात् + अनपेतम् = धर्म + यत् = धर्म्यम्

अर्थात् + अनपेतम् = अर्थ + यत् = अर्थ्यम्

न्यायात् + अनपेतम् = न्याय + यत् = न्याय्यम्

पथः + अनपेतम् = पथिन् + यत् = पथ्यम्

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् (पा०सू०) भाव और कर्म अर्थ में पति शब्द अन्त में है जिसके ऐसा शब्द पुरोहित आदि शब्दों से यक् (य) प्रत्यय होता है, यथा—

सेनापतेः भावः कर्म वा = सेनापति + यक् = सैनापत्यम्

पुरोहितस्य भावः कर्म वा = पुरोहित + यक् = पौरोहित्यम्

राज्ञः भावः कर्म वा = राजन् + यक् = राज्यम्

पुरोहित, राजन्, ग्रामिक, पण्डित, खण्डिक, दण्डिक, पथिक, प्रतिक, सारथि, आस्तिक, नास्तिक, नागर आदि।

वुन्, वुक्, वु, कन् आदि

क्रमादिभ्यो वुन् (पा०सू०) क्रम, पद, शिक्षा, मीमांसा शब्दों से अधीत और वेद अर्थ में वुन् प्रत्यय होता है (वु + अक) यथा :—

क्रममधीते वेद वा = क्रम + वुन् = क्रमकः

पदमधीते वेद वा = पद + वुन् = पदकः

मीमांसामधीते = मीमांसा + वुन् = मीमांसकः

शिक्षामधीते वेद वा = शिक्षा + वुन् = शिक्षकः

वर्णा वुक् (पा०सू०) वर्ण विषयार्थवाची कन्था शब्द से वुक् प्रत्यय होता है।

कन्थायां भवः = कन्था + वुक् = कान्थकम्

विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् (पा०सू०) भवः अर्थ में विद्या और सम्बन्धवाचक शब्दों से वु (अक) प्रत्यय होता है, यथा :-

उपाध्यायादागतः = उपाध्याय + वु = औपाध्यायकः

पितामहादागतः = पितामह + वु = पैतामहकः

कुलालादिभ्यो वुञ् (पा०सू०) कृतम् अर्थ में तृतीयान्त कुलाल आदि शब्दों से वु (अक) प्रत्यय होता है, यथा :-

कुलालेन कृतम् = कुलाल + वु = कौलालकम्

वरुणेन कृतम् = वरुण + वु = वारुणकम्

कुलाल, वरुड, चाण्डाल, निषाद, कर्मार, सेना, सिरिन्ध्र, देवराज, वधू, मधु, रुद्र, रुद्र, अनडुह कुम्भकार, श्वपाक।

योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ् (पा० सू०) योपध (जिसके उपधा में य हो गुरूपोत्तम) (जिसके अन्त के पूर्वका अक्षर गुरु हो) असुबन्त शब्दों से भावः या कर्म अर्थ में वुञ् (अक) प्रत्यय होता है, यथा :—

रमणीयस्य भावः कर्म वा = रमणीय + वु = रामणीयकम्

सहायस्य भावः कर्म वा = सहाय + वुञ् = साहायकम्

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च (पा० सू०) द्वन्द्व समास विषयक शब्द और मनोज्ञ आदि शब्दों से वु (अक) प्रत्यय है, यथा :—

शिष्योपाध्यायस्य भावः कर्म वा = शिष्योपाध्याय + वु = शैष्योपाध्यायकः

मनोज्ञ, प्रिय रूपक, अभिरूप, कल्याण, कुलपुत्र, छान्दस, श्रोत्रिय, चोर, धूर्त, विश्वेदेव, युवन्, कुपुत्र, ग्राम कुलाल, ग्राम कुमार, सुकुमार, बहुल, अवश्यपुत्र, आमुष्यकुल, शतपत्र आदि।

तत्र कुशलः पथः (पा० सू०) कुशल अर्थ में सप्तम्यन्त पथिन् शब्द से वुन् (अक) प्रत्यय होता है, यथा :—

पथि कुशलः = पथिन् + वुन् = पथिकः

आकर्षादिभ्यः कन् (पा० सू०) कुशल अर्थ में आकर्ष आदि शब्दों से कन् प्रत्यय होता है, यथा :—

आकर्षे कुशलः = आकर्ष + कन् = आकर्षकः

अश्मनि कुशलः = अश्मन् + कन् = अश्मकः

दीपे + कुशलः = दीप + कन् = दीपकः

आकर्ष, पिशाच, अश्मन्, अशनि, चय, जय, निचय, विजय, नय, पाद, दीप, हृद शकुनि।

कुत्सिते (पा० सू०) कुत्सित अर्थ में क प्रत्यय होता है, यथा :—

कुत्सितोऽश्वः = अश्व + कन् = अश्वकः

संज्ञायां कन् (पा० सू०) कुत्सित अर्थ में संज्ञा में कन् होता है, यथा :—

कुत्सितः शूद्रः = शूद्र + कन् = शूद्रकः

ह्रस्वे (पा० सू०) ह्रस्वः अर्थ में कन् प्रत्यय होता है, यथा :—

ह्रस्वो वंशः = वंश + कन् = वंशकः

ह्रस्वो वेणुः = वेणु + कन् = वेणुकः

इवे प्रतिकृतौ (पा० सू०) उपमान विशिष्ट इव अर्थ में प्रतिकृति में (मृत्तिका आदि मिट्टी) से बनी प्रतिमा (मूर्तिकृति कहते हैं) कन् होता है, यथा :—

अश्व इव प्रतिकृतिः = अश्व + कन् = अश्वकः

पुत्र इव प्रतिकृतिः = पुत्र + कन् = पुत्रकः

सञ्ज्ञायां च (पा० सू०) संज्ञा में भी इव अर्थ से कन् प्रत्यय होता है, यथाः–

अश्व स्य संज्ञा—अश्व + कन् = अश्वकः ।

यवादिभ्यः कन् (पा०सू०) यव आदि शब्दों से स्वार्थ में कन् प्रत्यय होता है, यथा :—

यव एव = याव + कन् = यावकः

मणिः एव = मणि + कन् मणिकः

स्नातः एव = स्नात × कन् = स्नातकः

याव, मणि, अस्थि, तालु, जानु, पीत, स्तम्ब, अणु, पुत्र, स्नात, शून्य, दान, (निन्दा) ज्ञात, अस्पात ।

क्षत्राद्घः (पा०सू०) जातिवाच्य अपत्य अर्थ में क्षत्र शब्द से घ (इय) प्रत्यय होता है यथा :–

क्षत्रस्य + अपत्यम् = क्षत्र + घ = क्षत्रियः

कुलात्खः (पा०सू०) अपत्य अर्थ में कुल शब्द से ख (ईन) प्रत्यय होता है, यथा :— कुलस्य अपत्यम् = कुल + ख = कुलीनः

आढ्यकुलस्य अपत्यं = आढ्यकुल + ख = आढ्यकुलीनः

शुक्राद्घन् (पा०सू०) अस्य देवता अर्थ में शुक्र शब्द से घन् प्रत्यय होता है, यथा :—

शुक्रो देवता अस्य = शुक्र + घ = शुक्रियः

राष्ट्रावारपाराद्घखौ (पा०सू०) जातः आदि अर्थों में राष्ट्र शब्द से घ (इय और अवार, पार शब्द से ख ईन) प्रत्यय होता है, यथा :—

राष्ट्रे जातः = राष्ट्र + घ = राष्ट्रियः

अवारपारे जातः = अवारपार + ख = अवारपारीणः

अवारे जातः = अवार + ख = अवारीणः

पारे जातः = पार + ख = पारीणः

पारावारे जातः = पारावर + ख = पारावारीणः

ग्रामाद् यखञौ (पा०सू०) जातः आदि अर्थों में ग्राम से य और ख प्रत्यय होता है, यथा :—

ग्रामे जातः = ग्राम + य = ग्राम्यः

ग्रामे जातः = ग्राम + ख् = ग्रामीणः

छ प्रत्यय

वृद्धाच्छः त्यदादीनि च (पा०सू०) वृद्ध संज्ञक शब्दों से 'छ' (ईय) प्रत्यय होता है, यथा :—

शालायां जातः = शाला + छ (ईय) = शालीयः

मालासु जातः = माला + छ = मालीयः

देवदत्तो जातः = देवदत्तो + छ = देवदत्तीयः

तस्य इमे = तद् + छ = तदीयः

भवतष्ठक्छ सौ (पा०सू०) जातादि अर्थों में भवत् शब्द से ठक् और छ प्रत्यय होता है। यथा :—

भवतः अयम् = भवत् + ठक् = भावत्कः

भवतः अयम् = भवत् + छस् = भवदीयः

गहादिभ्यश्च (पा० सू०) गह, अंग, वंग, सम, विषम, मगध, पूर्वपक्ष, अपरपक्षीय, उत्तमशाख, एकग्राम, एकशाख, एक वृक्ष, वाल्मीकि, उत्तर, अन्तर, अन्तर, शब्दों से भी जातादि अर्थ में छ (ईय) प्रत्यय होता है. यथा :—

गहे जातः = गृह + छ = गहीयः

वंगे जातः = वंग + छ = वंगीयः

वल्मीकौ + जातः = वाल्मीकि + छ = वाल्मीकीयः

राज्ञः क च (पा० सू०) राजन् शब्द से क आदेश औ छ प्रत्यय होता है, यथा:—

राज्ञः + अयम् = राजन् + छ = राजकीयम्

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च (पा० सू०) युष्मद् और अस्मद् शब्द से छ (ईय) ख् (ईन , और अण् प्रत्यय होता है, यथा :—

युष्माकमयम् = युष्मद् + छ (ईय) = युष्मदीयः

अस्माकमयम् = अस्मद् + छ (ई य) = अस्मदीयः

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ (पा० सू०) ख् और अण् प्रत्यय में युष्मद् और अस्मद् के स्थान पर क्रम से युष्माक और अस्माक आदेश हो जाता है, यथा :—

युष्माकमयम् = युष्मद् + ख् (ईन) = युष्माक + ईन = यौष्माकीणः
अस्माकमयम् = अस्मद् + ख् (ईन) = अस्माक + ईन = आस्माकीनः
युष्माकमयम् = युष्मद् + अण् = यौष्माकः
अस्माकमयम् + अयम् = आस्माकः

तवकममकावेकवचने (पा० सू०) ख् और अण् प्रत्यय में एक वचनार्थ युष्मद् और अस्मद् शब्द के स्थानपर क्रम से तवक, ममक आदेश हो जाता है, यथा :—

तवायम् = युष्मद् + ख् (ईन) तावकीनः, तावकः (अण्)
ममायम् = अस्मद् + ख् (ईन) = मामकीनः, मामकः (अण्)

प्रत्ययोत्तरपदयोश्च (पा० सू०) प्रत्यय या उत्तरपद परे रहते युष्मद् शब्द के स्थान पर मपर्यन्त युष्म्, अस्म् के स्थान पर) त्व, म आदेश हो जाता है, यथा :—

तवायम् = युष्मद् + छ (ईय) = त्वद् + इय = त्वदीयः
ममायम् = अस्मद् + छ (ईय) = मद् + ईय = मदीयः

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे (पा० सू०) तदधिकृत्य कृते ग्रन्थे (उसका अधिकार करके किया गया ग्रन्थ) अर्थ में द्वितीयान्त शब्द से छ प्रत्यय होता है, यथा :—

शारीरकम् (भाष्यम्) अधिकृत्य कृतः ग्रन्थः = शारीरिक + छ = शारीरकीयः।
किरातार्जुनौ अधिकृत्य कृतं काव्यम् किरातार्जुन + छ=किरातार्जुनीयम्
नैषधमधिकृत्य कृतम् काव्यम् = नैषध + छ = नैषधीयम्

तेन प्रोक्तम् (पा० सू०) प्रोक्त अर्थ में तृतीयान्त शब्द से भी छ प्रत्यय होता है, यथा : —पाणिनिना प्रोक्तम् = पाणिनि + छ = पाणिनीयम् ।

मयट् प्रत्यय

मयट् च (पा० सू०) हेतुवाची और मनुष्यवाची पंचम्यन्त शब्दों से आगतः अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है, यथा :—

समादागतः = सम + मयट् = सममयम्

देवदत्तादागतः = देवदत्त + मयट् = देवदत्तमयम्

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः (पा० सू०) विकार और अवयव अर्थ में वृद्ध तथा शर आदि शब्दों से मयट् प्रत्यय होता है, यथा :—

आम्रस्य विकारः=आम्र + मयट्=आम्रमयम्

शरस्य विकार:=शर + मयट्=शरमयम्

तृणस्य विकार:=तृण + मयट्=तृणमयम्

(शर, दर्भ, मृद्, कुटी, तृण, सोम, वल्वज ।)

अश्मनो विकारे=अश्मन् शब्द से विकार अर्थ में मयट् प्रत्यय होता है, यथा :—

अश्मन: विकारः=अश्ममयम्

गोश्च पुरीषे (पा० सू०) पुरीष (विष्ठा) अर्थ में गो शब्द के बाद मयट् प्रत्यय होता है, यथा :—

गोः पुरीषम् गोमयम् ।

त्यक् और त्यप् प्रत्यय

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् (पा० सू०) दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्द से जातादि अर्थ में त्यक् प्रत्यय होता है, यथा:—

दक्षिणस्यां जातः = दक्षिण + त्यक् = दाक्षिणात्यः

पश्चात् जात: = पश्चात् + त्यक् = पाश्चात्यः

पुरः जात:=पुरस् + त्यक् = पौरस्त्यः

अव्ययात्त्यप् (पा० सू०) अव्यय संज्ञक शब्दों के बाद जातादि अर्थ में त्यप् प्रत्यय होता है, यथा :—

इह + जातः = इह + त्यप् = इहत्यः

तत्र + जातः = तत्र + त्यप् = तत्रत्यः

क्व + जातः = क्व + त्यप् = क्वत्यः

ततः + जातः = ततः त्यप् = ततस्त्यः

प्रावृष एण्यः (पा० सू०) भवः अर्थ में प्रावृष् शब्द से एण्य प्रत्यय होता है, यथा :—

प्रावृषि भवः = प्रावृष् + एण्यः = प्रावृषेण्यः

प्रावृषष्ठप् (पा० सू०) जातः अर्थ में प्रावृष् शब्द से ठप् (इक) प्रत्यय होता है।

यथा :—प्रावृषि जातः = प्रावृष् + ठप् = प्रावृषिकः

वत् प्रत्यय

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः (पा० सू०) 'तेन तुल्यम्' इस अर्थ में शब्दों से वत् प्रत्यय होता है, यथा :—ब्राह्मणेन तुल्यमधीते = ब्राह्मणवत् अधीते ।

तत्र तस्येव (पा० सू०) सप्तम्यन्त और षष्ठयन्त शब्दों से इव अर्थ में वत् प्रत्यय होता है, यथा :—

मथुरायाम् इव = मथुरावत्

चैत्रस्येव = चैत्रवत् मैत्रस्य

तदर्हम् (पा० सू०) द्वितीयान्त प्रातिपदिक से अर्हम् अर्थ में वत् प्रत्यय होता है, यथा :—

विधिमर्हति = विधिवत् पूज्यते ।

त्व और तल् प्रत्यय इमनिच् एवं व्यञ् प्रत्यय

तस्यभावस्त्वतलौ (पा० सू०) षष्ठ्यन्त शब्दों से भावः अर्थ में त्व और तल् प्रत्यय होता है, यथा :—ब्राह्मणस्य भावः = ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता ।

गोः भावः = गोत्वम्, गोता

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (पा० सू०) समूह अर्थ में ग्राम, जन, बन्धु शब्दों से तल् प्रत्यय होता है, यथा :—

ग्रामाणां समूहः=ग्रामता

जनानां समूहः=जनता

बन्धूनां समूहः=बन्धुता

गजसहायाभ्यां चेति वाच्यम् (की+वार्त्तिक) समूह अर्थ में गज और सहाय शब्द से भी तल् प्रत्यय होता है, यथा :—

गजानां समूहः=गजता

सहायानां समूहः=सहायता

पृथ्वादिभ्य इमनिच् (पा० सू०) पृथु आदि गणपठित शब्दों के षष्ठ्यन्त शब्दों से विकल्प से इमनिच् (इमन्) प्रत्यय होता है, पक्ष में त्व, तल् भी होता है।

रऋतो हलादेर्लघोः (पा० सू०) इष्ठन्, इमन् और ईयस् प्रत्यय परे रहते व्यंजन है आदि में जिसके ऐसे शब्दों से ह्रस्व ऋ के स्थान पर 'र्' हो जाता है।

पृथु, मृदु महत्, पट, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु, उर्स, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, बाल, होड, पाक, वक्त, मन्द, स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ, प्रिय, वृष, ऋज, क्षिप्र, क्षुद्र, आमु।

टेः (पा० सू०) इष्ठन्, इमन् और ईयस् प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक शब्दों के 'टि' का लोप हो जाता है, यथा :—

पृथोः भावः = पृथु, + इमनिच् = प्रथु + इमन् = प्रथ् + इमन् = प्रथिमा

लघोः भावः = लघु + इमनिच् = लघु=इमन्=लघ्=इमन्=लघिमन्=लघिमा

मृदोः भावः=मृदु + इमनिच्=मृदु + इमन् = म्रद् + इमन्=म्रदिमन् = म्रदिमा

महतो भावः = महत् + इमनिच् = मह् + इमन् = महिमन् = महिमा।

विशेष :—पक्षमें त्व प्रत्यय होने पर = पृथुत्वम्, लघुत्वम्, मृदुत्वम्, महत्वम् आदि

तल् प्रत्यय होने पर=पृथुता, लघुता, मृदुता, महत्ता आदि

अण् प्रत्यय होने पर=पार्थवम्, लाघवम्, मार्दवम्, आदि

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् (पा० सू०) वर्णवाचक (शुक्ल, कृष्ण आदि) और

दृढ आदि शब्दों से ष्यञ् (य) प्रत्यय होता है उक्त अर्थ में। पक्ष में इमनिच् आदि प्रत्यय भी होते हैं, जैसे :—

शुक्लस्य भावः=शुक्ल + ष्य (य) =शौक्ल्यम्, शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता। कृष्णस्य भावः = कृष्ण + ष्य (य)=कार्ष्ण्यम्=कृष्णिमा, कृष्णत्वम्, कृष्णता।

दृढस्य भावः=दृढ + ष्य (य)=दार्ढ्यम्=द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता। मधुरस्य भावः=मधुर + ष्य (य)=माधुर्यम्=मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता। दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चक्र, आम्र, कष्ठ, लवण, ताम्र, शीत शीत, उष्ण, जड़, बधिर, पण्डित, मूर्ख, मूक, स्थिर।

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः ष्यञ् (पा० सू०) गुणवाचक (शीत, उष्ण आदि) तथा ब्राह्मण आदि शब्दों से भाव, कर्म में ष्य (य) प्रत्यय होता है पक्ष में त्वलादि प्रत्यय भी होते हैं।

कवेः भावः कर्म वा=कवि + ष्य (य)=काव्यम्, कवित्वम्, कविता। यथा :—

शीतस्य भावः=शीत + ष्य=शैत्यम्, शीतत्वम्, शीतता।

जडस्य भावः=जड + ष्य (य) = ब्राह्मण्यम्, ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता।

धूर्तस्य भावः = धूर्त + ष्य (य)=धौर्त्यम्. धूर्तत्वम्. धूर्तता।

(ब्राह्मण, वाडव, माणव, चोर, धूर्त्त), आराधय, अपराधय, उपरण्याय, एकभाव, द्विभाव, त्रिभाव, आत्मभाव, संवादिन्, संवेशिन्. संभाषिन्, बहुभाषिन्, शीर्षघातिन्, विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यमस्थ, अनीश्वर, कुशल, चपल, निपुण, पिशुन, कुतूहल, वालिश, अतस्, दुःपुरुष, कापुरुष, राजन्, गणपति, अधिपति, दायाम, विशस्ति, विपात, निपात, कवि)

चतुर्वेदादिभ्य उभयपदवृद्धिश्च (वार्तिक) चतुर्वेद आदि शब्दों से स्वार्थ में ष्य प्रत्यय होता है और दोनों पदों की वृद्धि भी होती है, यथा :—

चतुर्वेद एव=चतुर्वेद + ष्य = चातुर्वेद्यः

चत्वारो वर्णाः = चतुर्वर्ण + ष्य (य)=चातुर्वर्ण्यम्

सन्निधिरेव = सन्निधि + ष्य (य) = सान्निध्यम्

समीप एव=समीप + ष्य (य) = सामीप्यम्

(चतुर्वेद, चतुर्वर्ण, चतुराश्रम, सर्वविध, त्रिलोक, त्रिस्वर, षड्गुण, सेना, अन्तर, सन्निधि, समीप, उपमा, सुख, तदर्थं, इतिह, मणिक)

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् (पा० सू०) अस्य संजातम् (जिसमें हो) अर्थ में तारका आदि शब्दों से इतच् प्रत्यय होता है, यथा :—

तारका संजाता अस्य = तारका + इतच् = तारकितम् नभः

पण्डा संजाता अस्य = पण्डा + इतच् = पण्डितः

लज्जा संजाता अस्य = लज्जा + इतच् = लज्जितः

फलं संजातमस्य = फल + इतच् = फलितः

इसी प्रकार पुष्पितः, तृषितः, पुलकितः, कुसुमितः आदि भी बनता है।

ताराका, पुष्प, कर्णक, मंजरी, क्षण, सूच, सूत्र, पुरीष, उच्चार, प्रचार, विचार, कुण्डल, कण्टक, मुसल, मुकुल, कुसुम, कुतूहल, किसलय, पल्लव, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, अंगारक, वर्णक, द्रोह, दोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भर व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरंग, तिलक, अन्धकार, वर्ग, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, गर्ध, क्षुध्, सीमन्त, ज्वर, रोग, रोमांच, पण्डा, कज्जल, तृषा, कोरक, फल, कल्लोल, कञ्चुक, शृंगार, वकुल, कलंक, शैवल, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अंगार, प्रतिबिम्ब, गर्ज, दीक्षा, प्रत्यय आदि।

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ् मात्रचः (पा० सू०) अस्य प्रमाणम् अर्थ में प्रथमान्त सुबन्त से द्वयसज्, दघ्नञ्, मात्रच् प्रत्यय होता है। यथा :—

ऊरू प्रमाणस्य = ऊरु + द्वयसच्=उरुद्वयसम्, उरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्।

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् (पा०सू०) यद् और एतद् शब्द से 'परिमाण' अर्थ में वतुप (वत्) प्रत्यय होता है, यथा :—

यत् परिमाणमस्य = यत् + वतुप् (वत्) = यावत् = यावान्

तत् परिमाणमस्य = तत् + वतुप् = तावत् = तावान्। एतावान्।

किमिदंभ्यां वो घः (पा०सू०) किम् और इदम् शब्द से वतुप् (वत्) प्रत्यय होता है और व के स्थान पर 'घ' (इय) हो जाता है, यथा :—

किम् परिमाणमस्य = किम् + वतुप् (वत्) = किम् + घत्=किम् + इयत्

इदंकिमोरीश्की (पा०सू०) इदम् के स्थान पर 'ई' और किम् के स्थान पर की आदेश होता है—दृग, दृश, वत्, परे रहते ।

किम् + इयत् = की + इयत् = कियत् + कियान्

इदम् परिमाणमस्य + इदम् + वत् = ई + वत् = ई + घत् = इयत् = इयत्=इयान् 'यस्येति च' से ई का लोप हो जाता है ।

संख्याया अवयवे तयप् (पा०सू० अवयव अर्थ में (अवयवी) संख्या वाचक शब्दों से तयप् प्रत्यय होता है, यथा :—

पंच अवयवा अस्य = पंचन् + तयप् = पंचतयम् ।

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा (पा०सू०) द्वि और त्रि शब्द के तयप् के स्थानपर अयच् आदेश हो जाता है, यथा : – (विकल्प से)

द्वौ अवयवौ अस्य = द्वि + तयप् = द्वि + अयच् = द्वयम् द्वितयम्

त्रयोऽवयवा अस्य = त्रि + तयप् = त्रि अयच्=त्रयम्, त्रितयम्

द्वेस्तीय: (पा० सू०) द्वि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है, यथा :--

द्वयो: पूरणे = द्वि + तीय = द्वितीय:

त्रेस्सम्प्रसारणं च (पा०सू०) त्रि शब्द से पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होता है और त्रि शब्द के स्थान पर तृ हो जाता है, यथा: —

त्रयाणां पूरण: = त्रि + तीय = तृ + तीय = तृतीय:

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (पा सू०) अस्य-अस्ति या अस्मिन्नस्ति इन अर्थों में प्रथमान्त शब्द से मतुप् (मत्) प्रत्यय होता है, यथा : —

गाँव: अस्य सन्ति = गो + मतुप = गोमत् = गोमान्

बुद्धि: अस्य अस्ति = बुद्धि + मतुप् = बुद्धिमत् = बुद्धिमान् ।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य: (पा०सू०) मकारान्त अकारान्त और 'म' या 'अ' उपधा न हो जिसके ऐसे शब्दों से (यवादि शब्दों को छोड़कर) मतुप् के 'म' के स्थानपर 'व' हो जाता है, यथा—

ज्ञानम् अस्य अस्ति = ज्ञान + मतुप् = ज्ञान + वत् = ज्ञानवत् = ज्ञानवान्

विद्या अस्य अस्ति = विद्या + मतुप् = विद्या + वत् = विद्यावान्

लक्ष्मीः अस्य अस्ति = लक्ष्मी + मतुप् = लक्ष्मी + वत् = लक्ष्मीवान्

यशः अस्य अस्ति = यशस् + मतुप् = यशस् वत् = यशस्वान् ।

झयः (पा० सू०) झय् प्रत्याहार (वर्ग के पहला दूसरा तीसरा चौथा अक्षर) के वाद में मतुप् के म के स्थान पर व हो जाता है, यथा —

तडित् अस्य अस्ति = तडित् + मतुप् = तडित्वत् = तडित्वान् ।

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् (पा० सू०) प्राणिस्थ (प्राणी में रहनेवाले प्राणी का अंग होने पर) अकारान्त शब्दों से लच् प्रत्यय होता है, यथा —

चूडा अस्य अस्ति = चूडा + लच् = चूडालः, चूडावान्

सिध्मादिभ्यश्च (पा० सू०) सिध्म आदिशब्दों से भी लच् प्रत्यय होता है, यथा :—

सिध्मः अस्य अस्ति = सिध्म + लच् = सिध्मलः

पांसुः अस्य अस्ति = पासु + लच् = पासुलः

शीतः अस्मिन् अस्ति = शीत + लच् = शीतलः

सिध्म, गडु, पांसु, मांस, शीत, श्याम, पिंग, पित्त, पुष्क, पृथु, मृदु, मंजु, भंग, मण्ड, पत्र, चटु, कपि, ग्रन्थिल, श्री, कुश, कुण्ठ, धारा, पेश, स्नेह, कर्ण, प्रज्ञा, उदक, पर्ण, मणि, नाभि, बीज, वीणा, पार्श्व, पशु, हनु, सक्तु, पक्ष्मन्, वर्त्मन्, श्लेष्मन् ।

अंगात्कल्याणे न (वार्तिक) कल्याण अर्थ में अंग से न प्रत्यय है, यथा :—

कल्याणानि अंगानि यस्याः = अंग + न = अंगना (स्त्री)

अत इनिठनौ (पा० सू०) अकारान्त शब्दों के इनि (इन्) और ठन् (प्रत्यय) होता है ।

यथा :—दण्डः अस्य अस्ति = दण्ड + इनि = दण्डिन् = दण्डी (दण्ड धारण करनेवाला)

दण्डः अस्य अस्ति = दण्ड + ठन् = दण्ड + इक = दण्डिकः ।

धनम् अस्य अस्ति = धन + इन् = धनी, धन = ठन् = धनिकः (धनवान्)

अस्मायामेधास्रजो विनिः (पा० सू०) असन्त (अस् अन्त में हो जिसके) शब्दों से तथा माया, मेधा, स्रज् शब्दों से (विन्) प्रत्यय होता है, यथा :—

यशः अस्य अस्ति = यशस् + विन् = यशस्वी, यशस्वान्

तेजः अस्य अस्ति = तेजस् + विन् = तेजस्वी, तेजस्वान्

माया अस्य अस्ति = माया + विन् = मायाविन् = मायावी

मेधा अस्य अस्ति = मेधा + विन् = मेधाविन् = मेधावी

स्रग् अस्य अस्ति = स्रज + विन् = स्रग्विन् = स्रग्वी

अव्यय व क्रियाविशेषण

१—इदम इश् (पा० सू०) अमि प्रत्यय (प्राग्दिशीय) में इदम् शब्द के स्थान पर 'इ' हो जाता है।

२—एतेतौ रथोः (पा० सू०) र आदि एवं थ आदि प्रत्यय परे रहते इदम् शब्द 'के' स्थान पर एत और इत आदेश हो जाता है।

३—एतदोऽन् (पा० सू०) र् एवं थ् आदि प्रत्यय परे रहते एतद् के स्थान पर एत और इत आदेश तथा अन्यत्र एतत् शब्द के स्थान पर अ आदेश होता है।

४—सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि (पा० सू०) में—दकारादि प्रत्यय परे रहते सर्व के स्थान पर स आदेश हो जाता है। यथा :—

५—कुतिहोः (पा०सू०) त एवं ह आदि प्रत्यय परे रहते किम् के स्थान पर कु आदेश हो जाता है।

पंचम्यास्तसिल् (पा० सू०) पंचमी विभक्त्यन्त शब्दों से स्वार्थ में तसिल् (तस्) प्रत्यय होता है। यथा :—

कस्मात् इति = किम् + तसिल् (तस्) = कुतस् = कुतः

तस्मादिति = तद् + तस् = ततः

यस्मात् इति = यद् + तस् = यतः

अस्मात् इति = इदम् + तस् = इतः

एतस्मात् इति = एतद् + तस् = अतः

अमुष्मात् इति = अदस् + तस् = अमुतः

बहुभ्यः इति = बहु + तस् = बहुतः

सर्वस्मात् इति = सर्व + तस् = सर्वतः

पर्यभिभ्यां च (पा० सू०) परि और अभि शब्द से भी तसिल् (तस्) प्रत्यय होता है, यथा :—

परि + तसिल् = परितः (चारो ओर)

अभि + तसिल् = अभितः (दोनो ओर)

सप्तम्यास्त्रल् (पा० सू०) सप्तमी विभक्त्यन्त त्यदादि शब्दों से त्रल् (त्र) प्रत्यय होता है । यथा : –

कस्मिन् इति = किम् + त्रल् = कुत्र

यस्मिन् इति = यद् + त्रल् = यत्र

एतस्मिन् इति = एतद् त्रल् = अत्र

तस्मिन् इति = तद् त्रल् = तत्र

बहुषु इति = बहु + त्रल् = बहुत्र

इदमो हः (पा० सू०) सप्तम्यन्त इदम् शब्द से स्वार्थ में ह प्रत्यय होता है, यथा :—

अस्मिन् इति = इदम् + ह = इह

किमोऽत् (पा० सू०) सप्तमी विभक्त्यन्त 'किम्' शब्द से विकल्प से स्वार्थ में अत् (अ) प्रत्यय होता है ।

क्वाति (पा० सू०) अत् प्रत्यय परे रहते किम् शब्द के स्थान पर क्व आदेश हो जाता है, यथा :—

कस्मिन् इति = किम् + अत् (अ) = क्व + अ = क्व, कुत्र

सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा (पा० सू०) सप्तमी विभक्त्यन्त कालवाचक सर्व एक अन्य किम् यद् पद शब्दों से 'दा' प्रत्यय होता है, यथा :—

सर्वस्मिन् काले = सर्व + दा = सर्वदा

एकस्मिन् काले=एक + दा=एकदा

तस्मिन् काले=तद् + दा = तदा

यस्मिन् काले = यद् + दा = यदा

अन्यस्मिन् काले=अन्य + दा = अन्यदा

कस्मिन् काले = किम् + दा = कदा

(किमः कः–इस सूत्र से किम् के स्थान पर 'क' आदेश हो जाता है) इदमोर्हिल् (पा० सू०) सप्तमी विभक्त्यन्त कालवाचक इदम् शब्द से र्हिल् (र्हि) प्रत्यय होता है, यथा :—

अस्मिन् काले=इदम् + र्हिल् (र्हि) = एत + र्हि = एतर्हि

अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् (पा० सू०) अनद्यतन अर्थ में सप्तम्यन्त किमादि शब्दों से भी र्हिल् प्रत्यय होता है, यथा :—

कस्मिन् काले = किम् + र्हि = कर्हि, कदा

यस्मिन् काले यद् + र्हि यर्हि, यदा

तस्मिन् काले = तद् + र्हि = तर्हि, तदा

एतस्मिन् काले = एतद् + र्हि = एतर्हि

अधुना (पा० सू०) सप्तम्यन्त इदम शब्द से कालवाचक में 'अधुना' प्रत्यय होता है। 'यस्येति च' से 'इ' का लोप हो जाता है। यथा :—

अस्मिन् काले=इदम् + अधु ना = इ + अधुना=अधुना

दानीं च (पा०सू०) सप्तमी विभक्त्यन्त काल वाचक इदम् शब्द से दानीम् प्रत्यय भी होता है, यथा :—

अस्मिन् काले = इदम् + दानीम्=इ + दानीम् = इदानीम्

तदो दा च (पा०सू०) सप्तमी विभक्त्यन्त कालवाचक तद् शब्द से 'दा' और दानीम् प्रत्यय होता है, यथा :—

तस्मिन् काले=तद् + दा=तदा

तस्मिन् काले = तद + दानीम्=तदानीम्

प्रकारवचने थाल् (पा०सू०) प्रकार अर्थ में किम् आदि शब्दों से स्वार्थ में थाल् (था) प्रत्यय होता है, यथा —

येन प्रकारेण = यद् + थाल् = यथा

तेन प्रकारेण = तद् + थाल् = तथा

इदमस्थमु: (पा० सू०) एतदोऽपि वाच्य: (वार्त्तिक) प्रकार अर्थ में इदम् और एतद् शब्द से थमु (थम्) प्रत्यय होता है, यथा :—

अनेन प्रकारेण = इदम् + थमु = इत् + थम् = इत्थम्

एतेन प्रकारेण = एतद् + थम् = इत् + थम् = इत्थम्

किमश्च (पा०सू०) प्रकार अर्थ में किम् शब्द से थमु (थम्) प्रत्यय होता है, यथा :—

केन प्रकारेण = किम् + थमु = कथम्

अतिशायने तमविष्ठनौ (पा०सू०) अतिशय अर्थ में शब्दों से स्वार्थ में तमप् (तम) इष्ठन् (इष्ठ:) प्रत्यय होता है, यथा :—

अतिशयेन लघु: = लघु + इष्ठन् = लघु + इष्ठन् = लघिष्ठ:

अतिशयेन पटु: = पटुतम:, पटिष्ठ: ।

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ (पा०सू०) दो (व्यक्तियों या पदार्थों) में एक का अतिशय द्योत्य होने पर विभक्ति उपपद में शब्दों से तरप् और ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय होता है, यथा :—

अयमनयोरतिशयेन लघु: = लघु + तरप् = लघुतर:

अयमनयोरतिशयेन लघु: = लघु + ईयस् = लघीयस् = लघीयान्

अयमनयोरतिशयेन पटु: = पटु + तरप् = पटुतर: । पटु + ईयस् = पटीयान्

प्रशस्यस्य श्र: । ज्य च (पा०सू०) प्रशस्य के स्थान पर श्र और ज्य आदेश होता है अजादि प्रत्यय परे रहते ।

अतिशयेन प्रशस्य: = प्रशस्य + इष्ठन् = श्र + इष्ठ: = श्रेष्ठ:, श्रेयान् ।

अतिशयेन प्रशस्य: = प्रशस्य + इष्ठन् = ज्य + इष्ठ = ज्येष्ठ: ।

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः (पा० सू०) ईषत् असमाप्ति (ईषदून) अर्थ में शब्दों से कल्पव् (कल्प) देश्य और देशीयर् प्रत्यय होता है, यथा :—

ईषदूनः विद्वान्=विद्वत्कल्पः=विद्वद्देश्यः, विद्वद्देशीयः

किंयत्तदोः निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् (पा०सू०) दो में से किसी एक के निर्धारण में किम् यद तत् शब्दों से डतरच् (अतर) प्रत्यय होता है, यथा—

अनयोः कतरः वैष्णवः (इन दोनों में कौन वैष्णव है)

इसी प्रकार यतरः ततरः ।

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् (पा०सू०) बहुतों में एक के निर्धारण होने पर डतमच् (अतम) प्रत्यय होता है, यथा —

कतमो भवतां कठः, यतमः । ततमः ।

कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि च्विः (पा० सू०) कृ भू और अस् धातु के योग में स्वार्थ में अभूततद्भाव-अर्थ में प्रत्यय होता है ।

अस्य च्वौ (पा० सू०) च्वि प्रत्यय परे रहते अवर्ण के स्थान पर ई हो जाता है । च्वि प्रत्यय का भी लोप हो जाता है ।

अकृष्ण; कृष्णः करोति=कृष्ण च्वि करोति=कृष्णीकरोति

अब्रह्मा ब्रह्माभवति=ब्रह्मीभवति

अगंगा गंगा स्यात्=गंगीस्यात् ।

विभाषासाति कार्त्स्न्यें (पा०सू०) च्वि प्रत्यय के विषय में साकल्य अर्थ में साति (सात्) प्रत्यय होता है, यथा—

कृत्स्नं शास्त्रमग्निः सम्पद्यते=अग्निसात् भवति, अग्नीभवति एवम् भस्मसात् भवति ।

स्त्री प्रत्यय

पुल्लिग शब्दों का स्त्रीलिंग बनाने के लिये जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें स्त्री प्रत्यय कहते हैं, जैसे=टाप्, ङीप आदि ।

१—अजाद्यतष्टाप् (पा० सू०) अज आदि शब्दों से तथा अकोरान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में टाप (आ) प्रत्यय होता है ।

अजादिगण—अज, अश्व, एडक, चटक, मूषक, बाल, वत्स, होड, पाक, मन्द, विलात, कुंच, उष्णिह, देवविश, ज्येष्ठ, कनिष्ठ, मध्यम, दंष्ट्र।

उदाहरण—अजा, अश्वा, एडका। चटका, मूषका। बाला, वत्सा। होड़ा, मन्दा कृपणा, क्षत्रिया, वैश्या, सरला आदि।

२—ऋन्नेभ्यो ङीप् (पा० सू०) ऋकारान्त और नकारान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) हो जाता है, जैसे :—कर्तृ = कर्त्री, धातृ = धात्री। कामिनी, तपस्विनी, आदि।

३—उगितश्च (पा० सू०) जहांपर उ ऋ का लोप हुआ हो उन प्रत्ययों से बने हुए शब्दों में स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) हो जाता है, जैसे :—

भवत् = भवती, श्रीमती, बुद्धिमती, आदि।

विशेष :—किन्तु भ्वादि, दिवादि, अदादि, तुदादि और चुरादि गण की धातुओं से तथा णिच् प्रत्ययान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय करने पर 'त' के पूर्व 'न्' लग जाता है, जैसे :—

पचन्ती, दीव्यन्ती, नृत्यन्ती, पृच्छन्ती, दर्शयन्ती, यान्ती।

४—टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः (पा० सू०) टित् (जहां ट् की इत्संज्ञा लोप हुआ हो) शब्दों से तथा ढ, अण, अञ्, द्वयसज्, दघ्नज्, मात्रच्, तयप्, ठक् (इक) ठञ् (इक) कञ् (क) क्वरप् इन प्रत्ययों से अन्त होनेवाले शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) हो जाता है। जैसे :—

कुरुचरी, यहां ट प्रत्यय होने से टित् (हुआ) नदट् (नदी) देवट (देवी) सौपर्णेयी, भागिनेयी, पार्वती, कुम्भकारी, औत्सी, ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री, पंचतयी, आक्षिकी, लावणिकी, यादृशी, इत्वरी।

५—वयसि प्रथमे (पा० सू०) प्रथम वय वाचक (पहली उमर को कहनेवाले) अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् होता है, जैसे :—

कुमारी, किशोरी, वधूटी।

६—षिद्गौरादिभ्यश्च (पा० सू०) षित् (जहां ष का लोप हुआ हो) गौर आदि शब्दों से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) हो जाता है, जैसे :—

नर्तकी, गौरी, नटी, सुन्दरी।

७—द्विगोः (पा० सू०) द्विगुसमास में अकारान्त शब्द से ङीप् (ई) होता है, जैसे :— पंचमूली, त्रिलोकी।

८—पुंयोगादाख्यायाम् (पा० सू०) पुंवाचक अकारान्त शब्द से स्त्रीलिंग में ङीप् (ई) होता है, जैसे :—गोपस्य स्त्री = गोपी, शूद्रस्य स्त्री = शूद्री।

९—पालकान्तान्न (वार्त्तिक) किन्तु पालक से अन्त होनेवाले शब्द से ङीप् नहीं होता, जैसे :—गोपालिका, अश्वपालिका।

१०—जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् (पा० सू०) जातिवाची अनियत स्त्री जिसके उपधामें य न हो अकारान्त शब्द से स्त्रीलिंग में ङीष् (ई) होता है, जैसे

ब्राह्मणी, मृगी, वृषली, महिषी, हंसी, मानुषी।

११—हिमारण्ययोर्महत्वे (वार्तिक) महत्व अर्थ म हिम और अरण्य शब्द से ङीष् (ई) और आनुक् (आन) होता है जैसे :—

महद्धिमंहिमानी, महदरण्यम्=अरण्यानी।

१२—यवाद्दोषे (वा०) यव शब्द से दोष अर्थ में ङीष् और आनुक् होता है जैसे :—दुष्टो यवो यवानी।

१३—यवनाल्लिप्याम् (वा०) लिपि अर्थ में यवन शब्द से ङीप् (ई) आनुक् (आन) होता है, जैसे :—यवनानां लिपिः = यवनानी।

१४—वोतो गुणवचनात् (पा० सू०) गुणवाचक उकारान्त शब्द से विकल्प से ङीष् (ई) होता है, जैसे :—मृदुः=मृद्वी, पटुः=पट्वी, साधुः=साध्वी।

१५—कृदिकारादक्तिनः (वा०) क्तिन् (ति) प्रत्ययभिन्न कृत् प्रत्ययान्त इकारान्त शब्दों से विकल्प से ङीष् (ई) होता है। जैसे :—

रात्रिः=रात्री, श्रेणिः=श्रेणी, भूमिः =भूमी

१६—ऊङुतः (पा० सू०) जातिवाचक उकारान्त शब्दों से स्त्रीलिंग में ऊङ् (ऊ) होता है, जैसे :—कुरु=कुरूः।

१७—शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् (पा० सू०) शार्ङ्गरव आदि शब्दों के अकारान्त से ङीन् होता है, जैसे :—शार्ङ्गरवी वैदी ।

१८—यूनस्तिः (पा० सू०) युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में ति प्रत्यय होता है और न का लोप हो जाता है, जैसे :—युवन् = युवतिः

अभ्यासार्थ

१—कोयल मधुर मीठी बोली बोल रही है ।
२—नाचती हुई बालिका गाना गा रही है ।
३—नाचने वाली ने लोगों को प्रसन्न कर दिया ।
४—मानी सुन्दर आभूषण धारण करती है ।
५—तपस्या करने वाली पार्वतीने कठोर तप की ।
६—मान करनेवाली स्त्री ने मान किया ।
७—कुम्भकार की स्त्री घड़े बेच रही है ।
८—वोप की स्त्री कपड़े धो रही है ।
९—कम उमर की लड़की खेल रही है ।
१०—ब्राह्मण की स्त्री देव समान पूजनीय है ।



अध्याय—६

सर्वनाम (Pronoun)

जो किसी संज्ञा के बदले में कहा जायगा उसे सर्वनाम कहते हैं। अंग्रेजी में इसे प्रोनाऊन् (Pronoun) कहते हैं। संस्कृत-भाषा में सर्वनाम ३५ होते हैं: सर्वादीनि सर्वनामानि (पा०सू०) सर्वादिगण को सर्वनाम कहते हैं। सर्वादिगण निम्नलिखित ३५ है :— यथा—

सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, अपर, अधर, उत्तर, स्व, अन्तर, त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम्।

सर्वनाम कई भागों में विभाजित है, यथा :—

१—पुरुषवाचक सर्वनाम (Personal pronoun)
२—संकेतवाचक सर्वनाम (Demonstrative Pronoun)
३—सम्बन्धवाचक सर्वनाम (Relative Pronoun)
४—प्रश्नवाचक सर्वनाम (Interrogative Pronoun)
५—अनिश्चयवाचक सर्वनाम (Indefinite Pronoun)
६—निजवाचक सर्वनाम (Reflexive Pronoun)

१—पुरुषवाचक सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनाम में अस्मद् शब्द उत्तमपुरुष और युष्मद् शब्द मध्यम पुरुष होता है किन्तु युष्मद् और अस्मद् शब्दों के द्वितीया, चतुर्थी षष्ठी विभक्ति के रूपों में एकवचन में त्वा, मा (द्वितीया में) ते, मे (चतुर्थी, षष्ठी में) द्विवचन में, वां, नौ और बहुवचन में वः, नः आदेश हो जाता है, यथा—

द्वितीया—त्वाम् (त्वा) युवाम् (वा) युष्मान् (वः)
माम् (मा आवाम् (नौ) अस्मान् (नः)

चतुर्थी—तुभ्यम् (ते) युवाभ्याम् वां) युष्मभ्यम् (वः)
मह्यम् (मे) आवाभ्याम् (नौ। अस्मभ्यम् (नः)
षष्ठी तव (ते) युवयोः (वां) युष्माकम् (वः)
मम (मे) आवयोः (नौ) अस्माकम् (नः)

विशेष—किन्तु पद के आदि में च, वा, एव, हा, अह, के पूर्व में ये आदेश नहीं होते, यथा—

'मे पुस्तकम्' प्रयोग नहीं होगा बल्कि मम पुस्तकम् होगा। ते मे च हरिः स्वामी–हरि तुम्हारे और मेरे स्वामी हैं, यहा ते मे आदेश नहीं होगा 'तव मम च हरिः स्वामी' होगा।

(क) शिष्टाचार दिखाने के लिए सम्मान अर्थ में युष्मद् शब्द के स्थान पर भवत् शब्द को प्रयोग किया जाता है और इसका रूप प्रथम में होता है और प्रथम पुरुष के क्रिया के साथ प्रयोग किया जाता है, यथा—

तद् भक्षयतु भवान् मया दत्तानि जम्बूफलानि (पंचतंत्र) इसलिए आप मेरे दिये हुए जामुन के फल खाय।

वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छामः (शा०) हम भी आपलोगों से कुछ पूछना चाहते हैं।

(ख) विशेष सम्मान दिखाने के लिए भवत् या भवती शब्द के पूर्व अत्र, तत्र, एषा सः शब्द लगाया जाता है, यथा :—

असाधुदर्शी खलु तत्र भवान् कश्यपः–पूज्य कश्यप ठीक से विचार करने वाले नहीं हैं।

अत्रभवान् किं कर्तुमनाः—आप क्या करना चाहते हैं।

इसी प्रकार, तत्र भवती, स भवान्, एष भवान् का भी प्रयोग होता है।

विशेष :—युष्मद् और अस्मद् शब्द के रूप तीनों लिंगों में एक समान चलते हैं।

२—संकेतवाचक सर्वनाम

१—संकेत वाचक सर्वनाम 'इदम्' (यह) तद् (वह) शब्द होते हैं।

इनका प्रयोग निम्नलिखित अर्थों में होता है, यथा :-

इदमस्तु सन्निकृष्टे समीपतरवर्त्ति चैतदो रूपम् ।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥

समीप के व्यक्ति या वस्तु के बोध के लिए इदम् शब्द, अधिक समीप के व्यक्ति या वस्तु के ज्ञान के लिए एतद् शब्द, सामने के दूर की वस्तु या व्यक्ति के बोध कराने के लिए अदस् शब्द और परोक्ष जो कहने वाले के सामने न हुआ हो, के बोध कराने के लिए तद् शब्द का प्रयोग किया जाता है, यथा :—

अयम् राजा (यह राजा) । एष बालकः (बालक)
असौ मनुष्यः (यह मनुष्य)

२—किसी प्रसिद्ध घटना या स्थान के वर्णन में तद् शब्द का प्रयोग होता है । यथा :—

एषा सा वाराणसी नगरी = यह वाराणसी नगरी सुन्दर है ।

३—'वही' अर्थ में भी तद् शब्द का प्रयोग होता है, यथा :—

तदेव नाम (वही नाम)

४—इन शब्दों के रूप तीनों लिंगों में पृथक् पृथक् बनते हैं ।

३—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

१—जिस किसी स्थान पर यद् शब्द का दो बार प्रयोग होता है उसे सम्बन्ध वाचक सर्वनाम कहते हैं । और उसका अर्थ सब, जो कुछ हो जाता है, यथा :—

यद्यदुच्यते भवता तत्तद् करिष्यामि (जो कुछ आप कहेंगे वही सब करूँगा ।)

२—किम् शब्द के साथ चित्, चन, अपि लगाकर यद् शब्द का भी प्रयोग होता है । यथा :—

यस्मै कस्मैचिद्दातुमिच्छामि (जिस किसी को देना चाहता हूँ)

४—प्रश्नवाचक सर्वनाम

प्रश्नवाचक सर्वनाम में किम्, कः, ननु, अपि शब्द लग जाता है, यथा— किं करोमि, क्व गच्छामि (क्या करूं कहाँ जाऊं)

ननु गतम् मोटरयानम् (क्या मोटर चली गई)

५—अनिश्चय वाचक सर्वनाम

यदि प्रश्नवाचक सर्वनाम में चित्, चन, अपि लगा दिया जाय तो वह अनिश्चयवाचक सर्वनाम हो जाता है, यथा :—

अस्ति कश्चित् वाग्विशेष: (क्या कुछ कहना शेष है)

कश्चित्, कदाचन, कदापि आदि ।

६—निजवाचक सर्वनाम

स्व, स्वकीय, और आत्मीय शब्द का प्रयोग निजवाचक सर्वनाम में होता है । यथा :—

स स्वयमेव तत्रागतः (वह अपने ही वहां आया)

स्वं नाम कथय (अपना नाम कहो)

विशेषण और विशेष्य (Adjective & Substantive)

किसी संज्ञा शब्द के गुणों की विशेषता वतलाने वाले शब्द को विशेषण कहते हैं जेसे 'सुन्दर वालक' यहाँ बालक की विशेषता (सुन्दरता) वताई जा रही है । इसलिए 'सुन्दर' विशेषण हो गया और बालक विशेष्य हुआ (सुन्दर बालक)

यल्लिगं यद्वचनं या च विभिक्तर्विशेष्यस्य ।
तल्लिगं तद्वचनं सैव विभक्तिर्विशेषणस्यापि ।।

संस्कृत में जो लिंग जो वचन जो विभक्ति (कारक) विशेष्य की होती हैं वही लिंग वही वचन वही विभक्ति विशेषण की भी होती है, अर्थात् विशेष्य के अनुसार विशेषण भी बदलता है । यदि विशेष्य एकवचन है तो विशेषण भी एकवचन ही होगा । यदि विशेष्य द्विवचन है तो विशेषण भी द्विवचन होगा, यदि विशेष्य वहुवचन है तो विशेषण भी बहुवचन होगा । यदि विशेष्य स्त्रीलिंग है तो विशेषण भी स्त्रीलिग होगा यदि पुल्लिग विशेष्य है तो विशेषण भी पुल्लिग तथा नपुंसक लिंग होने पर दोनों नपुंसक लिंग होते हैं । इसी प्रकार यदि विशेष्य में सप्तमी विभक्ति है तो विशेषण में भी सप्तमी विभक्ति यदि प्रथमा विभक्ति है तो प्रथमा विभक्ति होगी, यथा :—

एकः नरः (पु०) एका नारी (स्त्री, एकं नगरम् (नपुं०)

एकस्मिन् पुरुषे (पु०) एकस्यां स्त्रियाम् (स्त्री) एकस्मिन् कुले (नपुं०)

विशेषण का निम्नलिखित ३ भागों में विभाग किया जाता है—

१—संख्यावाचक विशेषण

२—परिमाणवाचक विशेषण

३—गुणवाचक विशेषण

१—संख्यावाचक विशेषण

संख्यावाचक विशेषण के कई भेद होते हैं जो नीचे लिखे जाते हैं।

निश्चय संख्यावाचक

संख्यावाचक विशेषण में पहला शब्द निश्चित संख्या वाचक होने से निश्चित संख्या वाचक कहलाता है जैसे 'एक शब्द' यह एक ही वचन होता है और तीनों लिगों में रूप चलते हैं। द्वि शब्द केवल द्विवचन में प्रयुक्त होता है, तीनों लिगों में इसके रूप चलते हैं। शेष शब्द बहुवचन होते हैं। नकारान्त संख्या वाचक शब्दों का रूप तीनों लिंगों में एक सा ही होता है. विंशति से लेकर नवति तक के शब्द एकवचन स्त्रीलिंग में तथा शत से अधिक संख्या वाचक शब्द एक वचन नपुंसक लिंग होते हैं (शतम् सहस्रम्, लक्षम्)

२—क्रमवाचक विशेषण

१—पहला, दूसरा, तीसरा आदि क्रमवाचक शब्दों के प्रयोग करने पर क्रमवाचक विशेषण होता है, यथा—

प्रथमः पहला) द्वितीयः (दूसरा) तृतीयः (तीसरा) चतुर्थः (चौथा) षष्ठः (छठा)

२—क्रमवाचक विशेषणों के रूप तीनों लिगों में चलते हैं, यथा—

प्रथमः (पु०), प्रथमा (स्त्री), प्रथमम् (नपुं०)

३—नकारान्त संख्यावाचक शब्दों में (पंचम से दशन् तक) न के स्थान पर म कर देने से क्रमवाचक विशेषण हो जाता है और इसके रूप तीनों लिंगों में चलते हैं, यथा—

पु०	स्त्री०	नपुं०	पु०	स्त्री०	नपुं०
पंचमः	पंचमी	पंचमम्	सप्तमः	सप्तमी	सप्तमम्
अष्टमः	अष्टमी	अष्टमम्	नवमः	नवमी	नवमम्
दशमः	दशमी	दशमम्			

३—नकारान्त संख्यावाचक शब्दों में (एकादशन् से नवदशन् तक) के शब्दों में 'न' के हटा देने से क्रमवाचक विशेषण बन जाता है, यथा —

पु०	स्त्री०	नपुं०	पु०	स्त्री०	नपुं०
एकादशः	एकादशी	एकादशम्	द्वादशः	द्वादशी	द्वादशम्
त्रयोदशः	त्रयोदशी	त्रयोदशम्	चतुर्दशः	चतुर्दशी	चतुर्दशम्
पंचदशः	पंचदशी	पंचदशम्	षोडशः	षोडशी	षोडशम्
सप्तदशः	सप्तदशी	सप्तदशम्	अष्टादशः	अष्टादशी	अष्टादशम्

४—विंशति से आगे वाले संख्यावाचक शब्दों में 'तम' लगा देने से क्रमवाचक विशेषण हो जाता है, यथा :—

विंशतितमः विंशतितमी विंशन्तितमम् एकविंशतितमः एकविंशतितमी एकविंशतितमम् त्रिंशत्तमः त्रिंशत्तमी त्रिंशत्तमम् चत्वारिंशत्तमः चत्वारिंशत्तमी चत्वारिंशत्तमम् पंचाशत्तमः पंचाशत्तमी पंचाशत्तमम् षष्टितमः षष्टितमी षष्टितमम् सप्ततितमः सप्ततितमी सप्ततितमम् अशीतितमः अशीतितमी अशीतितमम् नवतितमः नवतितमी नवतितमम् शततमः शततमी शततमम्

विशेष : - विंशति आदि शब्दों के अंतिम अक्षर हटा देने से भी क्रमवाचक विशेषण होता है, यथा :—

विंशः, त्रिंशः, चत्वारिंशः, आदि ।

३—आवृत्तिवाचक विशेषण

१—दुगुना, तिगुना, चौगुना (या दोहरा, तेहरा आदि) आदि अर्थों के बोध के लिए आवृत्तिवाचक विशेषण होता है। संख्यावाची शब्दों के बाद 'गुण' 'गुणित' शब्द जोड़ देने से आवृत्ति वाचक विशेषण बन जाता है और इसके रूप तीनों लिंगों में चलते हैं, यथा :—

द्विगुण: द्विगुणा द्विगुणम् वा त्रिगुणितः त्रिगुणितम् त्रिगुणिता द्विगुणित: द्विगुणिता द्विगुणितम् त्रिगुण: त्रिगुणा त्रिगुणम् ।

१—कृषकः द्विगुणं धान्यं लेभे (किसान दुगुना अनाज पाया)

२—त्रिगुणया रज्ज्वा बद्धः स पशुः (वह पशु तिगुनी रस्सी से बंधा है) ।

४—समुदाय बोधक विशेषण

दोनों, तीनों, पचासों, सैकड़ों आदि समुदाय वाचक विशेषण होते हैं। संख्या वाचक शब्दों में के सामने 'अपि' लगा देने से समुदायवाचक विशेषण हो जाता है यथा :—

किं ते त्रयोऽपि बालकाः पठनार्थं गताः (क्या तीनों बालक पढ़ने चले गये) ?

अष्टावपि: दुष्टपुरुषाः कारागारे नियन्त्रिताः—आठों दुष्ट पुरुषों की सजा हो गई ।

५—विभाग बोधक विशेषण

प्रत्येक, सब, आदि विभागबोधक विशेषण कहलाते हैं। जहाँ संख्या वाचक विशेषण में विभाग का बोध हो उसे विभागबोधक विशेषण कहते हैं, यथा :—

मम विद्यालयस्य सर्वे छात्राः चतुराः सन्ति (मेरे स्कूल के सभी छात्र चतुर हैं)

प्रतिच्छात्रम् (सर्वेभ्यः छात्रेभ्यः) पारितोषिकं देयम् (प्रत्येक छात्र को पुरस्कार देना चाहिये) ।

सर्वे ब्राह्मणाः भोज्यन्ताम् (सब ब्राह्मण भोजन करें)

६—अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण

जहाँ संख्या वाचक विशेषण में संख्या का निश्चय न हो उसे अनिश्चित संख्या वाचक विशेषण कहते हैं, यथा—

अस्मिन् विद्यालये कति छात्राः पठन्ति (इस विद्यालय में कितने छात्र पढ़ते हैं)

कस्मिश्चिद् वने एकः व्याघ्रः प्रतिवसति स्म (किसी जंगल में एक सिंह रहता था) ।

७—परिमाणवाचक विशेषण

जहाँ परिमाण (तौल, माप या कितना, इतना आदि) अर्थों में जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है उसे परिमाण वाचक विशेषण कहते हैं, यथा— सेरभरां शर्करां देहि (सेर भर शक्कर दो)

पंचगजपरिमितं वस्त्रमानय (पांच गज कपड़े लाओ)

सभायां कियन्तः पुरुषाः उपस्थिताः आसन् (सभा में कितने पुरुष उपस्थित थे) ?

८—गुणवाचक विशेषण

गुणवाचक विशेषण—किसी भी वस्तु के गुणों के कहने वाले शब्द को गुणवाचक कहते हैं, यथा—

सा वालिका चतुरा अस्ति (वह लड़की चतुर है) ।

राजमार्गे रक्ताः अश्वाः धावन्ति (सड़क पर लाल घोड़े दौड़ रहे हैं) ।

प्रकृतिचंचला सा वाला (वह लड़की स्वभाव से ही चंचल है) ।

लिंग निर्णय

हिन्दी में लिंग दो प्रकार के होते हैं (१) स्त्रीलिंग (२) पुल्लिग और अंग्रेजी में चार। किन्तु संस्कृत में तीन लिंग होते हैं (१) पुल्लिग, (२) स्त्रीलिंग, (३) नपुंसक लिंग। सारी संज्ञायें इन्हीं तीनों लिंगों में विभक्त हैं, कोई पुल्लिग कोई स्त्रीलिंग कोई नपुंसक लिंग कोई उभयलिंग और कोई कोई तीनों लिंग होते हैं, जैसे—

राम पु०) गंगा स्त्री०) फल (नपुं०), घृतं-घृतः (पुं० तथा नपुं०) तटः, तटी, तटम् (तीनों लिंग। ।

संस्कृत में लिंग निर्णय बड़ा कठिन हैं क्योंकि संस्कृत शब्दों का अर्थ देखकर लिंग निर्णय नहीं किया जाता है जैसे दार, भार्या, कलत्र इन तीनों का अर्थ स्त्री है। अतः स्त्री लिंग होना चाहिए किन्तु दार पुलिंग, भार्या स्त्री लिंग, कलत्र नपुंसक लिंग होता है। इसी प्रकार देवता शब्द स्त्रीलिंग होते हुए भी पुरुष का वाचक है।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका अर्थभेद से लिंग भेद हो जाता है जैसे-मित्र शब्द सूर्य का बोधक होने पर पुंलिग, सुहृद (सखा) का बोधक होने पर नपुंसक लिंग होता है। अतः लिंग का ज्ञान अधिकतर व्यवहार, प्रयोग और कोश काव्यादि के पढ़ने से होता है। यहाँ हम संस्कृत के शब्दों के लिंग निर्णय के सम्बन्ध में कुछ नियम बता रहे हैं।

स्त्रीलिंग

१—अन्यूप्रत्ययान्तो शब्द—अनि प्रत्ययान्त या ऊप्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं जैसे :—अवनिः। चमूः।

२—मिन्यन्तः—'मि' और 'नि' प्रत्ययान्त शब्द स्त्री लिंग होते हैं। जैसे :— भूमिः, ग्लानिः।

३—अशनिभरण्यरणयः पुंसि च—किन्तु अशनि, भरणि, अरणि ये शब्द स्त्रीलिग और पुल्लिग दोनों होते हैं।

जैसे :—इयमयं वा अशनिः।

४—वह्निवृष्ण्यग्नयः पुंसि - किन्तु वह्नि, वृष्णि और अग्नि शब्द केवल पुल्लिग होता है।

५—श्रेणियोन्यूर्मयः पुंसि च—और श्रेणि, योनि, ऊर्मि ये स्त्रीलिंग और पुल्लिग दोनों होते हैं, जैसे :—इयमयं वा श्रेणिः।

६—ई प्रत्ययान्तश्च—ई प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होता है, जैसे :—लक्ष्मीः। नदी, गौरी नर्तकी, गोपी आदि।

७—क्तिन्नन्तः (त्यन्तश्च)—क्ति (ति) प्रत्ययान्त शब्द स्त्री लिंग होता है, जैसे :—मतिः, गतिः, कृतिः, युवति; सम्पत्तिः आदि।

८—अड़ाबन्तश्च :—अड् (अ) और आप् (आ) प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिंग होता है, जैसे :—पंगुः, कुरुः, श्वश्रू, करभोरूः, रमा, बाला, गंगा, सर्वा, कन्या।

९—य्वन्तमेकाक्षरम्—यदि इकारान्त, अकारान्त शब्द एकाक्षर हों तो स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे :—

ह्री, स्त्री, श्रीः, भूः,

विशेष :—किन्तु एकाक्षर न होने पर पुल्लिग होता है, जैसे :—पृथुश्रीः प्रतिभूः ।

१०–विंशत्यादिरानवतेः —विंशति (बीस) से लेकर नवति (नब्बे) पर्यन्त संख्यावाचक शब्द स्त्रीलिंग होते हैं । जैसे :—विंशति, त्रिंशत् , चत्वारिंशत्, पंचाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति ।

विशेष:—किन्तु शतम् (सौ) से अधिक संख्या वाचक शब्द नपुसक लिंग होते हैं, जैसे :—शतम्, सहस्रम् आदि ।

११– भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि—भूमि (पृथ्वी), विद्युत् (विजली) सरित् (नदी) लता (वल्ली) वनिता (स्त्री ', ये शब्द तथा इनके अर्थवाले अन्य शब्द स्त्रीलिंग होते हैं । जैसे—

पृथ्वी, तडित्, नदी, वल्ली, स्त्री आदि ।

१२—अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियाम्—अकारान्त पदवाला द्विगु समास स्त्रीलिंग होता है, जैसे—त्रिलोकी, पंचवटी ।

१३—पात्राद्यन्तस्य न—किन्तु पात्र, युग और भुवन शब्द से स्त्रीलिंग नहीं होता नपुंसक लिंग होता है, जैसे—

पंचपात्रम्, चतुर्युगम्, त्रिभुवनम् ।

१४—ऋकारान्ताः मातृ-दुहितृ-स्वसृयातृ-ननान्दरः—अर्थात् ऋकारान्त शब्दों मे मातृ, दुहितृ, स्वसृ, यातृ, ननान्दृ शब्द स्त्रीलिंग होते हैं ।

१५—तिथिवाचक शब्द, दिशावाचक शब्द, निशावाचक शब्द स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे—

प्रतिपद्, द्वितीया, तृतीया, दिक् प्राची, उदीची, रात्रि, रजनी ।

पुंल्लिग

१—घञबन्तः—घ (अ) और अप् (अ) प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं, जैसे-

त्यागः, पाकः, भावः, रागः, रामः, करः, गरः. भवः, धवः आदि ।

२—घाजन्तश्च—'घ' प्रत्ययान्त और अच् (अ) प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं जैसे—

विस्तर, गोचर, चय, जय । विनय, नय आदि ।

३—भयलिंगभगपदानि क्लीबे—किन्तु भय, लिंग, भग, पद, शब्द नपुंसक लिंग होते हैं। जैसे—

भयम्, लिंगम्, भगम्, पदम्।

४—नङन्तः, याच्ञा स्त्रियाम्—नङ् (न) प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिग होते हैं किन्तु याच्ञा शब्द स्त्रीलिंग होता है, जैसे—

विश्नः, प्रश्नः, यत्नः, स्वप्नः।

५—क्यन्तो घुः—कि (इ) प्रत्ययान्त घुसंज्ञक (दा धा) से बने हुए शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे—

विधिः, निधिः, जलधिः, उदधिः, समाधिः, सन्धिः आदि।

विशेष—किन्तु चर्मन् और कर्मन् शब्द नपुंसक लिंग होता है।

६—उकारान्तः—उकारान्त शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे—

प्रभुः, विभुः, इक्षुः, भानुः, शम्भुः।

विशेष—किन्तु धेनु, रज्जु, तनु, रेणु, प्रियंगु, सरयु, शब्द स्त्रीलिंग तथा श्मश्रु, जानु, वसु स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, तालु शब्द नपुंसक लिंग एवं मद्गु, मधु, सीधु, सानु, कमण्डलु ये शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों होते हैं।

७—रुत्वन्तः—'रु' तथा 'तु' अक्षरान्त शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे :—

मेरुः, सेतुः।

विशेष—किन्तु दारु, कसेरु, जतु, मस्तु, शब्द नपुंसक लिंग तथा सक्तु पुल्लिग एवं नपुंसक दोनों होता है।

८—कोपधः—ककारोपध अकारान्त (कान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे—

स्तवकः, कल्कः, कारकः, आदि।

विशेष—किन्तु चिबुक, शालूक, प्रातिपदिक, अंशुक, उल्मुक शब्द नपुंसक लिंग तथा कण्टक, अनीक, सरक, मोदक, चषक, मस्तक, पुस्तक, तडाक, शुष्क, वर्चस्क, पिनाक, भाण्डक, कटक, शण्डक, पितक, तालक, फलक, पुष्कल शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों होते हैं।

६—टोपधः—टकारोपध अकारान्त (टान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे—
घटः, पटः, आदि ।

विशेष—किन्तु किरीट, मुकुट, ललाट, वट, शृंगाट, कराट, लोष्ट, शब्द नपुंसक लिंग एवं कुट, कूट, कपट, कवाट, कर्पट, नट, निकट, कीट, कट, शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों होते हैं ।

१०—णोपधः—णकारोपध अकारान्त (णान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे—
गणः, पाषाणः, गुणः आदि ।

विशेष—किन्तु ऋण, लवण, पर्ण, तोरण, रण, उष्ण शब्द नपुंसक लिंग एवम् कार्षापण, सुवर्ण, स्वर्ण, व्रण, चरण, वृषण, विषाण, चूर्ण, तृण शब्द पुल्लिंग और नपुसंकलिंग होते हैं ।

११—थोपधः—थकारोपध अकारान्त (थान्त) शब्द पुल्लिंग होते हैं । जैसे :—
रथः आदि ।

विशेष—किन्तु काष्ठ, पृष्ठ, सिक्थ, उक्थ शब्द नपुंसक लिंग एवम् तीर्थ, प्रोथ, यूथ, गाथ शब्द पुल्लिग और नपुंसक दोनों होते हैं ।

१२—नोपधः—नकारोपध अकारान्त (नान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे—
इनः, फेनः आदि ।

विशेष - किन्तु जघन, जिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न, चिन्ह शब्द नपुंसक लिंग एवम् मान, यान, अभिधान, नलिन, पुलिन, उद्यान, शयन, आसन, स्थान, चन्दन, सालान, समान, भवन, वसन, संभावन विभावन, विमान शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग होते हैं ।

१३—पोपधः—पकारोपध अकारान्त (पान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे—
यूपः, दीपः, सर्पः आदि ।

विशेष—किन्तु पाप, रूप, उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, समीप, अन्तरीप शब्द नपुंसक लिंग तथा कुतप, कुणप, द्वीप, विटप शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों होते हैं ।

१४—भोपधः— भकारोपध अकारान्त (मान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे— स्तम्भ ,कुम्भ आदि ।

विशेष—किन्तु तलभ शब्द नपुंसक एवं जृम्भ शब्द दोनों लिंग होता है।

१५—मोपधः—मकारोपध अकारान्त (मान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे— सोमः, भीमः, रामः आदि ।

विशेष—किन्तु रुक्म, सिध्म, युग्म, इध्म, गुल्म, अध्यात्म, कुंकुम शब्द नपुंसक लिङ्ग एवं संग्राम, दाडिम, कुसुम, आश्रम, क्षेम, सोम, होम, उद्याम शब्द पुलिङ्ग और नपुंसक दोनों होते हैं।

१६—योपधः—यकारोपध अकारान्त (यान्त) शब्द पुलिङ्ग होते हैं। जैसे— समयः, हयः आदि।

विशेष—किन्तु किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय शब्द नपुंसक लिंग तथा गोमय, कषाय, मलय, अन्वय, अव्यय शब्द पुलिग और नपुंसक लिग दोनों होते हैं।

१७—रोपधः—रकारोपध अकारांत (रान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे :— क्षुरः, अंकुरः, आदि ।

विशेष—किन्तु द्वार, अग्र, तक्र, वप्र, क्षिप्र, सुद्र, नीर, तीर, दूर, कृच्छ्र, रन्ध्र, गभीर, क्रूर, केयूर, केदार, उदर, शरीर, कन्दर, मन्दार, पंजर, अजर, जठर, अजिर, वैर, चामर, पुष्कर, गह्वर, कुहर, कुटीर, कुलीर, चत्वर, काश्मीर, नार, अम्बर, शिशिर, शब्द नपुंसक लिंग एवं चक्र, वज्र, अन्धकार सार, आर, पार, सीर, तोमर, शृंगार, तिमिर, शिशिर, शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों होते हैं।

१८—षोपध :- षकारोपध अकारान्त (षान्त) शब्द पुल्लिग होते हैं। जैसे :— वृषः, वृक्षः आदि ।

विशेष :—किन्तु शिरीष, अम्बरीष, पीयूष, किल्विष, कल्माष शब्द नपुंसक लिग एवं यूष, करीष, मिष, विष, वर्ष, शब्द पुलिग और नपुंसक लिंग दोनों होते हैं।

१९—सोपधः-सकारोपध अकारान्त (सान्त) शब्द पुलिंग होते हैं. जैसे :—
वत्सः, वायसः, आदि।

विशेष :-किन्तु पनस, विस, बुस, साहस, शब्द नपुंसक लिंग एवम् चमस, अंस, रस, निर्वास, उपवास, कर्पास, वास, मास, कास, कांस, मांस, शब्द पुलिंग और नपुंसक लिंग दोनों होते हैं।

२०—रश्मिदिवसाभिधानानि-रश्मि (किरण) तथा दिवस (दिन) अर्थवाचक पुलिंग होते हैं, जैसे :—
रश्मिः, मयूखः, दिवसः, किरणः, करः।

विशेष—किन्तु मरीचि शब्द स्त्रीलिंग और दिन एवं अहन् शब्द नपुंसक लिंग होता है।

२१—दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वं च—दार, अक्षत, लाज, असु (प्राण) शब्द पुल्लिङ्ग और बहुवचन ही होते हैं। जैसे—ते दाराः, अक्षताः लाजाः, असवः, (प्राणाः)।

२२—देव, असुर, आत्मा, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त, स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर, पङ्क, क्रतु, पुरुष, कपोल, मेघ ये शब्द तथा इनके अर्थवाचक शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे--देवाः, सुराः, असुर, दैत्यः, स्वर्गः, नाकः, गिरिः, पर्वतः, समुद्रः, सागरः, नखः, कररुहः, केशः, शिरोरुहः, दन्तः, दशनः. स्तनः, कुचः, भुजः, दोः, कण्ठः, गलः, खड्गः, करवालः, शरः, बाणः, पंकः. कर्दमः, क्रतुः अध्वरः, पुरुषः, नरः, कपालः, गण्डः, मेघः, जलदः।

२३—इसके अतिरिक्त ऋषि, राशि, ध्वनि, वलि, मौलि, रवि, कवि, कपि, मुनि, मरुत्, ध्वज, गज, पंज, मुंज, हस्त, कुन्त, दूत, धूर्त, सूत, चूत, मुहूर्त, गण्ड, पाषण्ड, शिखण्ड, वंश, अंश, ह्रद, कुन्द, कन्द, अर्ध, नितम्ब, पल्लव, कफ, कदाहः, मठ, मणि, तरंग, तुरंग, गंध, स्कन्ध, मृदंग, षंग, सारथि, अतिथि, पाणि, अंजलि शब्द पुल्लिग होते हैं।

नपुंसक लिंग

१—भावे ल्युडन्तः—भाव में ल्युट् (अन) प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिंग होते होते हैं।

जैसे—हसनम्, गमनम्, शयनम्, भोजनम् ।

२—भावेक्तः—भाव में क्त (त) प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

गतम्, हसितम्, गीतम्, जीवितम्, आदि ।

३—त्वलन्तम्—त्वल् (त्व) प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

पटुत्वम्, सुन्दरत्वम्, मधुरत्वम् ।

४—त्रान्तः—त्र अकारान्त (त्रान्त) शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

चरित्रम्, वक्त्रम्, तन्त्रं, यन्त्रं, क्षेत्रं आदि ।

विशेष—छात्र, पुत्र, मन्त्र, वृत्र, मित्र, (सूर्य अर्थवाचक) उष्ट्र शब्द पुल्लिग तथा पत्र, पात्र, पवित्र, सूत्र, छत्र पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों होता है।

५—यद्यढग्यगण्वु ञ्छाश्च भावकर्मणि—यत्, य, ढक् (एय) अ (अ) अण् (अ) यक् (य) वुञ् (अक) छ (ईय) प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

(क्रमशः) स्तेयम्, सख्यम्, कापेयम्, औष्ट्रम्, द्वैहायनम्, आधिपत्यम्, पितापुत्रकम्, किरातार्जुनीयम् ।

६—द्वन्द्वैकत्वम्—समाहार द्वन्द्व समास निष्पन्न शब्द नपुंसक लिंग एक वचन होते हैं। जैसे—

पाणिपादम्, अहिनकुलम् ।

७—अव्ययीभावश्च—अव्ययीभाव समास निष्पन्न शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

प्रतिदिनम्, यथाशक्ति आदि ।

८—इसुसन्तः—इस्, उस् से अन्त होने वाले शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

हविष् (हविः) सर्पिष् (सर्पिः) धनुष् (धनुः) वपुष् (वपुः) आदि ।

९—असन्तो द्व्यचकः—दो स्वर वाले अस् से अन्त होनेवाले शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

यशस् (यशः) मनस् (मनः) तपस् (तपः)।

विशेष—किन्तु दो स्वर से अधिक वाले शब्द पुल्लिग होते हैं, जैसे—

चन्द्रमस् (चन्द्रमाः) किन्तु अप्सरस् शब्द स्त्रीलिंग होता है।

१०—मन् द्व्यच्कोऽकर्त्तरि—दो स्वर वाले मन् प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिंग होते हैं। जैसे—वर्मन् (वर्म) चर्मन् (चर्म)।

विशेष—किन्तु दो स्वरों से अधिक होने पर पुल्लिग होता है, जैसे—

महिमन् (महिमा) अणिमन् (अणिमा)

किन्तु ब्रह्मन् शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों होता है।

११—लोपधः—लकारोपध अकारान्त (लान्त) शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

फलम्, जलम्, कुलम्।

विशेष—किन्तु तूल, उपल, कुसूल, तरल, कम्बल, देवल, वृषल शब्द पुल्लिग एवं शील, मूल, मण्डल, कमल, मुसल, तल, कुण्डल, पलल, मृणाल, वाल, पलाल, विड़ाल, अखिल, शूल शब्द पुल्लिग और नपुंसक लिंग दोनों होते हैं।

१२—शतादिः संख्या—शत (सौ) से अधिक संख्यावाचक शब्द नपुंसक लिंग होते हैं। जैसे—

शतम्, सहस्रम् आदि।

विशेष—किन्तु शत और अयुत शब्द पुल्लिग नपुंसक दोनों लिंग होता है।

१३—फलजातिः—फल के जाति वाचक शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

आम्रम्, आमलकम् आदि।

१४—मुख, नयन, लोह, वन, मांस, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न, कुसुम, वल, रण ये शब्द तथा इनके अर्थवाचक अन्य शब्द नपुंसक लिंग होते हैं, जैसे—

मुखम्, आननम्, नयनं लोचनम्, लोहं कालम्, वनं गहनम्, मांसमामिषम् रुधिरं रक्तम्, कार्मुकं, शरासनम्, विवरं, विलम्, जलं वारि, हलं लांगलम् घनम् द्रविणम्, अन्नं अशनम्, कुसुमं पुष्पम्, वलं नीर्यम् आदि।

विशेष—किन्तु वक्र, नेत्र, अरण्य, गाण्डीव पुल्लिग और नपुंसकलिंग तथा अटवी स्त्रीलिंग होता है।

अध्याय-७

क्रिया (काल)

१—वर्तमानकाल = लट् (Present tense)
२—परोक्षभूत = लिट् (Perfect tense)
३—अनद्यतनभविष्य = लुट् (First Future)
४—सामान्य भविष्य = लृट् (Simple Future)
५—आज्ञा = लोट् (Imperative mood)
६—अनद्यतनभूत = लङ् (Imperfect tense)
७—विधि = विधिलिङ् (Potential mood)
८—आशीः = आशीर्लिङ् (Benedictive)
९—सामान्यभूत = लुङ् (Aorist)
१०—क्रियातिपत्ति = लृङ् (Canditional mood)

लेट् लकार का प्रयोग वेदों में मिलता है, लिङ् लकार के दो भेद होते हैं—एक विधिलिङ्, दूसरा आशीर्लिङ्।

वर्तमानकाल

वर्तमाने लट् (पा० सू०)—वर्तमान काल को कहने वाली धातुओं से 'लट्' लकार का प्रयोग किया जाता है।

(वर्तमान-प्रारम्भ की हुई क्रिया की असमाप्ति को वर्तमान कहते हैं)

१—लट् स्मै—वर्तमान के साथ जब स्म जोड दिया जाता है तब वह भूतकाल हो जाता है, जैसे:—

यजतिस्म युधिष्ठिरः = युधिष्ठिर ने यज्ञ किया।

२—प्रश्नवाचक शब्दों के साथ इच्छा के संदर्भ में वर्तमानकाल प्रायः भविष्य अर्थ को बतलाता है। जैसे :—

किं करोमि ? क्व गच्छामि ? क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ?

३—वर्तमानसामीप्ये वर्तमान वद्वा—वर्तमान काल समीप वर्ती भूत या भविष्य काल बोध कराने के लिए वर्तमान काल का प्रयोग होता है, जैसे:—

कदा आगतोऽसि = तुम कब आये।

अयमागच्छामि = यह मैं आता हूँ (मैं अभी आया हूँ)

कदा गमिष्यसि ? एष गच्छामि (गमिष्यामि वा) कब जाओगे, यह मैं जाता हूँ (जाऊँगा)।

४—कथाओं में तथा भूतकालिक घटनाओं के वर्णन में लट् लकार होता है, जैसे :—अस्ति भासुरको नाम सिंहः—एक भासुरक नाम का सिंह था।

५—यावत्पुरानियातयोर्लट्—(नियात) यावत् और पुरा के साथ लट् लकार होता है, जैसे:—यावद् भुङ्क्ते पुरा भुंक्ते

६—लिटस्यानसिद्धौ च = हेतुसूचक या स्य सूचक वाक्यों में भविष्य का बोध कराने के लिए कभी कभी लट् लकार का प्रयोग होता है, जैसे :
योऽन्न ददाति (दास्यति, दाता वा) स स्वर्गं याति (यास्यति, याता वा) जो अन्न देगा वह स्वर्ग जायगा।

१—जो पढ़ेगा वह पास होगा।

२—महिला राक्ष्य नाम एक नगर है।

३—राम ने वेद का अध्ययन किया।

४—हे भगवन् क्या करूँ ? कहां जाऊं।

५—कब आये, अभी आया।

भूत काल (लिट्, लङ्, लुङ्)

सस्कृत में भूत काल का बोध कराने के लिए तीन लकार प्रयुक्त किये जाते हैं।

१—परोक्ष भूत (लिट्) अनद्यतनभूत (लङ्) सामान्य भूत (लुङ्)

लिट् लकार (परोक्षभूत)

परोक्षे लिट्–आज के पूर्व हुई क्रिया में जो वक्ता के सामने न हुई हो, लिट् लकार का प्रयोग होता है, जैसे :—

अनद्यतनलङ् (अनद्यतन (आज से पहले) अर्थ में)

आज के पूर्व हुए कार्य का वोध कराने के लिए लङ् लकार का प्रयोग होता है, जैसे :—

आसीत् नलो नाम एकः राजा=नल नामक एक राजा थे।

लुङि च

सामान्यभूत अर्थ में लुङ् लकार होता है, जैसे :—

स अद्यैव प्रयागं अगमत्=वह आज ही प्रयाग गया।

१—माङि लुङ्—मा के योग में लुङ् लकार होता है, जैसे :—

मा कार्षीः=मत करो।

नोट—किन्तु मा लगने पर उसका अर्थ आज्ञा हो जाता है और उसके पूर्व अ का लोप हो जाता है।

१—अत्यन्तापह्नवे लिड्वक्तव्यः—जहां किसी से सच्ची बात छिपानी हो तो वहाँ लिड् लकार होता है, जैसे :—

कलिंगेष्वात्सीः किम्=क्या तुम कलिंग में रहते थे ?

नाहं कलिंगान् जगाम=मैं कलिंग देश नहीं गया था !

प्रश्नवाचक आसन्न अर्थ के काल में लिड् और लङ् होता है।

१—कभी कभी इसमें प्रश्नवाचक शब्दों का लङ् होता है, जैसे :—

अगच्छत् किं सः ग्रामम्=क्या वह गांव चला गया ?

जगाम किं सः=क्या वह चला गया ?

अभ्यासार्थ

१—राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन को गये।

२—अशोक एक प्रसिद्ध राजा थे।

३—आज तुम स्कूल मत जाओ।

४—क्या तुम पटना रहते हो, नहीं, मैं पटना नहीं रहता।

५—क्या वह स्कूल चला गया।

६—वहां मुनि रहते थे।

७—नालन्दा एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था।

८—हाय, प्रिये तुम कहां गई ? राम ने बहुत विलाप किया।

९—वह आज काशी चला गया।

१०—क्या उसका लड़का आगया ?

भविष्य काल (लुट्, लृट्)

संस्कृत में भविष्य काल का बोध कराने के लिए दो लकार का प्रयोग करते हैं :—

१—लुट् (अनद्यतन भविष्य), दूसरा लृट् (सामान्य भविष्य)

अनद्यतने लुट्—अनद्यतन (आज न हो) भविष्य में लुट् लकार होता है, अर्थात् आज न होने वाली भविष्य क्रिया में अनद्यतन लुट् होता है, जैसे :—

राम कल प्रयाग जायगा = रामः श्वः प्रयागं गन्ता।

लृट् शेषे—सामान्य भविष्य में लृट् लकार होता है, अर्थात् अनिश्चित भविष्य, आज का भविष्य, निरन्तर भविष्य काल में लृट् लकार होता है। जैसे :—

यास्यत्यद्यशकुन्तला पतिगृहम् = आज शकुन्तला पतिगृह को जायगी।

अभ्यासार्थ

१—राम परसों काशी जायगा।

२—आज वह पढ़ने जायगा।

३—वहाँ कल जलसा होगा।

४—न जाने कब कल्कि अवतार होगा।

५—वह वेदशास्त्र पढ़ेगा।

क्रियापत्ति (लृङ्)

हेतुहेतुमद्भाव में (यदि ऐसा होता तो ऐसा होता) इस प्रकार के वाक्यों के अनुवाद में लृङ्लकार का प्रयोग होता है, जैसे :—

यदि रोगिणः सेवा अभविष्यत् तदा सः नामरिष्यत = यदि रोगी की सेवा होती तो वह न मरता।

अभ्यासार्थं

१—यदि वह घी खाता तो बलवान हो जाता।

२—यदि तू कसरत करता तो नीरोग रहता।

३—यदि राम मेहनत करता तो फेल न होता।

४—यदि वह गुरु की सेवा करता तो विद्वान हो जाता।

५—यदि रावण सीता को न चुराता तो मारा न जाता।

आशीर्लिङ्

आशीर्वाद अर्थ में आशी लिङ् होता है, जैसे:—

वत्स दीर्घायुः भूयाः—पुत्र तुम दीर्घायु हो।

अभ्यासार्थं

१—तुम परीक्षा में पास होओ। २—हमारे महाराज दीर्घायु हों।

३—ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। ४—तुम्हारी कामनाएं पूरी हों।

आज्ञा लोट् एवं विधिलिङ्

१—विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्— अर्थात् विधि, (प्रेरणा, वर्त्तना) निमन्त्रण, आमन्त्रणा (अनुरोध) अधीष्ट (सत्कार पूर्वक व्यापार) प्रश्न, प्रार्थना आदि अर्थों में विधिलिङ् और लोट् का प्रयोग होता है, जैसे।—

विधि = सन्ध्यां मनसा ध्यायेत् = सन्ध्या का मन से ध्यान करें।

निमंत्रण = इह भुंजीत भवान् = आप यहाँ भोजन करें।

आमन्त्रण = इहासीत भवान् अथवा इहास्यताम् = आप यहाँ बैठें।

अधीष्ट = पुत्रमध्यापयेद्भवान्—आप पुत्र को पढ़ावें।

संप्रश्न = किं नो वेदमधीय उर्कंत तम् = क्या वेद पढ़ूं या तर्कशास्त्र ?

प्रार्थना = भोजनं लभेय अथवा लभै = भोजन प्राप्त करूं।

२—आज्ञा, इच्छा, सम्भावना, अनुमति, उपदेश, औचित्य अर्थों में भी विधिलिङ् और लोट् लकार होता है, जैसे :—

आज्ञा = भृत्य गच्छ मह्यं जलमानय = नौकर जाओ मेरे लिए जल लाओ।

इच्छा = अहमिच्छामि भवान् शीघ्रं निरोगः भवेत्–(भवत) मैं चाहता हूँ, आप शीघ्र नीरोग हो जायँ।

संभावना = कदाचिदद्य मम पाठशालायां राष्ट्रपतिः आगच्छेत् = शायद आज हमारे स्कूल में राष्ट्रपति आवें।

अनुमति = किं छात्राः गृहं गच्छेयुः वा गच्छंतु = क्या छात्र घर जाँय ?

उपदेश = सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् = सच बोलो प्रिय बोलो।

औचित्य = त्वं साधूनां सेवां कुर्याः इत्येवोचितम् = तू साधुओं की सेवा कर यही उचित है।

अभ्यासार्थ

१—कभी झूठ न बोलें न कभी चोरी करें।

२—मुझ दीन पर दया कीजिये।

३—सत्संग कभी न छोड़ें।

४—आचार्य से धर्म का उपदेश सुनें।

५—गरीब के साथ सद् व्यवहार करो।

६—शाम आज मेरे स्कूल में राज्यपाल आये।

७—विना विचार कोई काम न करें।

८—ऐसा काम करें जिससे निन्दा न हो।

९—मेरी इच्छा है कि आप अच्छे हो जाँय।

१०—तुम अपने समान पुत्रप्राप्त करो।

११—माता पिता की आज्ञा मानो।

१२—विपत्ति के लिए धन की रक्षा करो।

पद

संस्कृत में दो पद होते हैं, १—आत्मनेपद, २—परस्मैपद। आत्मनेपद कर्तृगामिनि क्रिया फल में होता है, अर्थात् क्रिया का फल कर्त्ता में होता है जैसे 'कुरुते' का अर्थ है अपने लिए करता है। परस्मैपद में क्रिया का फल दूसरे के लिए होता है जैसे 'करोति' वह दूसरे के लिए करता है। किन्तु इसका पालन

सर्वत्र असंभव है अतः दोनों पदों का विना किसी भेद भाव के प्रयोग किया जाता है।

आत्मनेपद

१—अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (पा० सू०) अनुदात्तेत् (जिस धातु का अनुदात्त अक्षर इत्संज्ञक हो) और ङित् (जिस धातु का ङ् इत्संज्ञक हो) धातु से आत्मनेपद होता है जैसे :—एध वृद्धौ=एधेते

शीङ् स्वप्ने = शेते

२—स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले (पा० सू०)—स्वरितेत् और ञित् धातु उभयपदी होती है कर्तृगामिनि क्रियाफल में।

(अर्थात् क्रिया के फल कर्त्ता में जाने पर स्वरित वर्ण जिसका इत्संज्ञक हो तथा ञ् जिसका इत्संज्ञक हो ऐसी धातुओं से परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं, जैसे :-यज=यजते, यजति

डुपचष् पाके=पचते, पचति
श्रीञ् सेवायाम्=श्रयते, श्रयति
भृञ् भरणे=भरते, भरति

३—तङानावात्मनेपदम् (पा० सू०) तङ् (त आताम् झ (अन्त) थास् आथाम् ध्वम्, इट्, वहि, महि और शानच्, कानच्, (आन) प्रत्यय वाली धातुओं में आत्मनेपद होता है।

जैसे :—लभ = लभते

४—भावकर्मणोः (पा० सू०) भाववाच्य, कर्मवाच्य धातुओं से आत्मनेपद होता है। जैसे :—भूयते, कथ्यते।

५—नेर्विशः (पा० सू०) नि उपसर्गपूर्वक विश धातु में आत्मनेपद होता है जैसे :—निविशते

६—विपराभ्यां जेः (पा० सू०) वि और परा उपसर्गपूर्वक, जि धातु में आत्मनेपद होता है।

जैसे विजयते, पराजयते।

७ शिक्षेर्जिज्ञासायाम् (पा० सू०) जिज्ञासा अर्थ में शिक्ष धातु आत्मनेपद होता है। जैसे:—धनुषि शिक्षते (धनुषविषयक ज्ञान की इच्छा रखता है)।

८—उद्विभ्यां तपः (पा० सू०) उत् और वि उपसर्ग पूर्वक 'तप' धातु में आत्मनेपद होता है, जैसे :—उत्तपते, वितपते वा पाणिम्।

९—आङो यमहनः (पा० सू०) आङ् (आ) उपसर्गपूर्वक 'यम' और 'हन्' में आत्मनेपद होता है—जैसे :—आयच्छते, आहते।

१०—समो गम्यृच्छिभ्याम् (पा० सू०) अकर्मक 'सम' उपसर्गपूर्वक 'गम' तथा 'ऋच्छ' धातु में आत्मनेपद होता है जैसे :—संगच्छते, समृच्छते।

११—उदश्चरः सकर्मकात् (पा० सू०) सकर्मक उद् उपसर्ग पूर्वक 'चर' धातु में आत्मनेपद होता है, जैसे :—धर्ममुच्चरते।

१२—ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः (पा० सू०) 'सन्' (स) प्रत्ययान्त ज्ञा, श्रु, स्मृ, दृश, धातु आत्मनेपद होता है, जैसे :—शुश्रूषते, जिज्ञासते सुस्मूर्षते, दिदृक्षते।

१३—भुजोऽनवने (पा० सू०) पालन अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थों में 'भुज' धातु से आत्मनेपद होता है जैसे :—ओदनं भुंक्ते (चावल खाता है)।
वृद्धो जनः दुःखशतानि भुंक्ते (वृद्ध मनुष्य सैंकड़ों दुःख भोगता है)

१४—परिव्यवेभ्यः क्रियः (पा० सू०) परि, वि, अव उपसर्ग पूर्वक 'क्री' धातु में आत्मनेपद होता है, जैसे:—परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते।

१५—उपपराभ्यां क्रमः—उप और परा उपसर्ग पूर्वक 'क्रम्', धातु मे आत्मनेपद होता है, जैसे :—उपक्रमते, पराक्रमते।

परस्मैपद

१—शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् (पा० सू०) आत्मनेपद के नियमों से रहित धातु में परस्मैपद होता है, जैसे :—अस्ति, पठति।

२—अनुपराभ्यां कृञः (पा० सू०) 'अनु' और 'परा' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में परस्मैपद होता है, जैसे :—अनुकरोति, पराकरोति।

३ – व्याङ्परिभ्यो रमः उपाच्च (पा० सू०) वि, आ, परि और उप उपसर्ग पूर्वक रम धातु में परस्मैपद होता है, जैसे :—

विरमति, आरमति, परिरमति, उपरमति ।

४—प्राद्वहः (पा० सू०) प्र उपसर्ग पूर्वक 'वह्' धातु में परस्मैपद होता है । जैसे : – प्रवहति ।

५—अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः—अभि, प्रति, अति, उपसर्गपूर्वक क्षिप् धातु में परस्मैपद होता है, जैसे :—

अभिसिपति, प्रतिक्षिपति, अतिक्षिपति ।

वाच्य

संस्कृत भाषा में वाच्य चार होते हैं—

१—कर्तृवाच्य, २ – कर्मवाच्य, ३ – भाववाच्य ४—कर्मकर्तृवाच्य

१—कर्तृवाच्य

धातुओं के दसों गणों में दसों लकारों के रूप कर्तृवाच्य में होते हैं । अर्थात् उनके कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति तथा कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे:—

रामः पुस्तकं पठति=राम पुस्तक पढ़ता है ।

यहाँ पर पठ धातु से कर्त्ता में लकार हुआ है अतः उसके कर्ता राम में प्रथमा पुस्तक में कर्म (द्वितीया) विभक्ति हुई अतः यह कर्तृवाच्य हुआ । इसी प्रकार अन्य भी समझना ।

२—कर्मवाच्य

जब सकर्मक क्रिया के कर्त्ता में तृतीया विभक्ति तथा कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है तब वह कर्मवाच्य कहलाता है, अर्थात् सकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य होता है । और उसका रूप आत्मनेपद में चलता है । लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् में धातु के बाद य लग जाता है तथा शेष लकारों में विना य के रूप चलता है । कर्मवाच्य में क्रिया का पुरुष, वचन एवं लिंग कर्म के अनुसार होता है और कर्त्ता में तृतीया एवं कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है, जैसे:—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
१—स ग्रन्थं पठति	तेन ग्रन्थः पठ्यते
२—स बालकान् पश्यति	तेन बालकाः दृश्यन्ते
३—अहं सूर्यं पश्यामि	मया सूर्यः दृश्यते
४—पुरुषः अजां नयति	पुरुषेण अजा नीयते
५—रामः कथा शृणोति	रामेण कथा श्रूयते

विशेषः—प्रसंगतः अकर्मक तथा सकर्मक धातुओं का विवेचन किया जाता है।

फलसमानाधिकरणव्यापारावाचकत्वमकर्मकत्वम् ।

फलव्यधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम् ।

एकविभक्त्यन्तत्वे सति एकार्थनिष्ठत्वं कर्मसमानाधिकरणत्वम् ।

भिन्नविभक्त्यन्तत्वे सति भिन्नार्थनिष्ठत्वं कर्मव्यधिकरणत्वम् ।

अर्थ जिन क्रियाओं का फल और व्यापार एक ही में रहे उसे अकर्मक तथा जिन क्रियाओं का फल और व्यापार अलग अलग रहे उसे सकर्मक कहते हैं। जैसेः—'रामः ग्रामं गच्छति' यहाँ पर गमन (गच्छति) क्रिया का व्यापार राम में तथा गमन क्रिया का फल ग्राम में है, अतः यह सकर्मक क्रिया हुई। 'बालकः हसति' यहाँ पर 'हसति' क्रिया का व्यापार हँसने का फल बालक में है अतः यह अकर्मक क्रिया हुई।

अकर्मक धातुएं

लज्जासत्तास्थिति जागरणम्, वृद्धिक्षयभयजीवनमरणम् ।
शयनक्रीडारुचिदीप्त्यर्थम् धातुगणान्तमकर्मकमाहुः ॥

अर्थात्:—लज्जा (लजाना) सत्ता (होना), स्थिति (ठहरना) जागरण (जागना) वृद्धि (बढ़ना) क्षय (नाश) भय (डर) जीवन (जीना) मरण (मरना) शयन (सोना) क्रीड़ा (खेलना) रुचि (अच्छा लगना) दीप्ति (प्रकाश) ये धातुएं तथा इनकी अर्थ की अन्य धातुएं अकर्मक हैं। शेष धातुएं सकर्मक हैं।

३—भाववाच्य

१—जब अकर्मक धातुओं के कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है इस प्रकार अकर्मक धातु से भाववाच्य होता है, अर्थात् जब अकर्मक धातुओं से भाव में कार प्रत्यय होता है तो लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में धातु के बाद 'य' लग जाता है और आत्मनेपद में रूप चलता है तथा भाववाच्य में क्रिया में सदा एक वचन ही रहता है और उत्तम पुरुष या मध्यम पुरुष नहीं होता, केवल प्रथम पुरुष का एक वचन ही होता है। जैसे :—

कर्तृवाच्य	भाव वाच्य
१—सः भवति	तेन भूयते
२—अहं भवामि	मया भूयते
३—त्वं भवसि	त्वया भूयते
४—अहं तिष्ठामि	मया स्थीयते
५—रामः हसति	रामेण हस्यते

धातु से क्त एवं तव्य प्रत्यय होने पर भी कर्म वाच्य बन जाता है, जैसे:-

अहं सिंहम् अपश्यम् = मया सिंहो दृष्टः

स ग्रन्थं पठेत् = तेन ग्रन्थः पठितव्यः

विशेष:— अकर्मक धातु उपसर्ग के संयोग से सकर्मक हो जाती है अतः सकर्मक धातुओं से कर्म में प्रत्यय होगा वह कर्मवाच्य होगा, जैसेः—स दुःखमनुभवति। तेन दुःखमनुभूयते।

४—कर्मकर्तृवाच्य

सकर्म धातुओं का कर्मवाच्य बनाते समय कर्त्ता के व्यापार को प्रकट न करने की इच्छा से कर्त्ता को हटाकर कर्म को ही कर्त्ता मान लेते हैं और धातु कर्म वाच्य ही रहती है, अर्थात् जिससे वास्तविक कर्त्ता का व्यापार प्रकट न हो किन्तु कर्म ही कर्त्ता का काम करे तो वह कर्मकर्तृ वाच्य होता है, जैसे :—

१—देवदत्तः ओदनं पचति = ओदनः पच्यते

२—देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति = भिद्यते काष्ठम्

यहाँ कर्त्ता देवदत्त को हटाकर ओदन को ही कर्त्ता मान लिया गया अतः यह कर्मकर्तृवाच्य हुआ यदि यहाँ कर्त्ता को तृतीयान्त का रूप दे दे तो कर्म वाच्य हो जायगा। भाव यह कि कर्मवाच्य के तृतीयान्त कर्त्ता को हटा देने से कर्मकर्तृ वाच्य बन जाता है, जैसे :—

कर्म वाच्य	कर्मकर्तृ वाच्य
१—कालेन फलं पच्यते	फलं पच्यते।
२—रामेण ग्रामः गम्यते	ग्रामः गम्यते।
३—तेन ग्रन्थः पठ्यते	ग्रन्थः पठ्यते।

विशेष:—जब कर्म कर्त्ता के रूप में कहा जाय तब सकर्मक भी अकर्मक हो जाता है अत: उनसे भी कर्त्ता और भाव में प्रत्यय होता है, जैसे:—

देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति। भिद्यते काष्ठम् काष्ठ (स्वयं) फटता है और जब भाव में लकार (प्रत्यय) होता है तो कर्त्ता में भी तृतीया विभक्ति हो जाती है, जैसे: —

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य	कर्मकर्तृवाच्य	भाववाच्य
देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति	देवदत्तेन काष्ठं भिद्यते	काष्ठं भिद्यते	काष्ठेन भिद्यते
कालः पचति फलम्	कालेन पच्यते फलम्	पच्यते फलम्	पच्यते फलेन
देवदत्तः ओदनं पचति	देवदत्तेन ओदनः पच्यते	ओदनः पच्यते	ओदनेन पच्यते

वाच्य परिवर्तन

१—जब कर्तृवाच्य (सकर्मक) कर्मवाच्य में तथा अकर्मक क्रिया से भाववाच्य में परिवर्त्तित हो जाय तो उसे वाच्य परिवर्तन कहते हैं, जैसे :—

कर्त्तृवाच्य	कर्मवाच्य	भाववाच्य
(१)—स ग्रन्थं पठति	तेन ग्रन्थः पठ्यते	—
(२)—रामः बालकं गृह्णाति	रामेण बालकः गृह्यते	—
(३)—बालकः बिभेति	—	बालकेन भीयते
(४)—अहं हसामि	—	मया हस्यते

२—और जब कर्मवाच्य एवं भाववाच्य को कर्त्तृवाच्य के रूप में परिवर्तित कर दें तो वह भी वाच्यपरिवर्त्तन हो जायगा, जैसे :—

कर्मवाच्य	१—रामेण सूर्यः दृश्यते ।	(कर्त्तृवाच्य)	रामः सूर्यं पश्यति
,,	२—बालकेन फलं गृह्यते ।	,,	बालकः फलं गृह्णाति
भाववाच्य	३—तेन रुद्यते ।		स रोदिति
,,	४—मया स्थीयते ।		अहं तिष्ठामि

३—वाच्य परिवर्त्तन में क्रिया कर्त्ता, कर्म तथा उसके विशेषण आदि सभी में परिवर्त्तन होता है, जैसे :—

कर्त्तृवाच्य	कर्मवाच्य
चतुरः बालकः एकं सुन्दरं ग्रन्थं पठति	चतुरेण बालकेन एकः सुन्दरः ग्रन्थः पठ्यते

४—वाच्यपरिवर्त्तन में क्रिया का जो काल वचन एवं कर्त्ता, कर्म का वचन, विभक्ति जो होती है वही वाच्य परिवर्त्तन में भी होगी जैसे :—

कर्त्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स ग्रामं गच्छति	तेन ग्रामः गम्यते
सा गृह गच्छति	तया गृहम् गम्यते
स पुस्तकमपठत्	तेन पुस्तकम् पठ्यते

५—यदि कर्त्ता में प्रथमा कर्म में द्वितीया विभक्ति है तो कर्त्तृवाच्य, यदि कर्त्ता में तृतीया कर्म में प्रथमा विभक्ति है तो कर्मवाच्य तथा कर्त्ता म तृतीया विभक्ति कर्म न हो तो भाववाच्य होता है, जैसेः—

कर्त्तृवाच्य	कर्मवाच्य	भाववाच्य
१—छात्रः प्रश्नं पृच्छति	छात्रेण प्रश्नः पृच्छ्यते	—
२—स लेखं लिखति	तेन लेखः लिख्यते	—
३—सा ग.नं गायति	तया गानं गीयते	—
४—बालकः कथां श्रृणोति	बालकेन कथा श्रूयते	—
५—पुरुषः बिभेति	—	पुरुषेण भीयते
६—जनाः हसन्ति	—	जनैः हस्यते
७—बालकः क्रीडति	—	बालकेन क्रीड्यते
८—सा रोदिति	—	तया रुद्यते

६—वाच्य परिवर्त्तन में कर्तृवाच्य कृदन्त में क्त तथा तव्य, यत्, ण्यत् प्रत्यय के द्वारा भी कर्मवाच्य में परिवर्त्तित कर दिया जाता है, जैसे :—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
१—सः सिंहमपश्यत्	तेन सिंहो दृष्टः
२—बालकः ग्रन्थमलिखत्	बालकेन ग्रन्थो लिखितः
३—अहं ग्रन्थमपठम्	मया ग्रन्थः पठितः
४—स ग्रामं गच्छेत्	तेन ग्रामो गन्तव्यः
५—अहम् सेवां कुर्याम्	मया सेवा कर्त्तव्या
६—नृपः दानं देयात्	नृपेण दानं देयम्
७—स पुस्तकं पठेत्	तेन पुस्तकं पाठ्यम्
८—सा मालां धारयेत्	तया माला धार्या
९—स तिष्ठेत्	तेन स्थेयम्
१०—स स्मरेत्	तया स्मर्त्तव्यम्

७—कृदन्त में क्तवतु (तवत्) प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है और इसे कर्म वाच्य या भाववाच्य बनाने के लिए क्त (त) प्रत्यय में परिवर्त्तित कर दिया जाता है, जैसे :—

कर्तृ वाच्य	कर्मवाच्य
१—अहम् उक्तवान्	मया उक्तम्
२—स लेखं लिखितवान्	तेन लेखः लिखितः
३—बालकः सिंहं दृष्टवान्	बालकेन सिंहः दृष्टः
४—स पुस्तकं पठितवान्	तेन पुस्तकं पठितम्
५—स कथितवान्	तेन कथितम्

८—कृदन्त में कुछ धातुओं से कर्तृवाच्य में भी क्त प्रत्यय होता है अतः उसे कर्मवाच्य या भाववाच्य बनाने में कर्त्ता में तृतीया तथा कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है और क्रिया में कर्म के अनुसार वचन, लिंग होती है। जैसे—

कर्तृ वाच्य	कर्मवाच्य
१—बालकः काशीं गतः	बालकेन काशी गता।

२—हरिः लक्ष्मीम् आश्लिष्टः	हरिणा लक्ष्मीः आश्लिष्टा
३—हरिः गरुडम् आरूढः	हरिणा गरुड आरूढः
४—स उपोषितः	तेन उपोषितः
५—स शिवम् उपासितः	तेन शिव उपासितः

९—गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नी-हृ-कृष्वहाम् ।
बुद्धिभक्षार्थं से शब्दकर्मकाणां निजेच्छया ।
प्रयोज्ये कर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः ॥

(क) गौणे कर्मणि दुह्यादेः—अर्थात् द्विकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य बनाने में दुह् , याच्, पच् , दण्ड, रुध, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ, मुष् इन बारह धातुओं के गौण कर्म (अकथित अप्रधान) में प्रथमा विभक्ति होती है और क्रिया उसी कर्म के अनुसार होती है, प्रधान (मुख्य) कर्म ज्यों का त्यों रहता है, जैसे :—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
१—गोपः गां दुग्धं दोग्धि	गोपेन गौः दुह्यते दुग्धम्
२—छात्रः गुरुं पृच्छति धर्मम्	छात्रेण गुरुः पृच्छयते धर्मम्
३—स बालकं धर्मं वक्ति	तेन बालकः धर्ममुच्यते
४—हरिः क्षीरसागरं अमृतं मथ्नाति	हरिणा क्षीरसागरः मथ्यते अमृतम्
५—स तडुलान् ओदनं पचति	तेन तण्डुलाः पच्यन्ते ओदनम्

(ख) प्रधाने नीहृकृष्वहाम्—अर्थात् द्विकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य बनाने में नी, हृ, कृष् वह् धातुओं के प्रधान (मुख्य) कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है एवं गौण (अप्रधान) कर्म में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है जैसे:—

कर्तृ वाच्य	कर्मवाच्य
१—स अजां ग्रामं नयति	तेन अजा ग्रामं नीयते
२—भृत्यः भारं गृहं वहति	भृत्येन भारः गृहं उह्यते
३—चौरः कृपणं धनं हरति	चौरेण कृपणः धन ह्रियते

४—नरः वसुधां रत्नं कर्षति नरेण वसुधा रत्नं कृष्यते

(ग)—वृद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया—अर्थात् वृद्धयर्थक, भक्षणार्थक एवं शब्दकर्मक धातुओं से कर्म वाच्य बनाने में अपनी इच्छानुसार दोनों कर्मों में प्रथमा या द्वितीया विभक्ति करनी चाहिए, जैसे :—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
१—गुरुः माणवकं धर्मं बोधयति	गुरुणा माणवकः धर्मं बोध्यते
२—स बालकं ओदनं भक्षयति	तेन बालकः ओदनं भक्ष्यते

(घ) प्रयोज्ये कर्मण्यन्येषाम्—अन्य गति, अकर्मकधातु (हृ, कृ) णिजन्त द्विकर्मक धातुओं से कर्मवाच्य बनाने में प्रयोज्य कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है, जैसेः—

णिजन्त	कर्मवाच्य
१—देवदत्तं ग्रामं गमयति	देवदत्तः ग्रामं गम्यते
२—शिष्यं शास्त्रं ज्ञापयति	शिष्यः शास्त्रं ज्ञाप्यते
३—भृत्यं कटं कारयति	भृत्यः कटं क्रियते
४—भृत्यं कटं हारयति	भृत्यः कट ह्रियते

प्रेरणार्थक-क्रियाएं (णिजन्त)

१—हेतुमति च (पा० सू०) प्रयोजक (प्रेरणा करने वाले) के व्यापार में, तथा प्रेषणा, अध्वेष्णा (प्रार्थना) एवम् विज्ञाना में से किसी भी प्रकार की प्रेरणा में धातु से णिच् (अय्) प्रत्यय होता है और धातु स्वर को वृद्धि या गुण हो जाता है, जैसे :—पठ + णिच् पठ् + अय् = पाठयति

प्रेरणा = नौकर को प्रेरित करना।

अध्येषणा - बराबर को या गुरु आदि को प्रेरित करना।

विज्ञापना = राजा, स्वामी आदि को प्रेरित करना।

विशेष :—णिजन्त में मूल धातु के कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है और कर्म में द्वितीया, जैसे :—

ओदनं पचति देवदत्तः = देदत्त भात पकाता है।

ओदनं पाचयति देवदत्तेन = देवदत्त से भात पकवाता है।

नृपः धनं ददाति = राजा धन देता है।

(नृपेण धनं दापयति मन्त्री=मन्त्री राजा से धन दिलाता है।

२—गत्यर्थक, बुद्धयर्थक, ज्ञानार्थक। तथा इन्हीं अर्थ को व्यक्त करने वाली अन्य धातुओं से (जिनका कर्म कोई शब्द या साहित्यिक विषय हो)

१—शत्रवः स्वर्गमगच्छन् = शत्रून् स्वर्गमगमयत्।

२—स्वे वेदार्थं अविदुः = स्वान् वेदार्थमबेदयत्॥

३—देवाः अमृतं आश्नन् = देवानमृतमाशयत्।

४—विधिः वेदमध्यैत् = विधिं वेदमध्यापयत्।

५—पृथ्वी सलिले आस्ते = पृथ्वीं सलिले आसयते।

३—दृशेश्च—दृश धातु के मूल कर्त्ता णिजन्त में कर्म हो जाता है, जैसे :—

बालः चन्द्रं पश्यति = बालं चन्द्रं दर्शयति।

अपवाद

१—नीवह्योर्न—नी (ले जाना) वह (ढोना) धातुओं के मूल कर्त्ता में णिजन्त में तृतीया विभक्ति होती है, कर्म नहीं, जैसे :—

भृत्यः भारं नयति वहति वा।

भृत्येन भारं नाययति, वाहयति।

२—आदिखाद्योर्न अद् और खाद्धातु के मूल कर्त्ता में णिजन्त में तृतीया विभक्ति होती है कर्म नहीं, जैसे :—

बटुः अन्नं अत्ति, खादति।

बटुना अन्नं आदयति, खादयति।

३ —भक्षेरहिंसार्थस्य न—भक्ष् धातु यदि अहिंसार्थक हो तो उसके मूल धातु के कर्त्ता में णिजन्त में तृतीया विभक्ति होती है, कर्म नहीं। जैसे :—

बटुः अन्नं भक्षयति

बटुना अन्नं भक्षयति

४—हृक्रोरन्यतरस्याम्=हृ और कृ धातु के मूल कर्त्ता में णिजन्त में द्वितीया तृतीया दोनों होता है। जैसे :—

भृत्यः कटं हरति, करोति।

भृत्येन (भृत्यं) कटं हारयति, कारयति वा।

५—अभिवादिदृशोरात्मनेपदेवेति वाच्यम्=अभिवाद और दृश के आत्मनेपदी धातु के मूल कर्त्ता में णिजन्त मे द्वितीया या तृतीया विभक्ति हो जाती है, जैसे:—

अभिवादयते, दर्शयते वा भक्तं भक्तेन वा।

६—जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्-जल्प् आदि धातुओं के मूल कर्त्ता णिजन्त में कर्म होता है, जैसे :—

जल्पयति भाषयति वा पुत्रं धर्मं देवदत्तः।

७—शब्दायतेर्न=किन्तु शब्द् धातु के मूल कर्त्ता णिजन्त में कर्म नहीं होता है, तृतीया विभक्ति होती है, जैसे :—

शब्दाययति देवदत्तेन।

यङन्त धातुएं

१—वारम्वार (फिरफिर) या अतिशय (अधिकता) अर्थ बोध कराने के लिए एकाच् हलादि धातु से परे (य) प्रत्यय होता है।

विशेष :—यङन्त में धातु के आदि अक्षर का द्वित्व हो जाता है तथा आदि स्वर का गुण हो जाता है। एवम् आत्मने पद का रूप हो जाता है।

जैसे :—पुनः पुनः नयति=नेनीयते (वारंवार ले जाता है)।

२—पुनः पुनः भवति= बोभूयते (वारंवार होता है)

३—पुनः पुनः गायति= जेगीयते (वारंवार गाता है)

४—पुनः पुनः ददाति=देदीयते (वारंवार देता है)

५—पुनः पुनः पचति - पापच्यते (वारंवार पकाता है)

२—रीगृदुपधस्य (पा० सू०) ऋ हो उपधा में जिसके ऐसी धातु के अभ्यास के बाद रीत् (री) हो जाता है यङन्त में जैसे :—

१—नरीनृत्यते = बारबार नाचता है।

२—जरीगृह्यते = बार बार ग्रहण करता है।

३—वरीवृत्यते = बार बार वर्तता है।

इच्छार्थक (सन्नन्त) धातुएं

१—इच्छा के अर्थ में (यदि इच्छा करने वाला क्रिया का कर्त्ता एक ही हो तो) धातु से सन् (स) प्रत्यय होता है।

सन् प्रत्यय करना न करना अपनी इच्छा पर निर्भर है।

विशेष : सन् प्रत्ययान्त धातुओं के आदि अक्षर का द्वित्व हो जाता है तथा (द्वित्व भूत) उस अक्षर के अ के स्थान पर इ हो जाता है, जैसे :—

१—गन्तुम् इच्छति = जिगमिषति = जाने की इच्छा करता है।

२—पठितुम् इच्छति = पिपठिषति = पढ़ने की इच्छा करता है।

३—कर्त्तुमिच्छति = चिकीर्षति = करना चाहता है।

४—ज्ञातुम् इच्छति = जिज्ञासते = जानने की इच्छा करता है।

५—मर्त्तुम् इच्छति = मुमूर्षति = मरने की इच्छा करता है।

२—सन् प्रत्ययान्त धातु के सामने आ लगाने से संज्ञा-शब्द बन जाता है, जैसे :—

१—पातुम् इच्छा = पिपासा (पीने की इच्छा)

२—ज्ञातुम् इच्छा = जिज्ञासा (जानने की इच्छा)

३—कर्तुमिच्छा = चिकीर्षा (करने की इच्छा)

४—श्रोतुम् इच्छा = शुश्रूषा (सुनने की इच्छा)

२—सन् प्रत्ययान्त (सन्नन्त) धातु के सामने (उ) लगाने से विशेषण शब्द बन जाता है, जैसे :—

१—ज्ञातुमिच्छुः = जिज्ञासुः (जानने का इच्छुक)

२—पातुमिच्छुः = पिपासुः (पीने का इच्छुक)

३—वक्तुम् इच्छुः=विवक्षुः (बोलने को इच्छुक)
४—श्रोतुमिच्छुः=शुश्रूषुः (सुनने को इच्छुक)
५—मर्त्तुमिच्छुः=मुमूर्षुः (मरने को इच्छुक)

नामधातु :

नाम—नाम का अर्थ है संज्ञा या सुवन्त अर्थात् संज्ञा या सुवन्त से जो धातु (क्रिया) बनाई जावे उसे नामधातु कहते हैं। सस्कृत में संज्ञा शब्दों से भी धातु बन जाती है। प्रायः नामधातु करने, आचरण करने या इच्छा करने के अर्थ में होता है।

१—सुप आत्मनः क्यच् (पा०सू०) उपरोक्त अर्थ में सुबन्त से क्यप् (य) होता है।
विशेष—क्यच् परे रहते संज्ञा शब्द के अ के स्थान पर ई हो जाता है।
जैसे :—पुत्रम् इच्छति=पुत्रीयति (पुत्र की इच्छा करता है)
लवणम् इच्छति=लवणीयति (नमक की इच्छा करता है)

२—काम्यच्च (पा०सू०) उपरोक्त अर्थ में ही काम्यच्च (काम्य) प्रत्यय भी होता है, जैसे :—

पुत्रमात्मन इच्छति = पुत्रकाम्यति ।
यशः इच्छति = यशःकाम्यति ।
सर्पिः इच्छति=सर्पिष्काम्यति ।

३—उपमानादाचारे (पा०सू०) उपमानवाचक कर्म संज्ञक सुबन्त से आचरण अर्थ में क्यच् (य) प्रत्यय होता है, जैसे :—

पुत्रमिवाचरति = पुत्रीयति छात्रम्
विष्णुमिवाचरति=विष्णूयति

४—इसी अर्थ में सब प्रातिपदिकों से क्विप् प्रत्यय होता है और उसका सब लोप हो जाता है, जैसे :—

कृष्ण इवाचरति=कृष्णति
स्व इवाचरति = स्वति
राजेवाचरति = राजानति

५—कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च (पा० सू०) उपमान वाचक कर्त्ता (सुवन्त) से आचरण अन्य में क्यङ् (य) होता है और स का विकल्प से लोप होता है। किन्तु ओजस्, अप्सरस् शब्द के स् का नित्य लोप होता है, तथा आत्मनेपद हो जाता है तथा य के पूर्व अ को दीर्घ हो जाता है, जैसे :—

अप्सरः इवाचरति=अप्सरायते

ओजः इवाचरति = ओजायते

यशः इवाचरति = यशायते, यशस्यते

विद्वान् इवाचरति=विद्वायते, विद्वस्यते

६—क्यङ् प्रत्यय में स्त्रीलिंग शब्दों का पुल्लिंग हो जाता है, जैसे :—

कुमारी इवाचरति=कुमारायते
नीली इवाचरति=नीलायते
युवाइवाचरति=युवायते।
इसी प्रकार=दोलायते, कृष्णायते।
हरिणी इवाचरति = हरितायते।
सपत्नी इवाचरति=सपत्नायते।

७—लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् (पा० सू०) :—लोहित आदि (लोहत, चरित, नील, फेन, मद्र, हरित, दास, मन्द) संज्ञा शब्दों से तथा डाच् (आ) प्रत्ययान्त शब्दों से (भवति) अर्थ में क्यष् प्रत्यय होता है और वह आत्मनेपद परस्मैपद दोनों होता है, जैसे :—

लोहिती इवाचरति = लोहितायते, लोहितायति।

८—कष्टाय क्रमणे (पा० सू०) —चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से उत्साह अर्थ में क्यङ् (य) प्रत्यय होता है, जैसे :—

कष्टाय क्रमते = कष्टायते।

९—शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे (पा०सू०) कर्मवाचक शब्द वैर, कलह,

अभ्र, कण्व, (पाप) मेघ शब्द से (करोति) (करता है) अर्थ में क्यङ् (य) होता है और पूर्व अ को दीर्घ हो जाता है, जैसे :—

शब्दं करोति = शब्दायते । इसी प्रकार :—कलहायते,
अभ्रायते, कण्वायते. मेघायते ।
वैरं करोति = वैरायते । आदि ।

१०–सुदिनदुर्दिनाहारेभ्यश्च :—सुदिन, दुर्दिन शब्द से भी क्यङ् होता है, जैसे :—सुदिनायते, दुर्दिनायते ।

११–नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् (पा० सू०) नमस्, वरिवस्, चित्र शब्दों से क्रमशः पूजा अर्थ में, परिचर्या अर्थ में, आश्चर्य अर्थ में क्यच् (य) प्रत्यय होता है, जैसे :—नमस्यति देवान् (पूजयति), वरिवस्यति गुरून् (शुश्रूषते) चित्रीयते ।

१२–भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च (पा० सू०) :—अभूततद्भाव विषयक भृश आदि (भृश, शीर्ष, चपल, मन्द, पण्डित, उत्सुक, सुमनस्, दुर्मनस् अभिमनस्, उन्मनस्, रहस्, शवम्, भभत, वेहत्, अचिस्, अण्डर, वर्चस्, ओजस्, सुरजस्, अरजस्, रोहत्) शब्दों से (भवति) अर्थ में क्यङ् होता है, जैसे :—

अभृशो भृशो भवति = भृशायते
अपण्डितः पण्डितो भवति = पण्डितायते
अमन्दो मन्दो भवति = मन्दायते

इसी प्रकार चपलायते, उत्सुकायते, सुमनायते, दुर्मनायते, उन्मनायते आदि।

१३–कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः—रोमन्थ और तपस् शब्द से कर्मपदों से (वर्त्तना) और (चरणार्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है जैसे :—

रोमन्थं वर्त्तयति = रोमन्थायते ।

तपः चरति = तपस्यति ।

१४–तत्करोति तदाचष्टे णिच् (वार्तिक) द्वितीयान्त संज्ञा शब्दों से करोति एवं आचष्टे अर्थ में णिच् (अय्) प्रत्यय होता है, जैसे :—

घटं करोति = घटयति । सुखमाचष्टे = सुखयति ।

१५–मुण्ड मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रण, व्रत, वस्त्र, हल, कृत, कल आदि शब्दों से णिच् (अय्) होता है, जैसे :—

मुण्डं करोति = मुण्डयति माणवकम् (बालक का मुण्डन करता है) मिश्रयति अन्नम्, लवणयति, व्यंजनम्, व्रतयति, वर्णं गृह्णाति वर्णयति, रूपं पश्यति = रूपयति ।

१६-सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् – कर्मवाचक सुख आदि (सुख, दुःख, तृप्त, कृच्छ्र, अस, अलीक, प्रदीप, करुण, कृपण, साढ्य) शब्दों से वेदना अर्थ में क्यङ् (य) प्रत्यय होता है, जैसे :—

सुखं वेदयते = सुखायते ।

दुःखं वेदयते = दुःखायते ।

इसी प्रकार करुणायते, कृपणायते, प्रदीपायते, तृष्णायते आदि ।

१७–वाष्पोष्मभ्यामुद्वमने फेनाच्च :—वाष्प, उष्म, फेन शब्दों से उद्वमन अर्थ में क्यङ् (य) प्रत्यय होता है, जैसे :—

वाष्पमुद्वमति = वाष्पायते ।

ऊष्मं उद्वमति = ऊष्मायते ।

फेनमुद्वमति = फेनायते ।

कृदन्त प्रकरण

धातोः (पा० सू०) धातुओं (क्रिया) से प्रत्यय लगाकर जो संज्ञा या विशेषण वा अव्यय शब्द बनते हैं, और जो प्रत्यय होता है उसे कृत् प्रत्यय कहते हैं । यथा : –'दा' धातु से तृच् प्रत्यय हो कर दातृ शब्द बनता है (दाता) अतः यहां पर दातृ (दाता) शब्द 'कृदन्त' शब्द और तृच् प्रत्यय 'कृत्' प्रत्यय है ।

तद्धित और कृदन्त में भेद

तद्धित और कृदन्त में अन्तर यह होता है कि शब्दों से प्रत्यय लगकर जो संज्ञादि शब्द बनते हैं उसे तद्धित कहते हैं तथा धातुओं से प्रत्यय लगकर जो शब्द बनता है उसे कृदन्त कहते हैं।

कृदन्त के भेद

कृत् प्रत्यय मुख्यतया दो प्रकार का होता है—१ कृत्य प्रत्यय, २—कृत् प्रत्यय।

कृत्य प्रत्यय

कृत्याः (पा० सू०) कृत्य प्रत्यय सात प्रकार का होता है, १—तव्य, २—तव्यत्, ३—अनीयर् ४—केलिमर् ५—यत्, ६—क्यप्, ७—ण्यत्। तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः (पा० सू०) कृत्य प्रत्यय एवं क्त और खलर्थ प्रत्यय भाववाच्य और कर्मवाच्य में प्रयुक्त होता है।

कृत्यल्युटो बहुलम् (पा० सू०) कृत्य प्रत्यय और ल्युट् प्रत्यय जिस अर्थ में उक्त होते हैं उससे भिन्न अर्थ में भी होते हैं।

जैसे कर्त्तव्यम् (करना चाहिये) गन्तव्यम् (जाना चाहिये)। अतः चाहिए या योग्य अर्थ में कृत्य प्रत्यय होता है। कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों के रूप तीनों लिंगों में चलते हैं, यथा :—

कर्त्तव्यः (पुं०) कर्त्तव्या (स्त्री०) कर्त्तव्यम् (नपुं०)

कृत्यानां कर्त्तरि वा (पा० सू०) इस सूत्र के नियमानुसार कृत्य प्रत्यय के साथ तृतीया या षष्ठी विभक्ति होती है, यथा :—

मया मम वा तत्कर्त्तव्यम् (मुझे वह काम करना चाहिए)

तव्यत्तव्यानीयरः (पा० सू०)

१—धातु से तव्य, तव्यत् और अनीयर् प्रत्यय होता है, यथा :—

गम् + तव्य = गन्तव्यः, गन्तव्या, गन्तव्यम्

गम् + अनीयर् = गमनीयः, गमनीया, गमनीयम्

आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः (शा०) (यह आश्रम का मृग है इसे नहीं मारना चाहिए, नहीं मारना चाहिए)

२—धातुओं से तव्य तव्यत् और अनीयर प्रत्यय होने पर धातु के स्वर (इ, उ, ऋ, लृ) को गुण हो जाता है। जैसे :—

नी + तव्य = नेतव्यः। श्रु + तव्य = श्रोतव्यः

कृ + तव्य = कर्तव्यः। हृ + तव्य = हर्तव्यः

३—यदि धातु सेट् है तो धातु और प्रत्यय के बीच में इट् (इ) लग जाता है, यथा :—

एध् + तव्य = एध् + इ = एधितव्यः

पठ् + तव्य = पठ् + इ + तव्य = पठितव्यः

भू + तव्य=भू + इ + तव्य=भो + इ + तव्य = भवितव्यः

४—केलिमर उपसंख्यानम् (वार्त्तिक) धातुसे केलिमर् (एलिम) प्रत्यय भी होता है यथा :—

पच् + केलिमर = पचेलिमाः (पकाना चाहिये)

भिद् + केलिमर=भिद् + एलिम=भिदेलिमाः

छिद् + केलिमर=छिद + एलिम = छिदेलिमाः

धातु तव्य	धातु अनीयर (अनीय)
स्था + तव्य=स्थातव्यः	स्था + अनीयर=स्थानीयः
अधि + इ + तव्य=अध्येतव्यः	अधि + इ + अनीयर = अध्ययनीय :
दृश् + तव्य = द्रष्टव्यः	दृश् + अनीयर=दर्शनीयः
त्यज् + तव्य = त्यक्तव्यः	त्यज् + अनीयर = त्यजनीयः
सह् + तव्य = सोढव्यः	सह् = अनीयर=सहनीयः
वह् + तव्य=वोढव्यः	वह् + अनीयर=वहनीयः
पच् + तव्य=पक्तव्यः	पच् + अनीयर=पचनीयः
सृज् + तव्य=स्रष्टव्यः	सृज् + अनीयर=सर्जनीयः

भुज् + तव्य=भोक्तव्यः | भुज् + अनीयर=भोजनीयः

ग्रह् + तव्य = ग्रहीतव्यः | ग्रह + अनीयर=ग्रहणीयः

भक्ष + तव्य = भक्षितव्यः | भक्ष + अनीयर=भक्षणीयः

(१—विशेष—तव्य और तव्यत् प्रत्यय में भेद नहीं है केवल स्वर में भेद होता है। यहाँ कोई भेद नहीं होता है।)

यत् प्रत्यय—

अचो यत् (पा॰सू॰) अजन्त धातु से भाव और कर्मवाच्य में यत् (य) प्रत्यय होता है और उसके स्वर को गुण हो जाता है।

यथा :—चि + यत् = चेयम् । नी + यत् = नेयम्

जि + यत् = जेयम् । क्री + यत् = क्रेयम्

२—ईद्यति (पा॰ सू॰) आकारान्त धातु से यत् प्रत्यय होने पर आ के स्थान पर ई हो जाता है और उसका गुण हो जाता है, यथा :—

दा + यत् दी + य = देयम् । पा + यत् = पी + य = पेयम्

स्था + यत् = स्थी + य = स्थेयम् । हा + यत् = ही + य = हेयम्

ज्ञा + यत् = ज्ञी + य + ज्ञेयम् ।

३—आदेच उपदेशेऽशिति (पा॰ सू॰) यदि ए ओ ऐ औ से अन्त होनेवाली धातुओं में यत् प्रत्यय हो तो ए ओ ऐ औ के स्थान पर आ हो जाता है और आ के स्थान ए (ई) एवं ई को गुण हो जाता है। यथा :—

घे + यत् = धा + य = धी + य = धेयम्

गै + यत् = गा + य = गी + य = गेयम्

छो + यत् = छा + य = छी + य = छेयम्

ध्यै + यत् = ध्या + य = धी + य = ध्येयम्

ग्लै + यत् = ग्ला + य = ग्ली + य = ग्लेयम्

४—पोरदुपधात् (पा० सू०) पवर्गान्त उपधा से भी यत् प्रत्यय होता है, यथा :—

लभ् + यत् लभ्य: जप् + यत् = जप्य:
शप् + यत् शप्यम् रम् + यत् = रम्य:

५—शकिसहोश्च (पा० सू०) शक और सह् धातु से भी यत् प्रत्यय होता है, यथा :—

शक् + यत् = शक्यम् । सह् + यत् = सह्यम्

क्यप् प्रत्यय

१—एतिस्तुशास्वृदृजुष: क्यप् (पा० सू०) इण् (इ) स्तु शास वृ दृजुष् धातु से क्यप् (य) प्रत्यय होता है, यथा :—

इ + क्यप् = इ + य

२—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (पा० सू०) ह्रस्व स्वर के बाद कृत् प्रत्यय परे रहते तुक् (त्) प्रत्यय होता है, यथा :—

इ + क्यप् = इ + य
स्तु + क्यप् = स्तु + तुक् + य = स्तु + त् + य = स्तुत्य:
वृ + क्यप् = वृ + तुक् + य = वृत्य:
आदृ + क्यप् = आदृ + तुक् + य = आदृत्य:
जुष् + क्यप् = जुष्य:

३—शास इदङ् हलो: (पा० सू०) शास् धातु से यत् प्रत्यय होने पर धातु के उपधा के आ के स्थान पर इ हो जाता है, यथा :—

शास् + क्यप् = शिस + य = शिष्य:

४—ऋदुपधाच्चाक्लृपि चृते: (पा० सू०) क्लृप् औ चृत् धातु को छोड़ कर ऋकारोपध (ऋ हो उपधा में जिसके) धातुओं से भी क्यप् (य) प्रत्यय होता है, यथा :—

वृत् + क्यप् — वृत्यम् । वृध् + क्यप् — वृध्यम्

५—भृञोऽसंज्ञायाम् (पा० सू०) संज्ञाभिन्न अर्थ होने पर भृ धातु से भी क्यप् (य) प्रत्यय होता है, यथा :–

भृ + क्यप् – भृ + य – भृ + तुक् + य – भृत्या: (कर्मकरा:)

६—विभाषा कृवृषो: (पा० सू०) कृ और वृष् धातु से विकल्प से क्यप् (य) प्रत्यय होता है।

यथा :– कृ + क्यप् – कृ + तुक् + य – कृत्यम्, कार्यम्

वृष् + क्यप् – वृष्यम्, वर्ष्यम्

७—मृजेर्विभाषा (पा० सू०) मृज् धातु से भी क्यप् (य) प्रत्यय विकल्प से से होता है, यथा :–

मृज् + क्यप् – मृज्य:, मार्ग्य:

ण्यत् प्रत्यय

१—ऋहलोर्ण्यत् (पा० सू०) ऋकारान्त धातु और हलन्त धातुओं से[1] ण्यत् (य) प्रत्यय होता है, और णित् होने से धातु के स्वर को वृद्धि हो जाती है।

यथा :–

कृ + ण्यत् – कृ + य – कार्यम्

हृ + ण्यत् – हृ + य – हार्यम्

वृष् + ण्यत् – वृष + य – वर्ष्यम्

पठ् + ण्यत् – पठ् + य – पाठ्यम्

२—चजो: कुघिण्यतो: (पा० सू०) घि प्रत्यय और ण्यत् प्रत्यय परे रहते च और ज के स्थान पर क वर्ग होता है, यथा :—

पच् + ण्यत् – पक् + य – पाक्यम्

मृज + ण्यत् – मृग + य – मार्ग्यं

टि०—१. अचोऽञ्णिति।

३—न क्वादेः (पा० सू०) कवर्गादि धातुओं से च और ज के स्थान पर क वर्ग नहीं होता।

यथा :-

गर्ज् + ण्यत् – गर्ज्यम्

४—यजयाचरुचप्रवचर्चश्च (पा० सू०) यज्, याच्, रुच्, प्रवच और ऋच् धातुओं से ण्यत् प्रत्यय परे रहते क वर्ग नहीं होता, यथा :-

यज् + ण्यत् – यज् + य – याज्यम्
याच् + ण्यत् – याच् + य – याच्यम्
रुच + ण्यत् – रुच् + य – रोच्यम्
प्रवच् + ण्यत् – प्रवच् + य – प्रवाच्यम्
ऋच् + ण्यत् – ऋच्–अर्च्यम्

५—त्यजिपूज्योश्च (का) त्यज् और पूज् धातु से भी ण्यत् प्रत्यय परे रहते कुत्व नहीं होता है,

यथा—त्यज् + ण्यत्—त्यज् + य—त्याज्यम्
पूज् + ण्यत्—पूज् + य—पूज्य:

६—वचोऽशब्दसंज्ञायाम् (पा० सँ०) अशब्द संज्ञा होने पर वच् धातु से ण्यत् प्रत्यय पर रहते क वर्ग नहीं होता है, यथा—

वच् + ण्यत्—वच् + य—वाच्यः

विशेष शब्द संज्ञा होने पर तो कुत्व होता है यथा वाक्यम्

७—ओरावश्यके (पा०सू०) आवश्यक अर्थ में उकारान्त धातुओं से ण्यत् प्रत्यय होता है, यथा—

लू + ण्यत्—लू + य—लौ + य—लाव्यम्
पू + ण्यत्—पू + य—पौ + य—पाव्यम्
भू + ण्यत्—भू + य—भौ + य—भाव्यम्
श्रू + ण्यत्—श्रू—य—श्रौ + य—श्राव्य:

१—छात्र को सदा गुरु की आज्ञा माननी चाहिये ।

२—बालक को प्रतिदिन प्रातःकाल हाथ मुँह धोना चाहिये ।

३—मनुष्य को प्रतिदिन स्नान करना चाहिये ।

४—उसके बाद स्थिर मन से ईश्वर की आराधना करनी चाहिये ।

५—सदा सच बोलना चाहिये और किसी की निन्दा न करनी चाहिये ।

६—प्रातःकाल प्रत्येक मनुष्य को टहलना चाहिये ।

७—निर्धन मनुष्यों को सदा दान देना चाहिये ।

८—धन को बुरे कार्यों में नहीं व्यय करना चाहिये ।

९—माता पिता और गुरु का सेवा करनी चाहिये ।

१०—भोजन का स्थान साफ और हवादार होना चाहिये ।

११—दूसरे के वस्त्र और जूते आदि नहीं धारण करना चाहिये ।

१२—विद्यार्थी को अपना पाठ याद करना चाहिये ।

१३—प्रतिदिन स्वच्छ और मधुर जल पीना चाहिये ।

१४—महात्माओं का उपदेश हमेशा सुनना चाहिये ।

१५—घर आये हुए शत्रु का भी सम्मान करना चाहिये ।

वर्तमानकालिक कृदन्त

१—लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे (पा०सू०) अप्रथमान्त समानाधिकरण वर्तमान काल में धातु से शतृ (अत्) और शानच् (आन) प्रत्यय होता है। यह अंग्रेजी के क्रिया (Verb) में (Ing) लगाकर बनाये गये शब्दों के समान होता है।

२—परस्मैपदी धातुओं से शतृ (अत्) प्रत्यय और आत्मनेपदी धातु से शानच (आन) प्रत्यय होता है। तथा यह शब्द विशेषण होता है। इसे अंग्रेजी में प्रेजेण्ट पार्टिसिपुल (Present participle) कहते हैं।

३—शतृ और शानच् प्रत्ययान्त शब्दों के रूप तीनों लिंगों में चलते हैं। शतृ प्रत्यय से जो रूप बनता है वह नपुंसक लिंग होता है और यदि त के

स्थान पर न हो जाता है पुंलिंग होता है और स्त्रीलिंग में त के स्थान पर न्ती हो जाता है, यथा—

	न०	पु०	स्त्री०
पच् + शतृ = पच् + अत्	पचत्	पचन्	पचन्ती
हस + शतृ =	हसत्	हसन्	हसन्ती
गम् + शतृ = गच्छ + अत् =	गच्छत्	गच्छन्	गच्छन्ती
दृश् + शतृ = पश्य + अत् =	पश्यत्	पश्यन्	पश्यन्ती
पा + शतृ = पिब + अत् =	पिबत्	पिबन्	पिबन्ती
स्था + शतृ = तिष्ठ + अत् =	तिष्ठत्	तिष्ठन्	तिष्ठन्ती
दा + शतृ = दद् + अत् =	ददत्	ददद्	ददती
श्रु + शतृ = शृणु + अत् =	शृण्वत्	शृण्वत्	शृण्वन्ती शृण्वती
कृ + शतृ = कुरु + अत् =	कुर्वंत्	कुर्वन्	कुर्वंती
प्रच्छ + शतृ = पृच्छ + अत् =	पृच्छत्	पृच्छन्	पृच्छती पृच्छन्ती
इष + शतृ = इच्छ + अत् =	इच्छत्	इच्छन्	इच्छन्ती
कथ + शतृ = कथय + अत् =	कथयत्	कथयन्	कथयन्ती
गै + शतृ = गाय + अत् =	गायत्	गायन्	गायन्ती
घ्रा + शतृ = जिघ्र + अत् =	जिघ्रत्	जिघ्रन्	जिघ्रन्ती
नृत् + शतृ = नृत्य + अत् =	नृत्यत्	नृत्यन्	नृत्यन्ती

४—आत्मनेपद की धातुओं से शानच् (आन) प्रत्यय होता है।

५—आनेमुक् (पा०सू०) यदि धातु के अन्त में अ हो तो उसके बाद मुक् (म्) हो जाता है जैसे—पच + शानच् = पच + आन = पच + म् + आन = पचमानः

(विशेष—भ्वादि, दिवादि, तुदादि, चुरादि गण की धातुओं से मुक् होकर मान लगता है) जैसे—

	पु०	स्त्री०	नपुं०
पच + शानच् =	पचमानः	पचमाना	पचमानम्

	पु०	स्त्री०	नपुं०
लभ + शानच् =	लभमानः	लभमाना	लभमानम्
कम्प + शानच् =	कम्पमानः	कम्पमाना	कम्पमानम्
सेव + शानच् =	सेवमानः	सेवमाना	सेवमानम्
सह + शानच् =	सहमानः	सहमाना	सहमानम्
जन + शानच् =	जायमानः	जायमाना	जायमानम्
वृत + शानच् =	वर्तमानः	वर्तमाना	वर्तमानम्
दीप् + शानच् =	दीप्यमानः	दीप्यमाना	दीप्यमानम्
युध् + शानच् =	युध्यमानः	युध्यमाना	युध्यमानम्

३—अदादि, जुहोत्यादि, स्वादि, रुधादि, क्र्यादि, तनादि गण की धातुओं से आन ही होता है, यथा—

शी + शानच् = शी आन शयानः शयाना शयानम् (सोते हुए)
अधि + इ + शानच् = अधि + इ + आन = अधीयानः अधीयाना अधीयानम् (पढ़ते हुए)
दुह् + शानच् = दुह् + आन = दुहानः दुहाना दुहानम् (दुहते हुये)
लिह् + शानच् = लिह् + आन = लिहानः लिहाना लिहानम् (चाटते हुये)
ब्रू + शानच् = ब्रुव + आन = ब्रुवाणः ब्रुवाणा ब्रुवाणम् (कहते हुये)
दा + शानच् = दद् + आन = ददानः ददाना ददानम् (देते हुये)
धा + शानच् = दध + आन = दधानः दधाना दधानम् (धारण करते हुए)
सु + शानच् = सुनु + आन = सुन्वानः सुन्वाना सुन्वानम् (निचोड़ते हुए)
रुध् + शानच = रुन्ध + आन = रुन्धानः रुन्धाना रुन्धानम् (रोकते हुए)
वि + क्री + शानच् = विक्रीण् + आन = विक्रीणानः विक्रीणाना विक्रीणानम् (बेचते हुए)
कृ + शानच् = कुरु + आन = कुर्वाणः कुर्वाणा कुर्वाणम् (करते हुए)
तन् + शानच् = तनु + आन = तन्वानः तन्वाना तन्वानम् (फैलते हुए)
ज्ञा + शानच् = जान् + आन = जानानः जानाना जानानम् (जानते हुए)

७—लक्षणहेत्वोः क्रियायाः (पा० सू०) किसी विशेषता या परिस्थिति का बोध करने के लिए शतृ और शानच् प्रत्यय होता है यथाः—

शयाना भुञ्जते यवनाः—लेटे हुए यवन खाते हैं।
अर्जयन् वसति—संचित करते हुये रहता है।
हरिं पश्यन् मुच्यते—हरि को देखते हुए मुक्त होता है।
गच्छन् पिपीलको दूरं याति—जाते हुए चींटी भी बहुत दूर जा सकती है।
खादन्न गच्छेत् हसन्न जल्पेत्—खाते हुए नहीं जाना चाहिए हंसते हुए नहीं बोलना चाहिए।

८—ईदासः (पा० सू०) यदि आस धातु से शानच् प्रत्यय हो तो आन के स्थान पर ईन हो जाता है, यथा:—

आस् + शानच् = आस् + आन् = आस् + ईन = आसीनः (बैठे हुए)

९—विदेश्शतुर्वसुः (पा० सू०) विद धातु से शतृ (अत्) प्रत्यय होने पर शतृ के स्थान पर वसु (वस्) हो जाता है, यथा :—

विद् + शतृ = विद् + वसु = विद्वस् = विद्वान् विदुषी

१०—पूङ्यजोः शानन् (पा० सू०) पू और यज् धातु से शानन् (आन) प्रत्यय होता है, यथा :—

पू + शानन् – पू + आन – पूमानः, पवमानः
यज् + शानन् – यज् + आन – यज + मान – यजमानः

११—ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् (पा० सू०) ताच्छील्य, (आदत) वय, वचन, शक्ति, अर्थद्योत्य (बोध) रहे तो धातु से आनश् (आन) प्रत्यय होता है, यथा :—

भोगं भुंजानः—भोग भोगनेकी आदतवाला
कवचं बिभ्राणः—कवच पहनने की उम्र वाला
शत्रुं निघ्नानः—शत्रु को मारनेवाला (समर्थ)

अभ्यासार्थ

१—बालक दौड़ते हुए स्कूल जा रहे हैं।

२—रोती हुई सीता को जंगल में छोड़कर लक्ष्मण दुःखी हुए।

३—छात्र व्याकरण पढ़ने की इच्छा करता हुआ काशी गया।

४—राजकुमार घूमता हुआ अकेला मुनि के आश्रम पर पहुंचा।

५—मनुष्य खाता हुआ कभी भी न पढ़े।

६—दोनों सेनओं के बीच में दुःखी होते हुए अर्जुन को कृष्ण ने गीता सुनाई।

७—उस दयालु राजा ने जंगल में कांपती हुई एक स्त्री को देखा।

८—गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए छात्र ने विद्या पढ़ी।

९—रमेश सत्य जानते हुए भी असत्य का भाषण करता है।

१०—सोनार देखते हुए चुराता हैं इसी लिए उसे 'पश्यतो हर' कहते हैं।

११—काशी जाते हुए मैंने रास्ते में महर्षि भरद्वाज का दर्शन किया।

१२—इस प्रकार विचार करते हुए सारी रात बीत गई।

१३—वह देश का भ्रमण करता हुआ अन्त में कलकत्ता पहुंचा।

१४—रति अपने पति के मृत शरीर को देखकर तथा उनके गुणों का स्मरण करती हुई चिरकाल तक रोती रही।

१५—पुष्प को चुनती हुई लड़की बगीचे में है।

१६—मोहन ने जल पीते हुए कुत्ते को दंडे से पीटा।

१७—बालक गुरु से कुछ पूछता हुआ पढ़ता है।

१८—लजाती हुई बहू घर में भोजन पका रही है।

१९—बिल में प्रवेश करते हुए एक सांप को देखा।

२०—वीरेन्द्र खेलता हुआ स्कूल से घर आया।

भूतकालिक कृदन्त

१—क्तक्तवतू निष्ठा (पा० सू०) भूत काल के अर्थ में कृदन्त में दो प्रत्यय होते हैं 'क्त' और क्तवतु, इन दो प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं।

२—निष्ठा (पा० सू०) भूतकालिक अर्थों में धातु से निष्ठा अर्थात् क्त (त) और क्तवतु (तवत्) होता है।

३—तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः । कर्त्तरि कृत् । अर्थात् क्त (त) प्रत्यय धातु से भाव और कर्मवाच्य में तथा क्तवतु (तवत) प्रत्यय कर्तृवाच्य (कर्त्ता) में होता है । यथा:— तेन जलं पीतम्—उसने जल पिया

स जलं पीतवान्— „ „

कृ + क्त (क्त) = कृतः	कृ + क्तवतु = कृतवत् = कृतवान्
क्री + क्त = क्रीतः	क्री + क्तवतु = क्रीतवत् = क्रीतवान्
इष् + क्त = इष्टः	इष् + क्तवतु = इष्टवत् = इष्टवान्
जि + क्त = जितः	जि + क्तवतु = जितवत् = जितवान्
त्यज् + क्त = त्यक्तः	त्यज् + क्तवतु = त्यक्तवत् = त्यक्तवान्
नी + क्त = नीतः	नी + क्तवतु = नीतवत् = नीतवान्
पा + क्त = पीतः	पा + क्तवतु = पीतवत = पीतवान्
श्रु + क्त = श्रुतः	श्रु + क्तवतु = श्रुतवत् = श्रुतवान्
सृज् + क्त = सृष्टः	सृज् + क्त = सृष्टवत् = सृष्टवान्

४—किन्तु यदि धातु सेट् है तो धातु और प्रत्यय के बीच में इट् (इ) हो जाता है, यथा :—

पठ् पठ् + क्त = पठ् + इ + त = पठितः ।

पठ् + क्तवतु = पठ् + इ + तवत् = पठितवान्

अर्च + क्त = अर्च् + इ + त = अर्चितः ।

अर्च् क्तवतु = अर्च् + इ + तवत् = अर्चितवान्

विद् + क्त = विद् + इ + त विदितः ।

विद् + क्तवतु = विद् + इ + तवत् = विदितवान्

चर् + क्त = चर् + इ + त = चरितः ।

चर् + क्तवतु चर् + इ + क्तवत = चरितवान्

५—निष्ठा प्रत्यय में धातु के अनुनासिक का लोप हो जाता है, यथा :—

गम् + क्त = गतः	गम् + क्तवतु = गतवान्
हन् + क्त = हतः	हन् + क्तवतु = हतवान्
मन् + क्त = मतः	मन् + क्तवतु = मतवान्
तन् + क्त = ततः	तन् + क्तवतु = ततवान्

६—रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः (पा० सू०) यदि र और द के बाद क्त प्रत्यय आवे तो त के स्थान पर न हो जाता है तथा क्त प्रत्यय के पूर्व द के स्थान पर भी न हो जाता हैं, यथा :—

शीर्णः भिन्नः छिन्नः ।



भविष्यकालिक कृदन्त (Future participle)

लृटः सद्वा (पा० सू०) किसी कार्य के करनेवाला आदि अर्थों में धातुओं से वर्तमान काल को तरह भविष्य कालिक में शतृ और शानच् प्रत्यय होता है, यथा:—

(शतृ—स्यत्, शानच्—स्यमान)

कृ + ल्टृट + शतृ = करिष्यत्, करिष्यन्, करिष्यन्ती ।

कृ + लृट् + शानच् = करिष्यमाणम्, करिष्यमाणः, करिष्यमाणा

वर्तमान काल की तरह भविष्य काल में भी तीनों लिंग एवं परस्मैपदी धातु से शतृ एवं आत्मनेपदी धातु से शानच् प्रत्यय होते हैं।

भू + लृट् + शतृ = भविष्यत्, भविष्यन्, भविष्यन्ती

सह + लृट् + शानच् = सहिष्यमाणम्, सहिष्यमाणः सहिष्यमाणा

परस्मैपदी	आत्मनेपदी
गम् + लृट + शतृ = गमिष्यत् ।	युध् + लृट + शानच् = योत्स्यमानः
दृश् + लृट + शतृ = दर्शयिष्यत् ।	सेव् + लृट् + शानच् = सेविष्यमाणः
हन् + लृट + शतृ = हनिष्यत् ।	लभ + लृट + शानच् = लप्स्यमानः
दा + लृट् + शतृ = दास्यत् ।	दा + लृट + शानच् = दास्यमानः
मृ + लृट + शतृ = मरिष्यत् ।	जन् + लृट + शानच् = जनिष्यमाणः
क्रीड् + लृट् + शतृ = क्रीडिष्यत ।	भुज् + लृट + शानच् = भोक्ष्यमाणः

अभ्यासार्थ

१—मासिक वेतन पानेवाला सेवक सदा प्रसन्न रहता है।

२—खेलने वाले छात्र खेल के मैदान में जा रहे हैं।

३—दान देनेवाला राजा यश को प्राप्त करता है।

४—घर जाने वाला बालक गुरु को प्रणाम कर चला गया ।
५—शत्रु को मारने वाला राजा युद्ध के लिए गया ।
६—युद्ध करनेवाले सिपाही युद्ध करने के लिए तैयार हैं ।
७—सेवा करने वाला नौकर कुछ सोच रहा है ।
८—दुख को सहने वाला मनुष्य पश्चात् सुख पाता है ।
९—कार्य करने वाला मनुष्य फल को अवश्य पाता है ।
१०—निबन्ध लिखने वाला छात्र इनाम पाया ।

छिद् + क्त = छिद् + न = छिन्नः , छिन्नवान्
भिद् + क्त = भिद् + न = भिन्नः , भिन्नवान्
जृ + क्त + जीर् + न = जीर्णः , जीर्णवान
शृ + क्त = शीर् + न = शीर्णः , शीर्णवान्
तृ + क्त = तीर + न + तीर्णः , तीर्णवान्
कृ + क्त = कीर + न = कीर्णः , कीर्णवान्
गृ + क्त = गीर् + न = गीर्णः , गीर्णवान्

७—संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः (पा० सू०) संयोगादि (संयुक्त अक्षर आदि में हो जिसके) धातु के आकारान्त धातु के तथा यण् (य् व् र् ल्) से विशिष्ट धातु के क्त के त के स्थान पर न हो जाता है, यथा :—

ग्लै + क्त = ग्ला + न = ग्लानः   म्लै + क्त = म्ला + न = म्लानः
द्रा + क्त द्रा + न = द्राणः   स्त्यै क्त = स्त्यान + न = स्त्यानः
घ्रा + क्त = घ्रा + न = घ्राणः   ध्यै + क्त = ध्या + ध्यानः

न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् (पा० सू०) ध्या, ख्या, पॄ, मूर्च्छ्, मद्, धातु के क्त के त के स्थान पर न नहीं होता है, यथा—

ध्या + क्त = ध्यातः   पॄ + क्त = पूर्त्तः
ख्या + क्त = ख्यातः   मद् + क्त = मत्तः

८—ल्वादिभ्यः (पा०सू०) लु आदि २१ धातुओं के बाद क्त के त के स्थान पर न हो जाता है. यथा :—

लु + क्त = लूनः । ज्या + क्त = जीनः
ली + क्त = लीनः ।

९—ओदितश्च (पा०सू०) ओ इत्संज्ञक धातु के बाद क्त के स्थान पर न हो जाता है, यथा :—

भुजो + क्त = भुज + न = भुग्न: ।

ओहाक् + क्त = ही + न = हीन:, हीनवान्

टुओश्वि + क्त = उत् × शू + न = उच्छून:, उच्छूनवान्

विशेष:—स्व दयोऽपि ओदित:—स्वादि गण की धातु भी ओदित है।

जैसे-सु + क्त = सून: + दू + क्त = दून:

१०—क्षियो दीर्घात् (पा०सू० दीर्घान्त क्षि धातु के क्त के त के स्थान पर न हो जाता है यथा:—

क्षि + क्त = क्षी + त = क्षी + न = क्षीण:, क्षीण:. क्षीणवान्

११—शुष: क: (पा० सू०) शुष धातु के क्त प्रत्यय के स्थान पर क हो जाता हैं यथा :—

शुष् + क्त = शुष् + न = शुष्क:

१२—पचो व: (पा०सू०) पच् धातु के क्त के स्थान पर व हो जाता है और पच् के स्थान पर क हो जाता है, यथा :—

पच् + क्त = पच् + त = पक्व:

१३-क्षायो म (पा० सू०) क्षै (क्षा धातु) के क्त के स्थान पर म हो जाता है, यथा

क्षै + क्त = क्षात – क्षाम:

१४-दृढ: स्थूलबलयो: (पा० सू०) दृह धातु के क्त के होने पर स्थूल एवं बलवान् अर्थ में दृढ का निपातन होता है, यथा :—

दृह् + क्त – दृढ + ढ – दृढ. (ढोढे लोप: से ढ का लोप होगा)

१५—दधातेर्हि: (पा० सू०) धा धातु से क्त प्रत्यय होने पर धा के स्थान पर हि हो जाता है, यथा :—

धा + क्त – हि + त – हितम्

१६-दो दद्घो: (पा० सू०) दा धातु से क्त प्रत्यय होने पर दा के स्थान पर दद् होता है, यथा—

दा + क्त – दद् + त – दत्त:

१७—इग्यण: सम्प्रसारणम् (पा० सू०) जहां प्रथम य् व् र् ल् हो वहां क्रम से इ उ ऋ लृ (सम्प्रसारण) हो जाता है, यथा :—

वस् + क्त – उस् + त – उस् + इ – त – उषित:

यज् + क्त – इज् + त – इष्ट:

वच् + क्त – उच् + त – उक्त:

१८—क्त प्रत्यय सकर्मक धातुओं से कर्म में होता है अत: कर्म उक्त होने से उसमें प्रथमा विभक्ति तथा कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है. उसके लिंग एवं वचन कर्म के अनुसार होते हैं, यथा :—

तेन फलं भुक्तम्—उसने फल खाया ।

रामेण पुस्तकं पठितम्—राम ने पुस्तक पढ़ी ।

१९—गत्यर्थाकर्मकश्लिष्शीङ्स्थासवसजनरुह जीर्यतिभ्यश्च (पा० सू०) अकर्मक धातु गत्यर्थक धातु श्लिष धातु (आलिंगन करना) शीङ् धातु (सोना) स्था धातु (ठहरना) आस् (बैठना) वस् धातु (रहना) जन् धातु (पैदा होना) रुह धातु (उगना) जॄष् धातु (पुराना होना) इन धातुओं से क्त प्रत्यय कर्त्ता में होता है, यथा:—

स: गृहं गत:—वह घर चला गया ।

यमुनाकच्छमवतीर्ण: (पं०)—यमुना के तट पर गया ।

लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरि: (सि० कौ०)—हरि ने लक्ष्मी का आलिंगन किया ।

हरि: शेषमधिशयित: (सि० कौ०)—हरि ने शेषनाग के ऊपर शयन किया ।

हरि: वैकुण्ठमधिष्ठित: (सि० कौ०)—हरि वैकुण्ठ में रहते हैं ।

शिवमुपासित: (सि० कौ०)—शिव की उपासना की ।

स हरिदिनमुपोषित: (सि० कौ०)—उसने एकादशी का उपवास किया ।

रामम् अनुजात: (सि० कौ०)—राम के बाद पैदा हुआ ।

हरि: गरुडमारूढ: (सि० कौ०)—हरि गरुढ पर आरूढ हुये ।

स विश्वमनु जीर्णः (सि० कौ०)—वह संसार के पीछे बुड्ढा हो गया।

२०–नपुंसके भावे क्तः (पा०सू०) कभी कभी क्त प्रत्यय भाव में होता है और उसमें नपुंसक लिंग होता है। तथा कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है।

तेन हसितम्—उसने हंसा

कस्येदमालिखितम्—यह किसका चित्र है।

इसी प्रकार जल्पितम् (कहना) शयितम् (सोना) गतम् (जाना) आदि।

२१–किन्तु क्तवतु प्रत्यय सकर्मक और अकर्मक सभी धातुओं से कर्त्ता में (कर्तृवाच्य) होता है, यथा:—

स जलं पीतवान्—उसने जल पिया।

स क्रीडितवान्—उसने खेला।

२२–मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च (पा० सू०) इच्छार्थक मन् धातु बुधधातु, पूज् धातु तथा इनके अर्थ की अन्य धातुओं से क्त प्रत्यय वर्तमान काल के अर्थ में प्रयुक्त होता है, और षष्ठी विभक्ति होती है, यथा—

राज्ञः मतः इष्टः—राजा को इष्ट (प्रिय) है।

प्रजानां रामः मतः—प्रजाओं को राम इष्ट (प्रिय) है।

इसी प्रकार बुद्धः, पूजितः, अर्चितः, विदितः आदि।

इस सूत्र में च के निर्देश से इन धातुओं से अन्य धातुओं का भी समुच्चय है, यथा:—

शीलितो रक्षितः शान्तः आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि।
रुष्टश्च रुषितश्चोभौ अभित्याहृत इत्यपि।
हृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ।
कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृताः॥

अभ्यासार्थ

१—रामचन्द्र ने बाण से रावण को मारा।

२—पिता की आज्ञा पाकर रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण के साथ वन को गये।

३—मैंने व्रज में गो-दोहन काल में कृष्ण को देखा।

४—बालिका पुस्तक लेकर स्कूल पढ़ने गई।

५—लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से सीता को लेजाकर वन में छोड़ दिया।

६—छात्र ने स्कूल में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया।

७—वे दोनों भक्त मंदिर में दर्शन करने के लिये गये।

८—उसने सौ रुपये में एक पुस्तक खरीदी।

९—राजा ने गरीबों को लाखों रुपये दान में दिये।

१०—वह ब्राह्मण बालक व्याकरण पढ़ कर शास्त्र पढ़ा।

११—सूर्य डूब गया अब संध्या करनी चाहिये।

१२—वर्तमान समय में मनुष्यों का मस्तिष्क भी विज्ञानमय हो गया है।

१३—राम ने रावण को मार लंका का राज्य विभीषण को दिया।

१४—महर्षि वाल्मीकि ने ललित छन्दों में रामायण की रचना की।

१५—बालिका ने एक सुन्दर गीत गाया।

क्वसु और कानच्

लिटः कानज्वा। क्वसुश्च (पा०सू०) सामान्य भूत लिट् लकार अर्थात् जो कर चुका या किया जा चुका है, में धातु से क्वसु (वस्) और कानच् (आन) प्रत्यय होता है।

परस्मैपदी धातुओं से क्वसु और आत्मनेपदी धातुओं से कानच् होता है। इसका रूप लिट लकार के समान चलता है। यथाः—

भू + लिट् + क्वसु (वस्) – बभूवान्

कृ + लिट् + कानच् (आन) – चक्राणः

गम् + लिट् + क्वसु (वस्) – जग्मिवान्

निषेदुषीमासनबन्धधीरः (रघु०) नन्दिनी के बैठने पर बैठते थे।

तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे (रघु०) नगर के पास स्थित हुये उस अज को।

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतम् (सि० कौ०) दूसरा आशीर्वाद पुनरुक्त होगा।

श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते (रघु०) सम्पूर्ण श्रेय को प्राप्त करनेवाले तुम्हें।

उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्याम (रघु०)
अध्यूषुषस्तामभवज्जनस्य (सि० कौ०)

पूर्वकालिक कृदन्त

क्त्वा और ल्यप्

१—समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले (पा० सू०) करके अर्थात् खाकर, पीकर (आदि) पूर्व कालिक (जो क्रिया पहले हो चुकी है) क्रिया का बोध करने के लिए धातु से (क्त्वा) (त्वा) प्रत्यय होता है। क्त्वा प्रत्ययान्त शब्द अव्यय होता है। इसमें विभक्ति नहीं लगती। इसका लोप हो जाता है, यथा:—

भुक्त्वा व्रजति — खाकर जाता है।

वैशम्पायनो मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत् –
वैशम्पायन क्षण भर सोचकर सादर बोले

एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्रे (रघु)
इतना कहकर सिंह के चुप हो जाने पर

स त्वं निवर्त्तस्व विहाय लज्जाम् (रघु०)
तुम लज्जा छोड़कर लौट जाओ।

२— क्त प्रत्यय के समान क्त्वा प्रत्यय में भी धातु के अनुनासिक (न, म्) का लोप - लोप हो जाता है, यथा—

गम् + क्त्वा — गत्वा हन् + क्त्वा — हत्वा
मन् + क्त्वा — मत्वा नम् + क्त्वा — मत्वा

३—क्त प्रत्यय के समान (क्त्वा) प्रत्यय में भी धातु के पूर्व य् व् र् ल् के स्थान पर इ, उ, ऋ, ऌ हो जाता है, यथा—

वच् + क्त्वा – उक्त्वा   वस् + क्त्वा – उषित्वा

यज् + क्त्वा – इष्ट्वा   प्रच्छ + क्त्वा – पृच्छ् + त्वा – पृष्ट्वा

ग्रह + क्त्वा – गृह + त्वा – गृहीत्वा   वद् + क्त्वा – उत् + त्वा – उदित्वा

४—णिजन्त धातुओं से और चुरादि गण धातुओं से क्त्वा प्रत्यय होने पर इ के स्थान पर अय् हो जाता है, यथा :—

कथ + इ + क्त्वा – कथयित्वा   चुर् + इ + क्त्वा – चोरयित्वा

कल्प + इ + क्त्वा – कल्पयित्वा

५—अलंखल्वोः प्रतिषेधे प्राचां क्त्वा (पा० सू०) प्रतिषेधार्थक अलं और खलु के उपपद होने पर क्त्वा प्रत्यय होता है यथा : —

अलंकृत्वा – मत करो   खलु पीत्वा – मत पीओ ।

अलं दत्वा – मत दो

६—समासे नञ् पूर्वे क्त्वोल्यप् (पा० सू०) यदि समास में धातु के पूर्व कोई उपपद या उपसर्ग या अव्यय शब्द लगा हो तो क्त्वा के स्थान पर ल्यप् (य) हो जाता है, यथा:—

आ + दा + क्त्वा – आदाय   आ + नी + क्त्वा – आनीय

स्थिरी + भू + क्त्वा – स्थिरीभूय   पुरः + कृ + क्त्वा – पुरस्कृत्य

७—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (पा० सू०) जब अजन्त धातु का स्वर ह्रस्व हो तो य के पूर्व त हो जाता है, यथा :—

वि + जि + य – विजित्य   प्र + स्तु + य – प्रस्तुत्य

निः + चि + य – निश्चित्य   अधि + कृ + य – अधिकृत्य

अधि + इ + य – अधीत्य

८—क्त्वा प्रत्यय के समान ल्य में भी धातु के य् व् र् ल् के स्थान पर क्रम से इ, उ, ऋ, लृ, हो जाता है, यथा:—

अनु + वद् + क्त्वा = अनु + उद् + ल्यप् = अनूद्य

प्र + वच् + क्त्वा = प्र + उच् + य = प्रोच्य

आ + प्रच्छ् + क्त्वा = आ + पृच्छ + य = आपृच्छ्य

सम् + ग्रह + क्त्वा = सं + गृह् + य = संगृह्य

आ + ह्वे + क्त्वा = आ + हू + य = आहूय

९—ल्यपिलघुपूर्वात् (पा० सू०) णिजन्त और चुरादि धातुओं से ल्यप् प्रत्यय परे रहते इ को लोप हो जाता है किन्तु यदि धातु के उपधा में ह्रस्व हो तो अय् हो जाता है यथा:—

प्र+दर्शि+य=प्रदर्श्य   अव+धारि+य=अवधार्य
वि+रचि+य=विरच्य   सम्+प्र+धारि+य=संप्रधार्य
वि० गणि य=विगणय्य   प्र+नमि+य=प्रणमय्य

१०—वा ल्यपि (पा० सू०) ल्यप् प्रत्यय परे रहते मान्त अनिट् धातु से म का लोप विकल्प से और नान्त धातुओं से नित्य होता है, यथा—

आ + गम् + य = आगत्य, आगम्य   प्र + नम् + य = प्रणत्य प्रणम्य
वि + हन् + य = निहत्य   अव + नम् + य = अवमत्य
वि + तत् + य = वितत्य

११—विभाषापः (पा०सू०) प्रत्यय में आप धातु के णिच् प्रत्यय का लोप विकल्प से होता है, यथा—

प्र+आप्+इ+य—प्रापय्य—प्राप्य

विशेष—यदि अंग्रेजी में **having** से प्रारम्भ होने वाले वाक्य कई बार आने से बुरे लगते हैं किन्तु संस्कृत में क्त्वा और ल्यप् कई बार आने से सुन्दर लगते हैं, यथा—

स ब्राह्मणः तं पशुं रासभं मत्वा भयात् भूमौ पातयामास
देवं निमंत्र्य गृहमुद्दिश्य प्रस्थितः   (पंचतत्र)

कुछ क्त्वा और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द

दह=क्त्वा=दग्ध्वा	संद+हृ+ल्यप्=संदह्य
दृश् क्त्वा=दृष्ट्वा	प्र दृश् ल्यप्=प्रदर्श्य
धा क्त्वा=हित्वा	आ धा ल्यप्=आधाय
ग्रह क्त्वा=गृहीत्वा	अनु ग्रह ल्यप्=अनुगृह्य
लभ् क्त्वा=लब्ध्वा	उप लभ् ल्यप्=उपलभ्य
दंश क्त्वा=दंष्ट्वा	सं दृश् ल्यप्=संदर्श्य

रुह क्त्वा = रुड्वा आ रुह् ल्यप् = आरुह्य
सृज क्त्वा = सृष्ट्वा वि सृज् ल्यप् = विसृज्य

२—मन में उद्विग्न होकर वह युवा सन्यासी वन में टहलने लगा।
२—धर्म को छोड़कर सुखसाधन का कोई दूसरा उपाय नहीं।
३—राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सीता को वन में ले जाकर छोड़ दिया।
४—दूसरे दिन मुनि वन में जाकर योगिराज के आश्रम को ढूंढ़कर वहीं बैठ गया।
५—बालिकाएं पेड़ को सींचकर वृक्ष के नीचे बैठ गईं।
६—ब्राह्मण ने दुष्ट के वचनों को सुनकर बकरे को पृथ्वी पर रखकर बार-बार उसकी ओर देखकर पुनः उसे कन्धे पर रखकर ले गया।
७—रति अपने पति के मृत शरीर को देखकर उनके अनेक गुणों का स्मरण कर बहुत देर तक विलाप करती रही।
८—बालिका हाथ में किताब लेकर स्कूल पढ़ने जाती है।
९—राजकुमार वह स्थान छोड़कर दिन रात चलकर मन्दिर में पहुंचा।
१०-वह पढ़कर विद्वान हो गया यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई।
११-रावण ने सन्यासी का वेष धरकर सीता के पास जाकर भिक्षा मांगी।
१२-राजा ने भृत्यों को बुलाकर कोलाहल का कारण पूछा।
१३-मैं इस घोड़ी को बेचकर दूसरी घोड़ी मोल लेना चाहता हूं।
१४-दशरथ ने वचन बद्ध होकर राम को वन भेज दिया।
१५-विद्यार्थी को एकचित्त होकर पढ़ना चाहिये।

तुमुन् प्रत्यय (The Infinitive mood)

१—के लिये अर्थ को प्रकट करने के लिए तुमुन (तुम्) प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। तुमुन् प्रत्ययान्त शब्दों का रूप बनाने के लिए सर्वोत्तम विधि यह है कि धातु के लुट् लकार के प्रथम पुरुष के एक वचन के रूप में उनका प्रत्यय (ता) हटाकर तुम लगा देने से तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द का रूप बन जाता है, यथा:—

पठिता – पठितुम् – पठ् तुमुन् (तुम)
पाता – पातुम् – पा तुमुन् (तुम्)
आप्ता – आप्तुम् – आप तुमुन् (तुम्)
लब्धा – लब्धुम – लभ तुमुन् (तुम)
अध्येता – अध्येतुम् – अधि इ तुमुन् (तुम)
कर्त्ता – कर्त्तुम – कृ तुमुन् (तुम)
द्रष्टा – द्रष्टुम् – दृश तुमुन् (तुम्)
वक्ता – वक्तुम् – वच् तुमुन् (तुम)
भोक्ता – भोक्तुम् – भुज् तुमुन् (तुम)
यष्टा – यष्टुम् – यज् तुमुन् (तुम)
वोढा – वोढुम् – वह तुमुन् (तुम)
सोढा – सोढम – सह तुमुन् (तुम्)
श्रोता – श्रोतुम् – श्रु तुमुन् (तुम)
स्रष्टा – स्रष्टुम् – स्रज तुमुन् (तुम)
स्थाता – स्थातुम् – स्था तुमुन् (तुम)
हन्ता – हन्तुम – हन् तुमुन् (तुम)
गन्ता – गन्तुम् – गम् तुमुन् (तुम)

२—तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् (पा० सू०) क्रियार्थक क्रिया वाचक पद उपपद हो तो धातु से भविष्य काल में तुमुन् (तुम) प्रत्यय होता है, यथा:—

कृष्णं द्रष्टुं याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है।

३—समानकर्त्तृकेषु तुमुन् (पा० सू०) तुमुनन्त शब्द तथा प्रधान क्रिया के एक ही कर्त्ता होने पर तुमुन् प्रत्यय होता है। एक कर्त्ता न होने पर तुमुन् प्रत्यय नहीं होता, यथा:—

भोक्तुमिच्छति (सि० कौ०) भोगना चाहता है।

पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति (कु० सं०)

पार्वती तपस्या द्वारा शंकर को पति प्राप्त करना चाहती है।

(१—पुत्रस्य पठनं इच्छति)

४— शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् (पा० सू०) शक (सकना) धृष (धृष्टता) ज्ञा (जानना) ग्ला (मलिन होना) घट (प्रयत्न करना) रभ (प्रारम्भ करना) लभ (पाना) क्रम् (प्रारम्भ करना) सह (सहना) अर्ह (योग्य) अस् (होना) इन धातुओं के प्रयोग में तथा अस् धातु के अर्थ की अन्य धातुओं के प्रयोग में तुमुन् प्रत्यय होता है। यथा:—

न च शक्नोम्यवस्थातुम् (गीता) ठहर नहीं सकता।

धृष्णोति भोक्तुम् (सि० कौ०) खाने के लिए हिम्मत करता है।

अस्ति भवति विद्यते वा भोक्तुम् (सि० कौ०) खाने लिए है।

५—पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु (पा०सू०) पर्याप्ति (पूर्णता) तद्वाचक शब्द और अलमर्थ (सामर्थ्य) वाचक शब्द उपपद होने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है, यथा —

पर्याप्तो भोक्तुं प्रवीणः कुशलः पटुर्वा (सि० कौ)
अधिक खाने में निपुण है।

प्रोज्झितुं कः समर्थः (हितो०) मिटाने में कौन समर्थ है

प्रासादास्त्वां तुलयितुमशक्तम् (मेघ)
महल तुम्हारी तुलना करने में असमर्थ है

६—कालसमयवेलासु तुमुन् (पा०सू०) काल वाचक, समय वाचक, वेलावाचक शब्दों के उपपद होने पर समान कर्ता न होने पर भी तुमुन् प्रत्यय होता है यथा:—

कालः समयो वेला वा भोक्तुम् (सि० कौ०) यह खाने का समय है।

७— तुंकाममनसोरपि (पा० सू०) काम और मनः शब्द के साथ भी इच्छा अर्थ में भी तुमुन् प्रत्यय प्रयुक्त होता है, यथा:—

पुनरपि वक्तुकाम इवार्यो लक्ष्यते (शाकु०)
आप और कुछ कहना चाहते हैं।

द्रष्टुमनाः जननी मेऽत्र समागता—
देखने की इच्छा से मेरी माता यहां आई।

अभ्यासार्थ

१—बालिका घड़े लेकर जल लेने के लिए जाती हैं।

२— रमेश स्नान करने के लिए मित्रों के स थ नदी पर गया।

३—बालको! यह कार्य करने का समय नहीं किन्तु सोने का समय है।

४—बालक पढ़ने के लिए स्कूल कब जायगा ?

५—वह अपने पिता के साथ विदेश घूमने के लिए जाना चाहता है।

६—यह पुस्तक खरीदने योग्य है इसे अवश्य खरीदना चाहिए।

७—कथा सुनने के लिए वह प्रति दिन गंगा के तट पर जाता है।

८—तुम क्या पढना चाहते हो जल्दी पढ़ो मुझे कार्य विशेष से बाहर जाना है।

९—वह भोजन करने के लिए उद्यत है।

१०—रावण ने अपनी प्रियाके लिए आभूषण बनाने की इच्छा से यम के भैंसे का एक सींग उखाड़ लिया।

११—इस भार को उठाने के लिए कौन समर्थ है।

१२—वह ज्ञान से अज्ञान रूपी सन्देह को मारना चाहता है।

ण्वुल् और तृच्

१—ण्वुल्तृचौ(पा०सू०) कर्ता के अर्थ में धातु से ण्वुल् (व) और तृच् (तृ) प्रत्यय होता है, ण्वुल प्रत्यय में धातु के एवं उपधा के स्वर को वृद्धि तथा तृच् प्रत्यय में गुण होता है।

२—युवोरनाकौ (पा०सू०) प्रत्यय के यु के स्थान पर अन और वु के अक हो जाता है। यथा:—

नी + ण्वुल — नै + अक — नायक

नी + तृच् — ने तृ — नेता

३— तुमुन्ण्वुलौ कियायां क्रियार्थायाम् (पा सु) क्रियार्थ कि क्रयाव'चक पद उपपद होने पर भविष्यत् अर्थ में तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय हो । हैं, यथा— कृष्णं दर्शको याति (सि० कौ०) कृष्ण को देखने के लिए जाता है।

४—आतो युक् चिण्कृतोः (पा० सू०) दीर्घ आकारान्त धातु से कृत् प्रत्यय होने पर युक् (य्) का आगम हो जाता है।

दा + ण्वुल् – दा + अक – दा य् अक — दायकः

कृ + ण्वुल् = कार् + अक = कारकः   कृ + तृच् = कर्तृ = कर्त्ता
हन् + ण्वुल् = घत् + अक = घातकः   वह् + तृच् = वोढृ = वोढा
जन् + ण्वुल = जन् + अक = जनकः   हन् + तृच् = हन्तृ = हन्ता
पच् + ण्वुल् = पच् + अक = पाचकः   युध् + तृच् = योद्धृ = योद्धा
गैं + ण्वुल् = गै + अक = गायकः   विद् + तृच् = वेत्तृ = वेत्ता
पठ् + ण्वुल् = पाठ अक = पाठकः   गम् + तृच् = गन्तृ = गन्ता

५—कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये (पा० सू०) कर्म उपपद होने पर दृश और विद् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है, यथा—

कन्यादर्शं वरयति (सि० कौ) सब कन्याओं को देखकर वरण करता है।
ब्राह्मणवेदं भोजयति (") जिन्हें ब्राह्मण जानते हैं उन सबको भोजन कराता है।

६—यावति विन्दजीवोः (पा० सू०) यावत् शब्द उपपद रहते विन्द् और जीव धातु से णमुल प्रत्यय होता है यथा—

यावद्वेदं भुङ्क्ते (सि० कौ) जितना मिलता है उतना भोजन करता है,
यावज्जीवमधीते ,, जबतक जीते हैं तब तक पढ़ते हैं।

७—चर्मोदरयोः पूरे (पा० सू०) चर्म और उदर शब्द उपपद होने पर पूर धातु मे णमुल प्रत्यय होने है, यथा—

चर्मपूरं स्तृणाति (सि० कौ) चमड़े को ढकने भर के लिए फैलाता है,
उदरपूरं भुंक्ते ,, पेट भरकर खाता है।

८—शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः (पा० सू०) शुष्क चूर्ण और रूक्ष शब्द उपपद होने पर पिष् धातु के बाद णमुल् होता है, यथा —

शुष्कपेषं पिनष्टि (सि० कौ) सूखा पीसता है
चूर्णपेषं पिनष्टि ,, चूर्ण करके पीसता है
रूक्षपेषं पिनष्टि ,, रूखा पीसता है

९—स्नेहने पिषः (पा० सू०) स्नेह अर्थ से करण उपपद होने पर पिष् धातु से णमुल प्रत्यय होता है, यथा—

उदपेषं पिनष्टि (सि० को०) जल से पीसता हैं।

१०—समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ् ग्रहः (पा० सू०) समूल, अकृत और जीव उपपद होने पर क्रम से हन्, कृ, ग्रह् धातु से णमुल प्रत्यय होता है, यथा—

समूलघातं हन्ति (सि० को) मूल (जड़) से नष्ट कर देता है
अकृतकारं करोति ,, न की हुई वस्तु को कर डालता है
जीवग्राहं गृह्णाति ,, जीते हुए पकड़ लेता है।

११—करणे हनः (पा०सू०) करणवाचक संज्ञा शब्द के पूर्व पद पर हन् से णमुल् प्रत्यय होता है, यथा :—

पादघातं हन्ति (पादेन हन्ति सि०कौ०) पैर से मारता है।

हस्ते वर्त्तिग्रहोः (पा०सू०) हस्त वाचक शब्द करण उपपद होने पर वृत् और गृह धातुसे णमुल प्रत्यय होता है, यथा :— हस्तग्राहं गृह्णाति (सि०कौ) हाथ से पकड़ता है (करग्राहम्, पाणिग्राहम्, हस्तवर्त्तं, करवर्त्तम्, आदि भी जानना)

क प्रत्यय

१— इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः (पा०सू०) इक् (इ उ ऋ लृ) हो उपधा में जिसके ऐसी धातुओं से तथा ज्ञा, प्री, और कृ धातु से कर्त्ता में क (अ) प्रत्यय होता है, यथा:—

बुध + क = बुधः
लिख् + क = लिखः
ज्ञा + क = ज्ञः
कृ + क = किरः
क्षिप् + क = क्षिपः
कृश् + क = कृशः
प्री + क = प्रियः

२—आतश्चोपसर्गे (पा०सू०) उपसर्ग पूर्वक आकारान्त धातु से क प्रत्यय होता हैं।

प्र ज्ञा क = प्रज्ञः
सु ग्ल क = सुग्लः
अभि ज्ञा क = अभिज्ञः
प्र दा क = प्रदः

३— गेहे कः (पा०सू०) ग्रह धातु से कर्ता में क प्रत्यय होता है और ग्रह धातु को सम्प्रसारण होकर गृह हो जाता है, यथा:–

ग्रह + क = गृह + अ = गृहम्

४— आतोऽनुपसर्गे कः (पा०सू०) उपसर्ग भिन्न कर्म उपपद होने पर आकारान्त धातु से कर्ता में क प्रत्यय होता है, यथा :–

धन + दा + क = धनदः   गो + दा + क = गोदः
कम्बल + दा + क = कम्बलदः

५— क प्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् (पा०सू०) मूलविभुज नखमुच काकग्रह, कुमुद, महीध्र, गिरिध्र आदि शब्दों से भी क प्रत्यय होता है, यथा :–

मूलानि विभुजति इति = मूल + वि + भुज + क = मूलविभुजः
महीं ध्रियते इति = मही + धृ + क = महीध्रः
कुम् + मोदते इति = कु + मुद् + क = कुमुदः

अण् प्रत्यय

कर्मण्यण् (पा०सू०) कर्म उपपद होने पर कर्ता में धातु से अण् प्रत्यय होता है और धातु के स्वर को वृद्धि हो जाती है, यथा :–

कुम्भं करोति इति = कुम्भ + कृ + अण् = कुम्भकारः
सूत्रं धारयति इति = सूत्र + धृ + अण् = सूत्रधारः
भाष्यं करोति इति = भाष्य + कृ + अण् = भाष्यकारः
भारं हरति इति = भार + हृ + अण् = भारहारः

ट प्रत्यय

१—चरेष्टः (पा० सू०) अधिकरण उपपद होने पर चर् धातु से ट (अ) प्रत्यय होता है। यथा :—

कुरुषु चरति इति = कुरु + चर् + ट = कुरुचरः, कुरुचरी
जले चरति इति = जल + चर् + ट = जलचरः, जलचरी.

२—भिक्षासेनादायेषु च (पा० सू०) भिक्षा, सेना, आदाय शब्द उपपद होने पर चर् धातु से ट प्रत्यय होता है, यथा :—

भिक्षां चरति इति = भिक्षा + चर् + ट = भिक्षाचरः —

सेनां चरति इति = सेना + चर् + ट = सेनाचरः

आदाय चरति इति = आदाय + चर + ट = आदायचरः

३—कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु (पा० सू०) हेतु, ताच्छील्य (आदत) आनुलोम्य (अनकूलता) अर्थ द्योतक होने पर कृ धातु से ट प्रत्यय होता है, यथा—

श्राद्धं करोति इत = श्राद्ध + कृ + ट = श्राद्धकरः

वचनं करोति इति = वचन + कृ + ट = वचनकरः

यशः करोति इति = यशस् + कृ + ट = यशस्करः, यशस्करी

विशेष—उपर्युक्त अर्थ से भिन्न अर्थ में भी दिवा, विभा, निशा, प्रभा आदि शब्दों से ट प्रत्यय होता है, यथा—

दिवा करोति इति = दिवा + कृ + ट = दिवाकरः

निशां करोति इति = निशा कृ ट = निशाकरः

नन्दिग्रहिपचादिभ्यः ल्युणिन्यचः (पा० सू०)

नन्द आदि धातुओं से ल्यु (अन) ग्रह आदि धातुओं से णिनि (इन्) और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होता है, यथा—

नन्दयति इति = नन्द ल्यु = नन्द् अन = नन्दनः

जनमर्दयति इति = जन अर्द् ल्यु = जन अर्द् अन = जनार्दनः

विशेषेण भीषयते इति = वि भी षु ल्यु = विभीष् अन = विभीषणः

ल्युट् च (पा० सू०) भाववाच्य में नपुंसक लिंग में धातुओं से ल्युट् (अन) प्रत्यय होता है यथा—(विशेष—और वह ल्युट् शब्द नपुंसक लिंग होता है)

हस् ल्युट् = हस् + अन = हसनम् शी ल्युट् = शयनम्

पा ल्युट् = पानम् भू ल्युट् = भवनम्

भुज् ल्युट् = भोजनम् गम् ल्युट् = गमवम्

वच् ल्युट् वचनम्

१—नन्दादिगण—वशनः, मदनः, लवणः, दूषणः, साधनः, वर्धनः, शोभनः, प्रहनः, तपनः, दमनः, जल्पनः, रमणः, दर्पणः, संक्रन्दनः, संकर्षणः संहर्षणः, जनार्दनः, यवनः, मधुसूदनः ।

ग्रह णिनि = ग्राही स्था णिनि = स्थायी

मन्त्र णिनि = मन्त्री उत्सह णिनि = उत्साही

२— ग्रह्यादिगणः ग्राही, उत्साही, उद्भासी, स्थायी, मन्त्री । संमर्दी, विशयी, विशापी, अपराधी, परिभावी, उपरोधी आदि ।

पच् अच्=पचः अर्ह् अच्=अर्हः

चुर् अच्=चोरः वच् अच्=वचः

३— पचादिगणः पचः, वचः । वपः, वदः, चलः, पतः, नदी, मषी, नदः, चरः, गरः, कोषः, चोरः, सूरः, देवः, दोषः, मदः, क्षपः, सेवः, कोपः, व्रणः, दर्शः, सर्पः, श्वपचः ।

णिनिप्रत्यय

१— सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये (पा०सू०) सुबन्त उपपद होने पर ताच्छील्य (आदत) अर्थ में धातु से णिनि (इन्) प्रत्यय होता है, यथा –

उष्णं भुनक्ति इति = उष्ण + भुज + णिनि = उष्णभोजी
शीतं भुनक्ति इति = शीत + भुज + णिनि = शीतभोजी

इसी प्रकार : सोमयाजी, अधिकारी, विद्रोही, प्रवासी, मिथ्यावादी, मित्रघाती , ब्रह्मचारी, आदि ।

२— मनश्च (पा०सू०) सुबन्त उपपद होने पर मन् धातु से भी णिनि प्रत्यय होता है, यथा –

दर्शनीय + मन् + णिनि = दर्शनीयमानी

पण्डित + मन् + णिनि = पण्डितमानी

३— उपसर्ग उपपद होने पर भी णिनि प्रत्यय होता है, यथा –

न वञ्चनीयाः प्रभवोनुजीविभिः (किरात) सबभूत्रोपजीविनाम्'
न्यषेधि शेषोप्यनुयायिवर्गः, पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः (शिशु)

अच् प्रत्यय

एरच् (पा०सू०) इकारान्त धातुओं से अच् प्रत्यय होता है, यथा –

चि + अच्=चयः भी + अच्=भयः
जि + अच्=जयः नी + अच्=नयः

अप् प्रत्यय

१– ॠदोरप् (पा०सू०) ॠकारान्त एवं उकारान्त धातुओं से अप् प्रत्यय होता है, यथा –

कृ + अप्=करः यु + अप=यवः
गृ + अप=गरः पू + अप=पवः
हृ + अप=हरः स्तु + अप=स्तवः
आ + दृ + अप=आदरः भू + अप=भवः
शॄ + अप=शरः वि + स्तृ + अप्=विस्तरः

२—ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च (पा० सू०) ग्रह, वृ, दृ, निश्चि, गम् धातु से भी अप् प्रत्यय होता है यथा—

ग्रह + अप = ग्रहः निश्चि + अप् = निश्चयः
वृ + अप् = वरः गम् + अप् = गमः
दृ + अप् = दरः

घ प्रत्यय

१—भावे (पा०सू०) सिद्धावस्थापन्न धातु का अर्थ होने पर भाव में धातु से प्रत्यय होता है और धातु के उपधा स्वर को वृद्धि हो जाती है, साथ ही चवर्ग के स्थान पर कवर्ग होता है। घाजन्त प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिग होता है। यथा—

पच् + घ = पाकः + अपाकः
त्यज् + घ = त्यागः भज् + घ = भागः

२—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् (पा०सू०) कर्त्ता भिन्न कारक वाच्य में संज्ञा में घ प्रत्यय होता है। यथा—

पद् घ्=पादः लभ् घ्=लाभः
कम् घ् = कामः नश् घ्= नाशः
वि स्तृ अ् = विस्तारः प्र स्तृ घ् प्रस्तारः
कुप घ्=कोप

उपसर्गे घञ्य मनुष्ये बहुलम् (पा०सू०) यदि घ प्रत्यय में धातु के पूर्व तो वह विकल्प से दीर्घ हो जाता है, यथा :—

परिपाकः परीपाकः, प्रतिकारः, प्रतीकारः

३—हलश्च (पा० सू०) करण और अधिकरण वाच्य में भी हलन्त धातुओं से घ् प्रत्यय होता है, यथा—

रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रम् घ्=रामः
अपमृज्यतेनेन इति अपमृ घ् = अपामार्गः

क्तिन प्रत्यय

स्त्रियां क्तिन् (पा०सू०) भाव आदि वाच्य होने पर धातु के बाद क्तिन् (ति) प्रत्यय होता है और वह स्त्रीलिंग होता है, यथा—

कृ क्तिन् (ति) = कृति नी क्तिन् = नीतिः
वृध् क्तिन् वृद्धिः मुच् क्तिन् = मुक्तिः
गम् क्तिन् = गतिः मन् = क्तिन् = मतिः
शम् क्तिन् = शान्तिः दृश् क्तिन् = दृष्टिः
उप स्था क्तिन् = उपस्थितिः स्तु क्तिन् = स्तुतिः
पच् क्तिन् = पक्तिः सम् पद् क्तिन् = सम्पत्तिः
यज् क्तिन् = इष्टिः श्रु क्तिन् = श्रुतिः

नङ् प्रत्यय

१—यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ् (पा० सू०) यज् याच्, यत, विच्छ, प्रच्छ्, रक्ष् धातुओं से नङ् प्रत्यय होता है, यथा—

यज् + नङ् = यज् + न् = यज्ञः याच् + नङ् + याच् + = याच्ञा
यत् + नङ् = यत + न् = यत्नः विच्छ् + नङ् = विश् + न = विश्नः
प्रच्छ + नङ् = प्रछ् + न = प्रश्नः रक्ष + नङ = रक्ष + न = रक्ष्णः

२—स्वपो नन् (पा० सू०) स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होता है, यथा:—

स्वप् + नन् = स्वप्नः

खल् प्रत्यय

१—ईषद्दुःसुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् (पा० सू०) दुःख और सुख वाचक ईषत्, दुस् और सु उपसर्ग से भाव और कर्मवाच्य में धातु से खल् (अ) प्रत्यय होता है, यथा:—

दुः + कृ + खल् = दुष्करः कटो भवता-आप से चटाई बननी कठिन है।

ईषत् + कृ + खल् = ईषत्करः सु + कृ + खल् = सुकरः

सु + लभ + खल् = सुलभः दुर् + लभ् + खल् = दुर्लभः

सु + गम + खल् = सुगमः दुर् + गम् + खल् = दुर्गमः

२—आतो युच् (पा० सू०) खल् प्रत्यय के अर्थ में दीर्घ आकारान्त धातुओं से (ईषत, सु, दुर) से युच् (अन) प्रत्यय होता है, यथा—

ईषत् + पा + युच् (अन) = ईषत्पानः सोमो भवता

दुर् + पा + युच् (अन) = दुष्पानः सु + पा + युच् (अन) = सुपानः

३—भाषायां शासियुधिदृशिधृषिमृषिभ्योयुज्वाच्यः (वार्त्तिक) भाषा में (ईषत् सु, दुर् सप उपसर्ग में शास्, युध्, दृश्, घृष्, मुष् धातु से भी युच् प्रत्यय होता है, यथा:—

दुर् + शास् + युच् (अन) = दुःशासनः। दुर् + युध + युच् (अन) = दुर्योधनः सु + युध + युच् (अन) = सुयोधनः सु + दृश् + युच् (अन) = सुदर्शनः

खश् और खच्

एजेः खश् (पा० सू) णिजन्त एज् धातु से कर्त्ता में खश् (अ) प्रत्यय होता है। अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम (पा० सू०) अरुष, द्विषत् और अजन्त शब्दों से खित् प्रत्यय परे रहते धातु के पूर्व मुम (म) का आगम हो जाता है, किन्तु अव्यय को छोड़कर मुमागम होता है, यथा:—

जनमेजयति = जन + एजि + खश्=जन + मुम् (म्) + एजय्+अ = जनमेजयः ।

३—विध्वरुषोस्तुदः (पा० सू०) विधु और अरुष् शब्द उपपद होने पर तुद् धातु से खश् प्रत्यय होता है, यथा:—

विधुन्तुदति इति=विधु + तुद् + खश् = विधु + मुम्+तुद् + अ = विधुन्तुदः (राहु) अरूंषि (मर्माणि) तुदन्ति=अरुष् + तुद+खश् = अरुन्तुदः

४—असूर्यललाटयोर्दृशितपोः (पा० सू०) असूर्य और ललाट शब्द उपपद होने पर क्रम से दृश् और तप् धातु से खश् (अ) प्रत्यय होता है। यथा:—

सूर्यं न पश्यति इति = असूर्यं + दृश + खश् = असूर्यं + मुम् + पश्य+अ =असूर्यम्पश्यः

ललाटन्तपति इति = ललाट+मुम् + तप्+खश् = ललाटन्तपः

५—आत्ममाने खश्च (पा० सू०) स्वकर्मक मनन से सुबन्त उपपद होने शब्द मन् धातु से खश् और णिनि प्रत्यय होता है. यथा:—

आत्मानं पण्डितम्मन्यते इति= पण्डित + मन् + खश = पण्डितमन्यः पण्डित +मन्+णिनि=पण्डितमानी

६—प्रियवशेवदः खच् (पा० सू०) प्रिय और वश उपपद होने पर वद धातु से खच् (अ) प्रत्यय होता है, यथा—

प्रियं वदति इति=प्रिय+वद् + खच् = प्रिय + मुम् + वद + अ=प्रियंवदः

वशं वदति इति = वश+वद् + खच् = वश + मुम् + वद्+अ = वशंवदः

७—मेघर्त्तिभयेषुकृञः (पा० सू०) मेघ, ऋति, और भय उपपद होने पर कृ धातु से खच् (अ) प्रत्यय होता है, यथा:—

मेघं करोति इति = मेघ + कृ + खच् = मेघ + मुम्+कृ + अ = मेघंकरः

ऋतिं करोति इति = ऋति +कृ + खच्=ऋतिंकरः

भयं करोति इति = भय+कृ + खच् = भयंकरः

८—गमेः सुपिवाच्यः (वार्त्तिक) सुबन्त उपपद होने पर गम धातु से खच् प्रत्यय होता है यथा :—

तुरं गच्छति इति = तुर + गम् + खच् = तुरंगमः
मितं गच्छति इति = मित + गम् + खच् = मितंगमः

९—विहायसे विह इति वाच्यम् । खच्चडिद्वा वाच्यः (वार्त्तिक) खच् प्रत्यय में विहायसा शब्द को विह आदेश होता है और खच् प्रत्यय डित् होता है, यथा:—

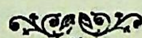
विहायसा गच्छति इति = विहायस + गम् + खच् = विह + मुम् + गम् + अ = विहंगः विहंगमः

१०—द्विषत्परयोस्तापेः (पा० सू०) द्विषत् और पद शब्द उपपद होने पर तप धातु से खच् प्रत्यय होता है, यथा:—

द्विषन्तं तापयति = द्विषत + ताप् + खच् = द्विपन्तमः
परं तापयति = पर + ताप् + खच् = परंतपः

११–संज्ञायां भृतॄजिधारिसहितपिदमः (पांसु०) गमश्च (पा० सू०) संज्ञा होने पर भृ, तॄ, जि, धारि, सहि, तपि, दम और गम धात से खच प्रत्यय होता है, यथा:—

विश्वं विभर्ति इति = विश्व + भृ + खच् = विश्वम्भरः
रथेन तरति इति = रथ + तॄ + खच् = रथन्तरः
पतिं वृणोति इति = पति + वृ + खच् = पतिम्वरा कन्या
शत्रुं जयति इति = शत्रु + जि + खच् = शत्रुंजयः
युगं धारयति इति = युग + धृ + खच् = युगंधरः
शत्रुं साहयति इति = शत्रु + सह + अच् = शत्रुंसहः
अरिं तापयति इति = अरि + दम् + खच् = अरिन्दगः
अरिं दमते इति = अरि + दम् + खच् = अरिन्दमः ।



ड प्रत्यय

१२—अन्तात्यन्ताध्वदूरपार—सर्वानन्तेषु डः (पा०सू०) अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार सर्व और अनन्त शब्द उपपद रहते गम् धातु से ड (अ) प्रत्यय होता है और धातु के टि का लोप हो जाता है यथा –

अन्तं गच्छति इति = अन्त + गम् + ड = अन्तग।

इसी प्रकार :– अत्यन्तं गच्छति अत्यन्तगः, अध्वगः, दूरगः, पारगः, सर्वगः, अनन्तगः आदि ।

१३—सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् (वार्त्तिक) सर्वत्र और पन्न शब्द उपपद रहते गम् धातु से ड प्रत्यय होता है, यथा –

सर्वत्र गच्छति इति = सर्वत्र + गम् + ड = सर्वत्रगः

पन्नं (पठति) गच्छति इति = पन्न + गम् + ड = पन्नगः

१४—उरसो लोपश्च (वार्त्तिक) उरस् शब्द उपपद होने पर गम् धातु से ड प्रत्यय होता है और उरस् के स का लोप हो जाता है, यथा –

उरसा गच्छति = उरस् + गम् + ड = उरगः

१५—सुदुरोरधिकरणे (वार्त्तिक) अधिकरण कारक में सु और (दुर्) उपसर्ग होने पर भी गम् धातु से ड प्रत्यय होता है, यथा –

सुखेन गच्छति = सु + गम् + ड = सुगः

दुःखेन गच्छति = दुर् + गम् + ड = दुर्गः

१६—डे च विहायसो विहादेशो वक्तव्यः (वार्त्तिक) ड प्रत्यय में विहायस शब्द के स्थान पर विह आदेश होता है, यथा –

विहायसा गच्छति = विहायस + गम् + ड = विहगः

१७—अन्येभ्योपि दृश्यते (पा०सू०) धातु के बाद मनिन् वनिप्, क्वनिप् और विच् प्रत्यय होते हैं, यथा –

सु + शृ + मनिन् = सुशर्मन् = सुशर्मा

प्रातः + इ + क्वनिप् = प्रातरित्वन् = प्रातरित्वा

वि + जन् + वनिप् = विजावन् = विजावा

सु + गण् + विच् = सुगण् सुगण्

१८–क्विप् च (पा० सू०) धातु से क्विप् प्रत्यय भी होता है और क्विप प्रत्यय का लोप हो जाता है यथा—

मित्रं शास्ति = मित्र + शास् + क्विप् = मित्रशासस = मित्रशी:

गृ + क्विप + गिर = गी:   पृ + क्विप + तुर् = पू:

१९–सुधर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृवः (पा० सू०) सु, कर्म, पाप, मन्त्र, पुण्य, उपपद होने पर धातु से क्विप् प्रत्यय होता है और क्विप् प्रत्यय का लोप हो जाता है। यथा:—

सु + कृ + क्विप = सुकृ + तुक् = सुकृत्

कर्म + कृ + क्विप् = कर्मकृ + तुक् = कर्मकृत्

मन्त्रं करोति = मन्त्र + कृ + क्विप् = मंत्रकृ + तुक् = मन्त्रकृत्

पाप + कृ + क्विप् = पापकृ + तुक् = पापकृत्

पुण्य + कृ + क्विप् = पुण्यकृ + तुक् = पुण्यकृत्

२०–संपदादिभ्यः क्विप् (वार्तिक) क्तिन्नपीष्यते (वा) संपद् विपद्, आपद्, प्रतिपद्, परिषद्, इनसे क्विप् प्रत्यय और क्तिन प्रत्यय होते हैं, यथा –

संपद् + क्विप् = संपत् = संपद् + क्तिन् = संपत्तिः

इसी प्रकार विपत्, विपत्तिः, आपत्, आपत्तिः, प्रतिपत्, प्रतिपत्तिः, परिषद्, परिषत्तिः आदि

२१–दृशः क्वनिप् (पा०सू०) दृश् धातु से क्वनिप प्रत्यय होता है, यथा –

पारं दृष्टवान् = पारदृश् + क्वनिप् = पारदृश्वन् = पारदृश्वा

२२–अलंकृञ् निराकृञ् प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुचपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच (पा०सू०) अलंपूर्वक कृ धातु निर् + आ + कृ धातु, प्रजन, उत्पच्, उत्पत, उन्मद, रुच, अप् वृतु वृध्, सह, चर धातुओं से इष्णुच प्रत्यय होता हैं, यथा –

अलं + कृ + इष्णुच् = अलंकरिष्णुः   वर्ध + इष्णुच् = वर्धिष्णुः

निरा + कृ + इष्णुच् = निराकरिष्णुः   सह + इष्णुच् = सहिष्णुः

रुच् + इष्णुच् = रोचिष्णुः   चर + इष्णुच् = चरिष्णुः

२३–लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशृभ्यउकञ् (पा०सू०) लष, पत, पद, स्था, भू, वृष् हन, कम्, गम्, शृ धातु से उकञ् प्रत्यय होता है, यथा—

लष + उक = लाषुकः पत + उक = पातुकः
पद् + उक + पादुकः भू + उक = भावुकः
वृष् + उक = वार्षुकः कम् + उक = कामुकः
हन् + उक = घातुकः

२४–जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् (पा० सू०) जल्प्, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ्, धातु से षाकन् (आक) प्रत्यय होता है, यथा—

जल्प + षाकन् = जल्पाकः भिक्ष् + षाकन् = भिक्षाकः
कुट्ट + षाकन् = कुट्टाकः लुण्ट् + षाकन् = लुण्टाक।
वृ + षाकन् = वराकः

२५–स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् (पा० सू०) शीङोपि वाच्यः (वा) स्पृहि, गृहि, पति, दयि, निद्रा, तन्द्रा और श्रद्धा धातु से आलुच् (आलु) प्रत्यय होता है। यथा—

स्पृहि + आलुच् = स्पृहयालुः गृहि + आलुच् = गृहयालुः
पति + आलुच् = पतयालुः दय् + आलुच् = दयालुः
निद्रा + आलुच् = निद्रालुः तन्द्रा + आलुच् = तन्द्रालुः
शी + आलुच् = शयालुः

२६—इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप् (पा० सू० गत्वरश्च पा०सू०) इण्, नश, जि, सृ और गम् धातु से क्वरप् (वर) प्रत्यय होता है यथा—

(इ क्वरप्) इ + क्वरप् = इत्वरः जि + क्वरप् = जित्वरः
(नश् क्वरप्) नश् + क्वरप् = नश्वरः सृ + क्वरप् = सृत्वरः
गमु + क्वरप् = गत्वरः

२७—सनाशंसभिक्ष उः (पा०सू०) सन् प्रत्ययान्त धातु एवं आशंस्, भिक्ष्, धातु से 'उ' प्रत्यय होता है यथा—

कृ + सन् – उ = चिकीर्षुः ज्ञा + सन् + उ = जिज्ञासुः
पा + सन् + उ = पिपासुः आ + शंस् + उ = आशंसुः
भिक्ष उ = भिक्षुः

२८–अप्रत्ययात् (पा०सू०) प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिंग में अ प्रत्यय होता है, यथा

ज्ञा + सन् + अ = जिज्ञासा   पा + सन् + अ = पिपासा

कृ + सन् + अ = चिकीर्षा

२९–गुरोश्च हलः (पा०सू०) गुरु (दीर्घ) स्वर पूर्वक हलन्त धातु से भी स्त्रीलिंग में अ प्रत्यय होता है, यथा—

ईह + अ = ईहा   ऊह + आ = ऊहा

३०–दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिच्मिहपतदशनहः करणे (पा०सू०) दाप्, नी शस्. यु. युज्, स्तु, तुद्, सि, सिच्, मिह, पत, दश, नह धातु से ष्ट्रन् (त्र) प्रत्यय होता है यथा—

दा + ष्ट्रन् = दात्रम्   नी ष्ट्रन् = नी + त्र + नेत्रम्

शस् + ष्ट्रन्म् = शस्त्रम्   यु + ष्ट्रन् = योत्रम्

युज् + ष्ट्रम् = योक्त्रम्   स्तु + ष्ट्रन् = स्तोत्रम्

तुद् + ष्ट्रम् = तोत्त्रम्   सिच् + ष्ट्रन् = सेक्त्रम्

सि + ष्ट्रन् = सेत्रम्   मिह + ष्ट्रन् = मेढ्रम्

नह् + ष्ट्रन् = नद्ध्री   दंश + ष्ट्रन् = दंष्ट्रा

पत् + ष्ट्रन् = पत्त्रम्

३१–अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः (पा०सू०) ऋ, लु, धू, सू, खन्, सह, चर् धातु से इत्र प्रत्यय होता है यथा—

ऋ + इत्र = अरित्रम्   लू + इत्र = लवित्रम् (हंसिया)

खन् + इत्र = खनित्रम् (कुदाल)   सह + इत्र = सहित्रम्

चर + इत्र = चरित्रम्   धू + इत्र = धवित्रम्   सू + इत्र = सवित्रम्

३२–पुवः संज्ञायाम् (सा०सू०) पू धातु से संज्ञा अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है यथा—   पू + इत्र = पवित्रम्

३३–ड्वितः क्त्रिः (क्त्रेर्मम्नित्यम्) (पा० सू०) डु इत्सञ्ज्ञक धातु से क्त्रि प्रत्यय होता है और क्त्रि प्रत्यय के बाद मप् हो जाता है, यथा—

पाकेन निर्वृत्तम् इति—पच् + क्त्रि + मप् – पक्त्रिमम्

३४–ट्वितोऽथुच् (पा० सू०) टु इत्सञ्ज्ञक धातु से अथुच् प्रत्यय होता है, यथा—   टु वेप = वेप् + अथुच् – वेपथुः

अध्याय ६

अव्यय

अव्यय शब्द का अर्थ हैं अ व्यय अर्थात् अ – नहीं व्यय – खर्च अर्थात् जो कभी भी खर्च न हो, सदैव एकसा रहे न घटे न बढ़े। भाव यह कि जिसमें कभी भी विकार न हो सदैव एक सा रहे उसे अव्यय कहते हैं।

सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम्॥ (सि० कौ०)

अर्थात् जिस शब्द का तीनों लिंगों में सभी विभक्तियों में सभी वचनों में एक सा रूप हो परिवर्तित नहीं उसे अव्यय कहते हैं। यथा—

दिवा, चिरम्, यदा, कदा आदि।

अव्यय ५ प्रकार के होते हैं—

१—उपसर्ग
२—क्रियाविशेषण
३—समुच्चय बोधक
४ – मनोविकार सूचक
५—प्रकीर्णक

१—उपसर्ग

उपसर्गाः क्रियायोगे (पा० सू०) प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप ये २२ उपसर्ग हैं जो क्रिया के पहले लगते हैं।

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहार संहारविहारपरिहारवत् ॥

(क्रिया) धातु के पहले उपसर्ग लगाने से धातु का अर्थ बलपूर्वक दूसरा हो जाता है, जैसे –

हृ धातु का अर्थ है चुराना, किन्तु प्र उपसर्ग लगाने से प्रहार (मारना) और आ उपसर्ग लगाने से आहार (भोजन) वि लगाने से विहार (क्रीड़ा) परि लगाने से परिहार (छोड़देना) अर्थ हो जाता है।

विशेष:–उपसर्ग लगाने से कहीं कहीं अकर्मक धातु भी सकर्मक हो जाती है, जैसे –

१—भू धातु अकर्मक है किन्तु अनु उपसर्ग लगाने से सकर्मक हो गया। दु:खमनुभवति।

२—तथा कहीं कहीं उपसर्ग लगाने से धातु का अर्थ ज्यों का त्यों रहता है जैसे:– ददाति - देता है। प्रददाति - देता है।

इस प्रकार धातु के साथ उपसर्ग लगाने से तीन रूप होते हैं –

घात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्त्तते।
तमेव विशिनष्टयन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा॥

अर्थ—कोई उपसर्ग धातु के अर्थ को नष्ट कर देता है कोई उपसर्ग धातु के उसी अर्थ को कहता है, तीसरा धातु के अर्थ को विशेष कर देता है अत: उपसर्ग तीन प्रकार का होता है। जैसे—

जय का अर्थ है जीत किन्तु परा उपसर्ग लगाने से पराजय (हार) अर्थ हो जाता है और वि लगाने से विजय (जीत) अर्थ होता है। एवं कृष् धातु का अर्थ खींचना है किन्तु प्र उपसर्ग लगाने से प्रकृष् (विशेष खींचना अर्थ) हो जाता है।

उपसर्गों के अर्थ तथा प्रयोग

१—प्र प्रकृष्ट, बहुत, अच्छा। जैसे, प्रभवति (समर्थ होता है) नम-झुकना प्रणाम विशेष झुकना (नमस्कार)

२—परा—विरुद्ध, पीछे। जैसे जय (जीत) पराजय (हार)

३—अप—दूर, पृथक्। जैसे, हरति (हरण करना) अपहरति (दूर ले जाता है,

३—अप—दूर, पृथक्। जैसे, हरति (हरण करना) अपहरति (दूर ले जाता है)

४—सम्—साथ-साथ गम्। संगच्छध्वम् (साथ साथ चलो)

५—अनु—पीछे जैसे। अनुगच्छति (पीछे जाता है)

६—अव—दूर, नीचा, जैसे। अवतरति (नीचे उतरता है)

७—निस् } दूर बाहर, जैसे निःसरति (निकलता है)
८—निर् } निर्गच्छति)

९—दुस् } कठिनता, दुःख, बुरा—जैसे दुष्कर (कठिन) दुराचार (बुरा
१०—दुर् } ,, ,, आचरण)

११—वि—विशेष, पृथक् होना। विज्ञान (विशेष ज्ञान), वियोग (पृथक् रहना)

१२—आङ् (आ)—विपरीत (गच्छति जाता है, आगच्छति—आता है)

१३—नि—नीचे (पतति—गिरता है) निपतति—नीचे गिरता है।

१४—अधि—ऊपर (अधिगच्छति—ऊपर जाता है)

१५—अपि—निकट (अपिगच्छति)

१६—अति—अधिक, उल्लंघन (अतिनिद्रा) (अधिक नींद) अतिक्रमण (उल्लंघन करना)

१७—सु—अच्छा (सुकृतम् अच्छी तरह किया, सुकार्य—अच्छा कार्य)

१८—उत्—उत्कृष्ट, ऊपर (उद्गच्छति—ऊपर जाता है)

१९—प्रति—ओर, उलटा (नगरं प्रतिगच्छति—नगर की ओर जाता है)

२०—अभि—ओर, सामने (अभिगच्छति—सामने जाता है)

२१—परि—चारों ओर (परिपालन—चारों ओर से पालन करने वाला)

२२—उप—निकट (उपवसति—निकट रहता है)

विशेषः—कुछ विशिष्ट धातुओं के उपसर्ग के रूप लिखे जा रहे हैं।

१—भू—होना। अनु भू (अनुभव करना) सुखमनुभवन्ति राजानः (राजा सुख का अनुभव करते हैं)

प्र भू (समर्थ होना)—प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे (उ० रा) शुद्धमति छाया ग्रहण में समर्थ है।

परा भू (पराजय) पराभवति शत्रून् राजा—राजा शत्रुओं को पराजित करता है।

सम् भू (पैदा होना, संभव) संभवामि युगे युगे (गीता) युग युग में पैदा होता हूँ।

उद् भू (पैदा होना) उद्भवति सूर्यः पूर्वे (सूर्य पूर्व में उदय हो रहे हैं)

आविः भू (पैदा होना) आविर्भूते शशिनि तमो विलीयते (चन्द्रोदय होनेपर अन्धकार नष्ट होता है)

प्रादुः भू (पैदा होना) प्रादुर्भवति भगवान् विपदि—विपत्ति में भगवान पैदा होते है।

परि भू (तिरस्कार) परिभवति दर्जनान् सज्जनः (सज्जन दुर्जन को तिरस्कार करते हैं)

अभि भू—अभिभवति शत्रून् राजा (राजा शत्रु का तिरस्कार करते हैं)

च्वि प्रत्ययान्त शब्दों से भी अर्थ बदल जाता है—

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।
भवतो शुभागमनेन पवित्रीभूतं मे गृहम्॥

२—क्रमु पादविक्षेपे (चलना)

अति क्रम (पार करना। उल्लंघन करना) यथा यथा यौवनमतिचक्राम (काद०) जैसे जैसे युवावस्था पार किया।

अप क्रम (दूर होना) नगरादपक्रान्तः (मुद्रा०) नगर से दूर हो गया।

उप क्रम (प्रारम्भ करना) स्तोतुं समुपचक्रमे (रघु० पु०) स्तुति करना प्रारम्भ किया।

आ क्रम (आक्रमण करना) आक्रमते राजा (राजा आक्रमण करता है)

निस् क्रम (निकलना) इति निष्क्रान्ताः सर्वे (शकु) इस प्रकार सब चले गये ।

परा क्रम (पराक्रम) पराक्रमते मल्लः (मल्ल पराक्रम करता है)
परि क्रम (परिक्रमा करना, घुमना) परिक्रमति सूर्यः (सूर्य घूमते हैं)
वि क्रम (विक्रम) विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे (विष्णु तीन पग में विक्रम दिखाया)

सं क्रम (संक्रमण करना) संक्रान्ताः ज्योत्स्नाः (चांदनी व्याप्त है)
३—गम्लृ गतौ (जाना) गच्छति

आ गम् (आना) आगच्छति बाला (लड़की आ रही है)
अनु गम् (पीछा करना) मामनुगच्छ (मेरा पीछा कर, अर्थात् अनुसरण कर)

प्रति गम् (लौटना) कदा स प्रतिगमिष्यति (वह कब आयेगा)
प्रति आ गम् प्रत्यागच्छति कुटीरं वटुः (वटु कुटी में लौटता है)
अव गम् (जानना) नावगच्छामि ते मतिम् (तुम्हारी बुद्धि नहीं समझ रहा हूँ)

निर् गम् (निकलना) निर्गच्छति सः (वह निकलता है)
अधि गम् (प्राप्त करना) अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशया परिगृहीतः (चन्द्र भी रात्रि से युक्त महत्व को प्राप्त करता है)
सम् गम् (मिलना) मित्रेण संगच्छते साधुः (साधु मित्र से मिलता है)
उद् गम् (निकला, उड़ना) उद्गच्छति खगः वियति (पक्षी आकाश में उड़ता हैं)

४ —हृ हरणे (चुराना, ले जाना) हरति ।

प्र + हृ (प्रहार करना) कृष्णः कंसं शिरसि प्राहरत् (कृष्ण कंस के शिर पर प्रहार किया)

अप हृ (दूर करना, चुराना) चोरः धनमपहरति (चोर धन चुराता है)
सम्+हृ (रोकना) क्रोधं प्रभो संहर संहरेति (कुमार) प्रभो क्रोध को रोको ।

सम्+हृ (पीछे हटना) नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः (चन्द्रमा चाण्डाल के घर से चाँदनी पीछे नहीं करता)

वि+हृ (विहार करना) विहरति हरिरिह सरसवसन्ते (गीतगो०) वसन्त में भगवान हरि विहार करते हैं।

आ+हृ (लाना) आहर अर्घम् (पूजा की सामग्री लाओ)

उद्+हृ (उद्धार करना) मां तावदुद्धर शुचः (विक्र०) (दयिते मेरे शोक को उद्धार करो)

उद्+आ+हृ (उदाहरण देना) कामिनां मदनदूतिमुदाहरन्ति (कामियों के मदन दूति का उदाहरण देते हैं)

परि+हृ (उपेक्षा करना) स्त्री सन्निकर्षं परिहर्त्तुमिच्छन् (कुमार०) (स्त्री संन्निकर्ष को उपेक्षा करने की इच्छा करता हुआ)

उप+हृ (लाना) फलमिश्रमर्घमुपहर (शाकु० फल युक्त अर्घ लाओ

वि+आ+हृ कहना) व्याहरति

अभि+अव+हृ (खाना सक्तून् पिब धानाः खादतेत्यभ्यवहरति (पा०)

प्रति+गृह (स्वीकार करना) प्रविश्यात्र प्रतिगृह्यतामतिथि-सत्कारः (शाकु०) प्रवेशकर अतिथि सत्कार स्वीकार करें।

५—वह प्रापणे (ले जाना) वहति।

उद्+वह (व्याह करना) नृपः तामुदवहत् कन्याम् (राजा उस कन्या से व्याह किया)

आ+वह (पैदा करना) महदपि राज्यं सुखं नावहति (महान् राज्य भी सुख नहीं देता)

" (धारणकरना) मा रोदीः धैर्यमावह (मार्कण्डेय) मत रोओ, धैर्य धारण करो।

अति+वह (विताना) अतिवहति स कालः (वह समय बीतता है)

प्र+वह (वहना) अनेन मार्गेण गंगा प्रावहत् (इस मार्ग से गंगा बहती थी)

निर्+वह (निर्वाह करना) निर्वहति स एतावता जीविकाम् (वह अपनी जीविका का निर्वाह करता है)

६—लप लपने (बोलना) लपति।

प्र+लप (प्रलाप करना) तत् किमहं प्रलपामि (रा०) (तो मैं क्या प्रलाप करूँ)

आ+लप (बोलना) आलपति स मित्रम् (वह मित्र से बोलता है)

वि लप (विलाप करना) हा पितः क्वासि हे सुभ्रूः बहुएवं विललाप (हे पिता, हे सुन्दरि कहां हो, इस प्रकार बहुत विलाप किया)

सम् लप (वार्तालाप करना) संलापितानां मधुरैर्वचोभिः।

अप लप (छिपाना) सत्यमपलपामि (सत्य छिपाता हूँ)

७—णी प्रापणे (ले जाना) – नयति।

प्र नी (बनाना) वाल्मीकिः रामायणं प्रणिनाय (वाल्मीकि ने रामायण बनाई)

अनु नी (मनाना) अनुनय कुपितां भार्याम् (कुपित भार्या को मनाओ)

अप नी (दूर करना) अपनेष्यामि ते दर्पम् (तुम्हारा अहंकार दूर कर दूँगा)

निर् नी (निर्णय करना) एष मे निर्णयः (यही मेरा निर्णय है)

आ नी (लाना) आनय जलं पूजार्थम् (पूजा के लिए जल लाओ)

अभि नी (अभिनय करना) शकुन्तला लज्जामभिनयति (शकुन्तला लज्जाका अभिनय करती है)

उप नी (लाना) उपनयति मुनिकुमारकेभ्यः फलानि (मुनिकुमारों के लिए फल लाता है)

उप नी (यज्ञोपवीत देना) स शिष्यमुपनयति (वह शिष्य का उपनयन करता है)

परि नी (व्याहकरना) परिणीतवान् नृपः तां कन्याम् (राजा उस कन्या से व्याह किया)

८—षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु (जाना, दुःखी होना) सीदति।

प्र सद् (प्रसन्न होना) प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि नित्यम् (दुर्गा) (हे देवी प्रसन्न होओ, मेरी रक्षा करो)

अव सद (थकना) श्रमेणावसीदति मे चेतः (श्रमसे मेरा चित्त थकता है)

वि सद् (विषाद दुःख) विषीदति सा बाला (वह लड़की दुःखी है)

नि सद् (बैठना) निषेदुषीमासनबन्धधीरः (रघु) (आसन से बैठी हुई)

९—वृतु वर्तने (होना) वर्तते ।

प्र वृत् (प्रवृत्त होना) प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः (शाकु०) (राजा प्रजा के कल्याण के लिए प्रवृत्त हों)

अनु वृत्त (अनुसरण करना) अनुवर्तन्ते साधवः साधुम् (साधु साधु का अनुसरण करते हैं) ।

नि वृत् (रुकना) यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम (गीता) (जहाँ जाकर लोग न रुके (लौटे) वही मेरा धाम है)

प्र वृत्त (आरम्भ) ततः प्रववृते युद्धम् (तव युद्ध प्रारम्भ हुआ)

नि वृत् (लौटना) चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च (चक्र के समान सुख दुःख घूमते रहते हैं)

अभि वृत् (सामने आना) पादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्तन्ते (शाकु०) (वृक्ष सींचने के लिए इधर ही आ रही हैं)

१०—सृ सरणे (जाना) — सरति ।

अप सृ (दूर, हटना) अपसार्यताम् वेत्रलता (पंच) वेत्रलता हटा लो ।

निर सृ (निकलना) निःसरति हिमवतो गंगा (हिमालय से गंगा निकलती है)

अनु सृ (पीछा करना) कथमितोपि मामनुसरति (शाकु०) (क्या यहां भी मेरा पीछा कर रहे हैं ?)

प्र सृ (फैलना) न मे हस्तपादं प्रसरति (शाकु०) मेरे हाथ पैर नहीं फैल रहे हैं ।

अभि सृ (पास जाना) अभिसरति रमणी पतिम् (नारी पति के पास जाती है)

११—ष्ठा गतिनिवृत्तौ (ठहरना) तिष्ठति ।

अनु स्था (करना) मनसापि पापकर्म नानुतिष्ठेत् (मन से भी पाप न करे)

उद् स्था (उठना) उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द (हे गोविन्द उठो उठो)

प्र स्था (जाना) प्रीतः प्रतस्थे मुनिराश्रमाय (मुनि प्रसन्न आश्रम को जाते हैं)

उप स्था (आना) एष ते गुरुरुपास्थितः (ये तुम्हारे गुरु आये हैं)

अधि स्था (रहना) काशीमधितिष्ठति विश्वनाथः—काशी में रहते हैं

१२—आस् (बैठना) आस्ते

अधि आस (बैठना) राजा सिंहासनमध्यास्ते (राजा सिंहासन पर बैठते हैं)

उप् आस् (पूजाकरना) भक्तः शिवमुपास्ते (भक्त शि० की पूजा करता है)

अनु आस (सेवा करना) सरस्वतीभ्यामन्वास्ते (सरस्वती द्वारा सेवा की जारही है)

१३—चर गतौ (चलना) चरति।

आ चर (व्यवहारकरना) प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवादाचरेत् (१६ वर्ष की अवस्था में पुत्र से मित्रवत् व्यवहार करे)

अनु चर (पीछे चलना) सत्यमार्गमनुचरेत् (सत्यमार्ग का अनुसरण करे)

उत् चर (कहना) सः धर्म्ममुच्चरते (वह धर्म कहता है)

परि चर (सेवा करना) भृत्यः स्वामिनं परिचरति (नौकर मालिक की सेवा करता है)

सम् चर (घुमना) वने व्याघ्रः संचरति (वन में व्याघ्र घूमते हैं)

सम् आ चर (करना) उपकारिणि शुद्धमतौ यः समाचरति पापम् (पंच) उपकारी शुद्ध विचार वाले पर जो पाप करता है।

१४—डुकृ करणे करना—करोति ।

अनु कृ नकल करना—काकः कोकिलमनुकरोति (कौवा कोयल की नकल करता है)

अधि कृ अधिकार—अचिरात् शत्रुः राजधानीमधिकरोति (शीघ्र शत्रु राजधानी पर अधिकार करता है)

अप कृ बुराई करना—अपकरोति दुर्जनः सज्जनम् (दुर्जन सज्जन की बुराई करता है)

प्रति कृ प्रतिकार करना—आगतं तु भयं वीक्ष्य प्रतिकुर्याद्यथोचितम् (आये हुये भय को देखकर मनुष्य यथोचित इलाज करे)

परि कृ सजाना—रथो हेमपरिष्कृतः महा० रथ सुवर्ण से सजाया ।

उप कृ उपकार—किं ते भूयः प्रियमुपकरोतु (राजा तुम्हारा क्या प्रिय उपकार करे)

तिरस् कृ अनादर करना—किमर्थं तिरस्करोषि मित्रम् (क्यों मित्र का अनादर करते हो)

नमस् कृ नमस्कार नमस्करोति देवान् सि० कौ० देव का नमस्कार करता है ।

अलं कृ शोभा बढ़ाना—रामचन्द्रः वनमिदं पुनरलंकरिष्यति (राम इस वन को पुनः अलंकृत करेंगे)

आविः कृ बनाना, प्रकट करना—वायुयानमिदं केनाविष्कृतम् (हवाई जहाज किसने बनाया)

च्वि प्रत्ययान्त शब्दों के साथ भी—अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति

१५—ग्रह लेना —गृह्णाति ।

वि ग्रह दण्ड देना—शीघ्रमयं दुष्टवणिक् निगृह्यताम् (शीघ्र इस दुष्ट बनिये को दण्ड दो)

अनु ग्रह (कृपा करना)–गुरो मामनुगृहाण (गुरुजी मेरे पर कपा करो)
नि (ग्रह लड़ाई)–विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली (शिशु०) वह बली भगवान इन्द्र के साथ लड़ाई किया।
आ ग्रह (हठ करना)—एष मे आग्रहः (यही मेरा हठ है)
प्रति ग्रह (स्वीकार)—तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान् (ठीक है, इस प्रकार प्रसन्न स्वीकार किया)
सम् ग्रह (इकट्ठा करना)—संगृह्णाति पुष्पफलादीन्–फूल फल इकट्ठा करता है।

१६—आप् प्राप्तौ (पाना)—आप्नोति।
प्र आप् प्राप्त करना—प्राप्नोति।
वि आप् (व्याप्त होना)–व्याप्नोति धूलिराकाशे–आकाश में धूलि व्याप्त है।
परि आप् (अधिक)—पर्याप्तमिदं भोजनम्–इतना भोजन अधिक है।
सम् आप् समाप्त होना—समाप्ता कथा-कथा समाप्त हो गई।

१७—अर्थं उपयांचायाम् मांगना—
प्र (प्रार्थना करना)—स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते—गीता–स्वर्ग की प्रार्थना करते हैं।
अभि (इच्छा, प्रार्थना) —यदि सा तापसकन्या अभ्यर्थनीया शाकु० क्या वह तपस्विकन्या प्रार्थनीय है।
सम् (समर्थन करना)—समर्थयते स प्रस्तावान्—वह प्रस्तावों का समर्थन करता है।
निर् (निरर्थक)—निरर्थकं ते जीवनम्–तुम्हारा जीवन निरर्थक है।
वि अर्थं व्यर्थम् ते प्रयोजनम्–तुम्हारा प्रयोजन व्यर्थ है।

१८—इण् गतौ जाना—एति।
अव (इ जानना)—अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः रघु० मुझे शंकर का सेवक समझो।

उद् (इ उदय होना)—उदेति सविता ताम्रः पंच० सूर्य रक्त ही उदय होते हैं।

उप इ प्राप्त होना—उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः पंच० उद्योगी पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं जाती है।

अभि इ सामने आना—स स्वामिनमभ्येति—वह मालिकके सामने आया है

अनु इ पीछे आना क्रम से चलना—स शब्दार्थं इवान्वेति—वह शब्द और अर्थ के समान पीछे आता हैं।

अप इ दूर होना—सूर्योदयेन्धकारोपैति—सूर्योदय होने पर अन्धकार दूर होता है।

प्रति इ विश्वास करना—स अधिकं प्रत्येति। वह अधिक विश्वास करता है।

अभि उप प्राप्त होना—व्यतीतकालस्त्वहमभ्युपेतः—समय बीत जावे पर मैं तुम्हारे पास आया।

१९—इक्ष दर्शने देखना—ईक्षते।

अप ईक्ष इच्छा करना—किमपेक्ष्य फलं पयोधरः ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः—किरात—किस फल की इच्छा से सिंह मेघ से प्रार्थना करता है।

उप ईक्ष (उपेक्षा करना) अलसः कर्त्तव्यमुपेक्षते (आलसी कर्तव्य की उपेक्षा करता है)

परि ईक्ष परीक्षा करना—सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावाः—पंच—सब के स्वभाव की हीं परीक्षा होती हैं।

प्रति ईक्ष प्रतीक्षा करना—क्षणं प्रतीक्षस्व—क्षणभर प्रतीक्षा करो।

निर ईक्ष देखना—किं मां निरीक्षसे घटेन कटिस्थितेन—श्रृंगार—क्यों मुझे कमर पर घड़े रखने वाली देख रही हों।

अव ईक्ष रक्षा करना—श्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व—प्रिय—पुत्री की रक्षा करो।

२०-चि चयने चुनना – चिनोति।

उप चि बढ़ना—अधोधः पश्यतः कस्य महिमा नोपचीयते हितो० नीचे देखने से किसकी महिमा नहीं बढ़ती।

अप चि घटना—नापचीयते विद्यादानात्-विद्या दान से नहीं घटती।

सम् चि इकट्ठा करना—रक्षायोगादपि तपः प्रत्यहं संचिनोति शाकु० रक्षा द्वारा प्रतिदिन तप इकट्ठा करते हैं।

निस चि निश्चय करना—निश्चिनोति स गन्तुम्—वह जाने का निश्चय करता है।

२१-ज्ञा अवबोधने जानना—जानाति।

अनु ज्ञा आज्ञा देना—तत् अनुजानीहि मां गमनाय अ० तो मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

प्रति ज्ञा प्रतिज्ञा करना—कथं वृथा प्रतिजानीषे—व्यर्थ में क्यों प्रतिज्ञा करते हो।

अव ज्ञा अनादर करना—अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति रघु० मेरा अनादर करते हो अतः तुम्हें नहीं होगा।

अप ज्ञा इनकार करना—शतमपजानीते सि०कौ० सौ रुपये का इनकार करता है।

२२—दिश दाने देना दिशति।

उप दिश उपदेश देना—उपदिशतु मां धर्मशास्त्रम्—मुझे धर्मशास्त्र का उपदेश दे।

आ दिश आज्ञा देना—गुरुः शिष्याय आदिशति—गुरु शिष्य को आदेश देता है।

सम् दिश सन्देश देना—किं सन्दिशति स्वामी—स्वामी क्या सन्देश दे रहे हैं।

निर दिश बताना—निर्दिशति गुरुः सन्मार्गम्—गुरु सन्मार्ग बताता है।

२३-पत्लृ पतने गिरना—पतति।

आ पत् आपड़ना—अहो कष्टमापतितम्—अहो कष्ट आ पड़ा।

उद् पत् उड़ना—प्रभाते पक्षिण उत्पतन्ति–प्रातः चिड़ियां उड़ती हैं।

प्र नि पत् नमस्कार—प्रणिपत्य स गतः—प्रणाम कर वह चला गया।

नि पत् गिरना–निपतन्ति कुसुमायुघस्य बाणाः—कामदेव के बाण गिर रहे हैं।

२४–धा धारणपोषणयोः धारण करना—दधाति।

अभि धा कहना—एवं तावदभिधास्ये शाकु० तो ऐसा कहूंगा।

अप धा ढकना—अपदधाति द्वारम्—द्वार बन्द करता है।

अव धा ध्यान देना—अवदधाति स क्रीडने बहुशः–वह खेलने में बहुत ध्यान देता है।

सम् धा मेल करना—किं संधास्यति रावणः रामेण–क्या रावण राम से मेल करेगा ?

वि धा करना—सहसा न विदधीत क्रियाम्–किरात सहसा कोई काम न करे।

परि धा पहनना–प्रयाति बाला परिधाय वस्त्रम्–लड़की साड़ी पहनकर जा रही है।

नि धा रखना–निधाय हृदि विश्वेशम् तर्क० हृदयमें शंकर को रखकर।

२५—पद गतौ गमन पद्यते।

प्र पद प्राप्त होना—बाल्यात्पर वयः प्रपेदे कुमा० लड़कपन के बाद की युवावस्था प्राप्त हुई।

उद् पद् उत्पन्न होना—उत्पद्यते बीजादंकुरः–बीज से अंकुर उत्पन्न होता है।

उप पद् योग्य होना–नैतत्त्वय्युपपद्यते–गीता यह तुम्हारे योग्य नहीं।

सम् पद् होना–साधोः शिक्षागुणाय सम्पद्यते नासाधोः पंच० साधु की शिक्षा गुण के लिए होती है असाधु की नहीं।

वि पद् विपत्ति—विपद्यते सा नारी–एक स्त्री दुखी है।

२६—दा दाने देना ददाति ।

आ दा लेना—आदाय पुत्रं सुमुखी प्रयाति—पुत्र लेकर सुन्दरी जा रही हैं ।

२७—विश प्रवेशने प्रवेश करना विशति ।

प्र विश प्रवेश करना—ततः प्रविशति सशिष्यो वैखानसः शाकु० तब शिष्य के साथ वैखानस प्रवेश करते हैं ।

उप विश बैठना—इति सर्वे उपविशन्ति शाकु० इस प्रकार सब बैठ जाते हैं ।

अभि नि विश चलना—अभिनिविशते सन्मार्गम्—सन्मार्ग पर चलते हैं ।

२८—वद कथने कहना—वदति ।

अनु वद अनुवाद करना—मोक्षमूलरः वेदमनुवदति—मैक्समुलर वेद का अनुवाद करते हैं ।

प्रति वद उत्तर देना—प्रत्यवादीत् स सभायाम्—वह सभामें उत्तर दिया ।

वि वद विवाद करना—विवदन्ते पण्डिताः—धर्मविषये पण्डित धर्म पर विवाद करते हैं ।

परि वद निन्दा—एष परिवादः शाकु० यह लोक निन्दा है ।

अप वद गाली देना—लोकापवादो बलवान् मतो मे रघु० लोक निन्दा बलवान है, यह मेरा विचार है ।

२९—मन

अव मन अनादर—अवमन्यते दुर्जनः सज्जनम्—दुर्जन सज्जन का अपमान करता है ।

अनु मन स्वीकृति—अनुमतिर्देया गमनाय—जाने की स्वीकृति दीजिये ।

सम् मन आदर—सम्माननीया गुरवः—गुरु का सम्मान करना चाहिये ।

३०—रमु क्रीडायाम् खेलना रमते

वि रम रुकना, वन्द होना—विरम विरम सुन्दरि सुन्दरि—सुन्दरी रुको, रुको ।

उप रम मरना—न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति मालती० वह नहीं मरा है जिसका प्रिय याद करता है ।

३१—मन्त्र सलाह देना—मन्त्रयते ।

अभि मन्त्र संस्कार करना—जलेनाभिमन्त्रयते—जल से सींचते हैं ।

आ मन्त्र विदा होना—वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये शाकु० वन ज्योत्स्ना से विदा ले लूँ।

आ मन्त्र बुलाना—आमन्त्रयत गुरून् विवाहावसरे—विवाह के समय गुरुजनों को बुलावे।

नि मन्त्र न्योता रखना—निमन्त्रयते ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को न्योता देता है।

३२—क्षिप फेंकना क्षिपति।

सम् क्षिप् संक्षिप्त करना—संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा मेघ० बड़ी रात्रि क्षण के समान कैसे बीतेगी।

उत् क्षिप् ऊपर फेंकना—बलिमाकाश उत्क्षिपेत्—मनु—आकाश में बलि फेंके।

आ क्षिप् आक्षेप करना—अरे रे राधागर्भभारभूत किमेवमाक्षिपसि ? वेणी० ये राधा के गर्भ भारभूत क्यों ऐसा आक्षेप कर रहे हो।

नि क्षिप् रखना—अस्मिन्जने मां निक्षिपता किमिदं कृतम् शाकु० इस जन पर मुझे रखते हुए क्योंकर किया।

३३—तृ तरणे तैरना—तरति।

अव तृ उतारना—सागरं वर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति शाकु० समुद्र को छोड़कर महानदी और कहाँ उतरती हैं।

वि तृ देना—वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्याम्—उत्तर० गुरु बुद्धिमान को विद्या देता है।

उत् तृ पार करना—रामो गंगामुदतरत्—राम गंगा को पार किये।

निस् तृ निस्तार—भगवन्तं बिना न कोपि निस्तारयिता—भगवान के बिना कोई निस्तार करनेवाला नहीं।

दुस् तृ कठिन, अपारदुस्तर एष मार्गः—यह मार्ग कठिन है।

३४—स्मृ स्मरणे याद करना स्मरति।

वि स्मृ भूलना—हला शकुन्तले एनां विस्मृतासि शकु० सखि शकुन्तले इसे भूल गई।

२—क्रिया विशेषण अव्यय

क्रिया में भिन्नता या विशेषता लाने वाले शब्द को क्रिया विशेषण कहते हैं इसके कई भेद होते हैं, जैसे:—

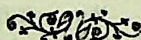
१—अव्यय में पठति शब्द—

१	स्वः	स्वर्ग	२६	सामि	आधा या निन्दित
२	अन्तः	मध्य	२७	शम्	सुख, शान्ति
३	प्रातः	प्रातः काल	२८	सहसा	एकसाथ, अचानक
४	पुनः	फिर	२९	विना	छोड़कर
५	उच्चैः	ऊंचे	३०	नाना	अनेक
६	नीचैः	नीचेः	३१	स्वस्ति	कल्याण
७	शनैः	धीरे	३२	स्वधा	पितरों का दान विषय
८	ऋते	विना	३३	अलम्	पूर्ण, निवारण, भूषण
९	पृथक्	अलग	३४	अन्यत्	दूसरा
१०	युगपत्	एक काल में	३५	विहायसा	आकाश
११	आरात्	दूर या समीप	३६	दोषा	रात्रि
१२	ह्यः	बीता हुआ कल	३७	मृषा	झूठ
१३	श्वः	आनेवाला कल	३८	मुधा	व्यर्थ
१४	दिवा	दिन	३९	पुरा	पहले
१५	सायम्	शाम	४०	मिथः	आपस में
१६	चिरम्	बहुतकाल तक	४१	प्रायः	बहुधा
१७	मनाक्	थोड़ा	४२	मुहुः	बारंबार
१८	ईषत्	थोड़ा	४३	अभीक्ष्णम्	निरंतर
१९	जोषम्	चुप या सुख	४४	नमः	नमस्कार
२०	तूष्णीम्	मौन, शान्त	४५	मा	निषेध
२१	बहिः	बाहर	४६	नक्तम्	रात्रि
२२	समया	समीप, पास	४७	वत्	सादृश्य
२३	निकषा	समीप, पास	४८	तिरस्	टेढ़ा या छिपना
२४	स्वयम्	आपही	४९	अन्तरा	विना
२५	वृथा	व्यर्थ	५०	अन्तरेण	विना

२—सर्वनाम शब्दों से बने हुए—

१	यथा	जिस प्रकार	१६	यतः	जहां से
२	तथा	उस प्रकार	१७	ततः	वहां, वहां से
३	अन्यथा	अन्य प्रकार	१८	कुतः	कहां से
४	इत्थम्	इस प्रकार	१९	सर्वतः	चारों ओर से
५	कथम्	किस प्रकार	२०	उभयतः	दोनों ओर से
६	यदा	जब	२१	अन्यतः	दूसरी प्रकार से
७	कदा	कब	२२	पूर्वतः	पूर्व से
८	सदा	हमेशा	२३	दक्षिणतः	दक्षिण से
९	सर्वदा	हमेशा	२४	पश्चिमतः	पश्चिम से
१०	तदा	तब	२५	उत्तरतः	उत्तर से
११	एकदा	एक समय	२६	स्वतः	अपने आप
१२	अधुना	इस समय	२७	अतः	इस कारण से
१३	एतर्हि	,,	२८	एकतः	एक ओर से
१४	इदानीम्	,,	२९	त्वत्तः	तुम से
१५	तदानीम्	उस समय	३०	मत्तः	मुझ से
				परितः	चारों ओर
				अभितः	दोनों ओर

३१	यत्र	जहां	३७	सर्वत्र	सब जगह
३२	अत्र	यहां	३८	उभयत्र	दोनों जगह
३३	तत्र	वहां	३९	अन्यत्र	दूसरी जगह
३४	कुत्र	कहां	४०	पूर्वत्र	पहले
३५	क्व	,,	४१	एकत्र	एक जगह
३६	इह	यहां			



३—संख्या वाचक शब्दों से बने हुये—

१	द्विः	दो बार	१०	द्विकृत्वः	दोबार
२	त्रिः	तीन वार	११	त्रिः कृत्वः	तीन वार
३	चतुः	चार वार	१२	चतुः कृत्वः	चार वार
४	द्विधा	दो प्रकार	१३	बहुशः	अधिक
५	त्रिधा	तीन प्रकार	१४	अल्पशः	थोड़ा
६	चतुर्धा	चार प्रकार	१५	आदितः	आदि से
७	पंचधा	पांच प्रकार	१६	मध्यतः	बीच से
८	षोढ़ा षड्धा	छ प्रकार	१७	पृष्ठतः	पीछे से
९	पंचकृत्वः	पंच वार	१८	वर्णतः	रंग से

४—संज्ञा शब्दों से बने हुए—

१	भस्मसात्	जलना	४	पत्रवत्	पत्र के समान
२	अग्निसात्	जलना	५	ब्राह्मणवत	ब्राह्मण की तरह
३	भूमिसात्	धूलि में मिलना	६	नित्यत्	हमेशा।

३—समुच्चय बोधक अव्यय

समुच्चयबोधक अव्ययके लिए हिन्दीमें और 'आता' हैं जैसे दिन और रात, राम और लक्ष्मण तथा संस्कृत में समुच्चय बोधक अव्यय के लिये च आदि आते हैं, जैसे रामो लक्ष्मणश्च, दिवाच रात्रिश्च। इसके अतिरिक्त च आदि—

१	च	समूह बोधक	२	वा	अथवा
३	तु	तो	४	किन्तु	लेकिन
५	हि	क्योंकि	६	चेत्	यदि
७	नोचेत्	नहीं तो	८	यदा	जब
९	तदा	तब	१०	यत्तु	जो
११	यावत्	जब तक जितना	१२	तावत्	तब तक उतना
१३	यर्हि	जब	१४	तर्हि	तब
१५	यद्यपि	यदि	१६	तदपि	तो

४—मनोविकार सूचक अव्यय

जिसके द्वारा मन के विकार लक्षित हों उसे मनोविकार सूचक अव्यय कहते हैं, जैसे—अ

१	हन्त	खेद	२	ओह	आश्चर्य
३	हा	अफसोस	४	आः	हाय
५	अपि	भो	६	धिक्	धिक्कार
७	किम्	क्या	८	अरे	सम्बोधन
९	रे	सम्बोधन	१०	ओ	"
११	अपि	"	१२	इ	विस्मय, निन्दा
१३	मा	निषेधवाचक	१४	ओ	सम्बोधन
१५	ए	सम्बोधन	१६	आह	"
१७	आह	"			

५—प्रकीर्णक अव्यय

जैसे—१ क्त्वा त्वा प्रत्ययान्त। कृत्वा, गत्वा, बुद्ध्वा, दृष्ट्वा आदि।

२—तुमुन् तुम् प्रत्ययान्त। कर्त्तुम्, गन्तुम्, द्रष्टुम् आदि।

३—णमुल् अम् प्रत्ययान्त। स्मारम्, स्मारम्, ध्यायम्, ध्यायम्।

४—ए, ऐ से होनेवाले प्रत्ययान्त। जीवसे, पिबध्यै आदि।

५—तोसुन् तोस् प्रत्ययान्त। उदेतोः।

६—कसुन् (अस्) प्रत्ययान्त। विसृपः।

२—तथा अव्ययीभाव समास निष्पन्नशब्द भी अव्यय होते हैं, जैसे—

उपशरदम्, अधिहरि, यथाशक्ति आदि

३—इसके अतिरिक्त कुछ और भी शब्द हैं जैसे—

१	एव	निश्चयार्थक, केवल	२	एवम्	ऐसा	३	नूनम्	निश्चय
४	शश्वत्	निरन्तर	५	भूयः	अधिक	६	अथ	अनन्तर
७	कच्चित्	क्या	८	नाहि	नहीं	९	आम्	हां
१०	किल	निश्चय, अवश्य	११	खलु	निश्चय, अवश्य			
१२	सुष्ठु	अच्छा	१३	सह, सार्द्धम्, समम्	साथ			

परिशिष्ट—१

शब्दरूप

राम शब्द (पुंल्लिग)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
रामः	रामौ	रामाः	रामम्	रामौ	रामान्
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
रामात्	,,	रामेभ्यः	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
रामे	रामयोः	रामेषु	हे राम !	हे रामौ !	हे रामाः !

इकारान्त पुंलिङ्ग शब्द—हरि (विष्णु)

हरिः	हरी	हरयः	हरिम्	हरी	हरीन्
हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
हरौ	हर्योः	हरिषु	हे हरे !	हे हरी !	हे हरयः !

इकारान्त पुंलिङ्ग शब्द—सखि (मित्र)

सखा	सखायौ	सखायः	सखायम्	सखायौ	सखीन्
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सख्यौ	सख्योः	सखिषु	हे सखे !	हे सखायौ !	हे सखायः !

उकारान्त पुंल्लिग शब्द—गुरु

गुरुः	गुरू	गुरवः	गुरुम्	गुरू	गुरून्
गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
गुरोः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः	गुरोः	गुर्वोः	गुरूणाम्
गुरौ	गुर्वोः	गुरुषु	हे गुरो !	हे गुरू !	हे गुरवः !

ओकारान्त पुंल्लिग शब्द—गो (गाय या बैल)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
गौः	गावौ	गावः	गाम्	गावौ	गाः
गवा	गोभ्याम्	गोभिः	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः	गोः	गवोः	गवाम्
गवि	गवोः	गोषु	हे गौः !	हे गावौ !	हे गावः

इन्नन्त पुंल्लिग शब्द—करिन् (हाथी)

करी	करिणौ	करिणः	करिणम्	करिणौ	करिणः
करिणा	करिभ्याम्	करिभिः	करिणे	करिभ्याम्	करिभ्यः
करिणः	करिभ्याम्	करिभ्यः	करिणः	करिणोः	करिणाम्
करिणि	करिणोः	करिषु	हे करिन्	हे करिणौ	हे करिणः ।

सकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द—(विद्वान)

विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु	हे विद्वन् !	हे विद्वांसौ !	हे विद्वांसः !

सकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्द-चन्द्रमस (चन्द्रमा)

चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
चन्द्रमसः	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः	चन्द्रमसः	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमःसु-स्सु	हे चन्द्रमः !	हे चन्द्रमसौ !	हे चन्द्रमसः !

अन्नंत पुंल्लिङ्ग शब्द युवन् (युवा)

युवा	युवानौ	युवानः	युवानम्	युवानौ	यूनः
यूना	युवभ्याम्	युवभिः	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः	यूनः	यूनोः	यूनाम्
यूनि	यूनोः	युवसु	हे युवन् !	हे युवानौ !	हे युवानः ।

पुंलिङ्ग शब्द महत् (बड़ा)।

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
महान्	महान्तौ	महान्तः	महान्तम्	महान्तौ	महतः
महता	महद्भ्याम्	महद्भिः	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः	महतः	महतोः	महताम्
महति	महतोः	महत्सु	हे महन् !	हे महान्तौ !	हे महान्तः ।

अन्नन्त पुंल्लिग शब्द राजन् (राजा)

राजा	राजानौ	राजानः	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
राज्ञि	राज्ञोः	राजसु	हे राजन्	हे राजानौ !	हे राजानः !

आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—रमा (लक्ष्मी)

रमा	रमे	रमाः	रमाम्	रमे	रमाः
रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
रमायाः	रमाभ्याम्	रमाभ्यः	रमायाः	रमयोः	रमाणाम्
रमायाम्	रमयोः	रमासु	हे रमे !	हे रमे !	हे रमाः !

इकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—मति (बुद्धि)

मतिः	मती	मतयः	मतिम्	मती	मतीः
मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
मत्याम् मतौ	मत्योः	मतिषु	हे मते !	हे मती !	हे मतयः ।

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—नदी (नदी)

नदी	नद्यौ	नद्यः	नदीम्	नद्यौ	नदीः
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
नद्याम्	नद्योः	नदीषु	हे नदि !	हे नद्यौ !	हे नद्यः !

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—लक्ष्मी (लक्ष्मी)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः
लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभिः	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः	लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ !	हे लक्ष्म्यः !

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द--स्त्री (स्त्री)

स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु	हे स्त्रि !	हे स्त्रियौ !	हे स्त्रियः !

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द--श्री (लक्ष्मी)

श्रीः	श्रियौः	श्रियः	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्यात्	श्रीभ्यः
श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः	श्रियाः, श्रियः	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
श्रियाम्, श्रियि	श्रियोः	श्रीषु	हे श्रीः !	हे श्रियौ !	हे श्रियः

ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द—वधू (बहू)

वधूः	वध्वौ	वध्वः	वधूम्	वध्वौ	वधूः
वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
वध्वाः	वधूभ्यः	वधूभ्यः	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु	हे वधु !	हे वध्वौ !	हे वध्वः !

चकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द वाच् (वाणी)

वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः	वाचम्	वाचौ	वाचः
वाचा	वाग्याम्	वाग्भिः	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः	वाचः	वाचोः	वाचाम्
वाचि	वाचोः	वाक्षु	हे वाक्, हे वाग् !	हे वाचौ !	हे वाचः !

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द गृह (घर)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
गृहम्	गृहे	गृहाणि	गृहम्	गृहे	गृहाणि
गृहेण	गृहाभ्याम्	गृहैः	गृहाय	गृहाभ्याम्	गृहेभ्यः
गृहात्	गृहाभ्याम्	गृहेभ्यः	गृहस्य	गृहयोः	गृहाणाम्
गृहे	गृहयोः	गृहेषु	हे गृह !	हे गृहे !	हे गृहाणि !

इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द—वारि (जल)

वारि	वारिणी	वारीणि	वारि	वारिणी	वारीणि
वारिणा	वारिभ्याम्	वारीभिः	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
वारिणि	वारिणोः	वारिषु	हे वारि !	हे वारिणी !	हे वारीणि !

असन्त नपुंसकलिङ्ग शब्द पयस् (जल-दूध)

पयः	पयसी	पयांसि	पयः	पयसी	पयांसि
पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः	पयसः	पयसोः	पयसाम्
पयसि	पयसोः	पयस्सु,	हे पयः !	हे पयसी !	हे पयांसि !

अन्नन्त नपुंसकलिङ्ग शब्द नामन् (नाम)

नाम	नाम्नी	नामानि	नाम	नाम्नी	नामानि
नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः	नाम्ने	नामभ्यां	नामभ्यः
नाम्नः	नामभ्याम्	नामभ्यः	नाम्नः	नाम्नोः	नाम्नाम्
नाम्नि	नाम्नोः	नामसु	हे नाम	हे नाम्नी	हे नामानि

षकारान्त नपुंसकलिंग शब्द—धनुष (धनुष)

धनुः	धनुषी	धनूंषि	धनुः	धनुषी	धनूंषि
धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
धनुषि	धनुषोः	धनुष्षु	हे धनुः !	हे धनुषी !	हे धनूंषि !

सर्वनाम

पुंल्लिङ्ग सर्व—(सब)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सर्वः	सर्वौ	सर्वे	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वै	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु ।			

नपुंसकलिङ्ग

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः ।			

आगे पुंल्लिङ्ग के समान ही रूप होते हैं ।

स्त्रीलिङ्ग

सर्वा	सर्वे	सर्वाः	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु ।			

'युष्मद्'

त्वम्	युवाम्	यूयम्	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वां	युष्मभ्यं, वः
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	तव, ते	युवयोः, वां	युष्माकं, वः
त्वयि	युवयोः	युष्मासु			

अस्मद्

अहम्	आवाम्	वयम्	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
मयि	आवयोः	अस्मासु			

पुंल्लिङ्ग तद् (वह)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सः	तौ	ते	तम्	तौ	तान्
तेन	ताभ्याम्	तैः	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः	तस्य	तयोः	तेषाम्
तस्मिन्	तयोः	तेषु			

नपुंसकलिंग

तत्	ते	तानि	तत्	ते	तानि
तेन	ताभ्याम्	तैः			

इत्यादि आगे पुंल्लिङ्ग के समान ही रूप होते हैं ।

सा	ते	ताः	ताम्	ते	ताः
तया	ताभ्याम्	ताभिः	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
तस्याः	ताभ्यां	ताभ्यः	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
तस्याः	तयोः	तासाम्	तस्याम्	तयोः	तासु

पुंल्लिङ्ग यद् (जो)

यः	यौ	ये	यम्	यौ	यान्
येन	याभ्याम्	यैः	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः	यस्य	ययोः	येषाम्
यस्मिन्	ययोः	येषु ।			

नपुंसकलिङ्ग

यत्, यद्	ये	यानि	यत्, यद्	ये	यानि
येन	याभ्याम्	यैः ।			

आगे के रूप पुंल्लिङ्ग के समान ही होते हैं ।

स्त्रीलिङ्ग

या	ये	याः	याम्	ये	याः
यया	याभ्याम्	याभिः	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः	यस्याः	ययोः	यासाम्
यस्याम्	ययोः	यासु ।			

पुंल्लिङ्ग-इदम् (यह)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
अयम्	इमौ	इमे	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु			

नपुंसकलिङ्ग

इदम्	इमे	इमानि	इदम्, एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि
अनेन एनेन	आभ्याम्	एभिः			

आगे सभी रूप पुंल्लिङ्ग के समान ही होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग

इयम्	इमे	इमाः	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमाः, एनाः
अनया एनया	आभ्याम्	आभिः	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः	अस्याः	अनयोः एनयोः	आसाम्
अस्याम्	अनयोः एनयोः	आसु			

पुंल्लिङ्ग किम् (कौन)

कः	कौ	के	कम्	कौ	कान्
केन	काभ्याम्	कैः	कस्मै	काभ्यां	केभ्यः
कस्मात्	काभ्यां	केभ्यः	कस्य	कयोः	केषाम्
कस्मिन्	कयोः	केषु			

नपुंसकलिङ्ग

किम्	के	कानि	किम्	के	कानि
केन	काभ्याम्	कैः			

शेष सभी रूप पुंल्लिङ्ग के समान ही होते हैं।

स्त्रीलिङ्ग

का	के	काः	काम्	के	काः
कया	काभ्याम्	काभिः	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः	कस्याः	कयोः	कासाम्
कस्याम्	कयोः	कासु			

एक (एक के रूप तीनों लिङ्गों में केवल एकवचन में होते हैं)

पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
एकः	एकम्	एका	एकम्	एकम्	एकाम्
एकेन	एकेन	एकया	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः	एकस्य	एकस्य	एकस्याः
एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्			

द्वि (द्वि के रूप केवल द्विवचन में ही होते हैं)

पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
द्वौ	द्वे	द्वौ	द्वे
द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः	द्वयोः

त्रि तीन (त्रि के रूप तीनों लिङ्गों में केवल बहुवचन में होते हैं)

त्रयः	त्रीणि	तिस्रः	त्रीन्	त्रीणि	तिस्रः
त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्
त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु			

चतुर—चार (चतुर शब्द के रूप भी प्रत्येक लिङ्ग में केवल बहुवचन में ही होते हैं)।

चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः	चतुरः	चत्वारि	चतस्रः
चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु			

('पञ्चन्' तथा इसके आगे के सभी रूप तीनों लिङ्गों में समान
तथा केवल बहुवचन में ही होते हैं)

पञ्चन्	षट्	सप्तन्	पञ्च	षट्	सप्त
पञ्च	षट्	सप्त	पञ्चभिः	षड्भिः	सप्तभिः
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः
पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानाम्	पञ्चसु	षट्सु	सप्तसु

अष्टन्, नवन् तथा दशन् शब्दों के रूप

अष्टन्	नवन्	दशन्	अष्ट	नव	दश
अष्ट	नव	दश	अष्टभिः	नवभिः	दशभिः
अष्टभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः	अष्टभ्यः-अष्टाभ्यः	नवभ्यः	दशभ्यः
अष्टानाम्	नवानाम्	दशानाम्	अष्टसु	नवसु	दशसु

●

परिशिष्ट—२

क्रिया (Verb)

१—संस्कृत में क्रिया के स्थान पर 'धातु' का प्रयोग किया जाता है। धातु के द्वारा सभी शब्दों और क्रियाओं का निर्माण होता है। यहाँ तक कि संज्ञा शब्द भी धातुओं से ही बनते हैं। संस्कृत में लगभग १००० धातुएं है। इनका विभाजन दस प्रकरणों में किया गया है वे निम्नलिखित हैं :—

१—भ्वादि, २—अदादि, ३—जुहोत्यादि, ४—दिवादि, ५—स्वादि, ६—तुदादि, ७—रुधादि, ८—तनादि, ९—क्र्यादि, १०—चुरादि।

(भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिः दिवादिः स्वादिरेव च। तुदादिश्च रुधादिश्च तनादि क्रि चुरादयः) इन प्रकरणों को गण भी कहते हैं, अतएव दशगणी नाम से भी इसकी प्रख्याति है। धातुओं के रूप गणानुसार ही आगे बतायेंगे।

२—ये धातुएं दो प्रकार की होती हैं, एक अकर्मक दूसरी सकर्मक अर्थात् जो कर्म के साथ हो उसे सकर्मक और जो कर्म के साथ न हों उन्हें अकर्मक कहते हैं। इसका विस्तृत विवेचन आगे बतायेंगे।

३—संस्कृत में काल Tense दस होते हैं। इन्हें लकार भी कहते हैं, उनके नाम निम्नलिखित हैं :—

१—लट् (वर्तमानकाल) Present Tense
२—लिट् (परोक्ष भूत) Perfect Tense
३—लुट् (अनद्यतनभविष्य) First Future
४—लृट् (सामान्य भविष्य) Simple Future
५—लोट् (आज्ञा) Imperative mood
६—लङ् (अनद्यतन भूत) Imperfect Tense

७—विधिलिङ् (विधि) Potential Mood

८—आशीर्लिङ् (आशीः) Benedictive

९—लुङ् (सामान्य भूत) Aorist

१०—लृङ् (क्रियातिपत्ति) Conditional Mood

विशेष :—लेट् लकार का प्रयोग वेदों में होता है अतः यहां नहीं लिखा गया। लिङ् दो प्रकार का होता है १—विधिलिङ्, २—आशीर्लिङ्, इस प्रकार पुनः १० लकार हो जाते हैं।

(लट् वर्तमाने लेट्वेदे भूते लुङ् लङ् लिटस्तथा। विध्याशिषोस्तु लिङ् लोटौ, लुट् लृट् लृ च भविष्यति ॥

४—इन लकारों के स्थान पर निम्नलिखित १८ आदेश होते हैं। इन आदेशों को दो विभागों में विभक्त करते हैं, ९ आदेश तो परस्मैपद में और ९ आत्मनेपद में।

परस्मैपद			आत्मनेपद		
एकवचन	द्विवचन	वहुवचन	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
ति	तस्	झि	त	आताम्	झ
सि	थस्	थ	थास्	आताम्	ध्वम्
मि	वस्	मस्	इ	वहि	महि

५—आत्मनेपद और परस्मैपद का विस्तृत विवेचन आगे किया जायगा यहाँ संक्षिप्त विवेचन है।

(अ) अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (पा० सू०) जिस धातु का अनुदात्त इत्संज्ञक हो अथवा उपदेश में ङ् इत्संज्ञक हो वे धातुएँ आत्मनेपदी होती हैं, यथा :—

एध वृद्धौ यह अनुदात्तेत् धातु है। ङित धातु-शीङ्, स्वप्ने, दूङ्, परितापे डीङ् विहायसागतौ आदि।

(इ) स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले (पा० सू०) क्रिया का फल कर्त्ता में आने पर जिसका स्वरित इत्संज्ञक हो अथवा ञ् इत्संज्ञक जिसका हो वह धातु

आत्मनेपदी होती है और क्रिया का फल कर्ता में न होवे पर परस्मैपदी होती है। यथा :—

श्री सेवायाम्, भृ भरणे, डुकृ करणे यजम् देवपूजायाम।

(उ) शेषात्कर्तरिपरस्मैपदम् (पा० सू०) आत्मनेपद के लक्षणों से रहित धातु परस्मैपदी होती है, यथा :—

भू सत्तायाम्, अर्च पूजायाम् आदि।

६—कुछ धातुएँ सेट् (इट् सहित) कुछ अनिट् (इट् रहित) कुछ वेट् (इट् विकल्पसे) होती हैं। जिनका विवरण निम्नलिखित है। जिन धातुओं में प्रत्यय और धातु के पूर्व इ लग जाता है उसे सेट् कहते हैं। जहाँ इ न लगे उसे अनिट् कहते हैं। और जहाँ विकल्प से इट् हो उसे वेट् कहते हैं।

भ्वादि प्रकरण

(१) 'भू' होना परस्मैपदी

लट् (वर्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
भवति	भवतः	भवन्ति	भवतु	भवताम्	भवन्तु
भवसि	भवथः	भवथ	भव	भवतम्	भवत
भवामि	भवावः	भवामः	भवानि	भवाव	भवाम

लङ् (अनद्यतन भूत)			लिङ् (विधि)		
अभवत्	अभवताम्	अभवन्	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
अभवः	अभवतम्	अभवत	भवेः	भवेतम्	भवेत
अभवम्	अभवाव	अभवाम	भवेयम्	भवेव	भवेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति	भविता	भवितारौ	भवितारः
भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)			लृङ् (हेतु हेतुमद् भविष्यत्)		
भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्

भूया:	भूयास्तम्	भूयास्त	अभविष्य:	अभविष्यतम्	अभविष्यत
भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

लिट् (परोक्षभूत) **लुङ् (सामान्य भूत)**

बभूव	बभूवतु:	बभुवु:	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
बभूविथ	बभूवथु:	बभूव	अभू:	अभूतम्	अभूत
बभूव	बभूविव	बभूविम	अभूवम्	अभूव	अभूम

(३) 'पठ्'—पढना परस्मैपदी

लट् (वर्त्तमान) **लोट् (आज्ञा)**

पठति	पठत:	पठन्ति	पठतु	पठताम्	पठन्तु
पठसि	पठथ:	पठथ	पठ	पठतम्	पठत
पठामि	पठाव:	पठाम:	पठानि,	पठाव:	पठाम:

लङ् (अनद्यतन भूत) **लिङ् (विधि)**

अपठत्	अपठताम्	अपठन्	पठेत्	पठेताम्	पठेयु:
अपठ:	अपठतम्	अपठत	पठे:	पठेतम्	पठेत
अपठम्	अपठाव	अपठाम	पठेयम्	पठेव	पठेम

लृट् (भविष्यत्) **लुट् अनद्यतन भविष्यत्**

पठिष्यति	पठिष्यत:	पठिष्यन्ति	पठिता	पठितारौ	पठितार:
पठिष्यसि	पठिष्यथ:	पठिष्यथ	पठितासि	पठितास्थ:	पठितास्थ
पठिष्यामि	पठिष्याव:	पठिष्याम:	पठितास्मि	पठितास्व:	पठितास्म:

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद) **लृङ् (हेतु हेतुमद् भविष्यत्)**

पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासु:	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
पठ्या:	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त	अपठिष्य:	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

लिट् (परोक्षभूत) **लुङ् (सामान्यभूत)**

पपाठ	पेठतु:	पेठु:	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषु:
पेठिथ	पेठथु:	पेठ	अपाठी:	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

(४) 'रक्ष'–रक्षा करना परस्मैपदी

लट् (वर्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
रक्षति	रक्षतः	रक्षन्ति	रक्षतु	रक्षताम्	रक्षन्तु
रक्षसि	रक्षथः	रक्षथ	रक्ष	रक्षतम्	रक्षत
रक्षामि	रक्षावः	रक्षामः	रक्षाणि	रक्षाव	रक्षाम

लङ् (अनद्यतन भूत)			लिङ् (विधि)		
अरक्षत्	अरक्षताम्	अरक्षन्	रक्षेत्	रक्षेताम्	रक्षेयुः
अरक्षः	अरक्षतम्	अरक्षत	रक्षेः	रक्षेतम्	रक्षेत
अरक्षम्	अरक्षाव	अरक्षाम	रक्षेयम्	रक्षेव	रक्षेम

लृट् भविष्यत्			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
रक्षिष्यति	रक्षिष्यतः	रक्षिष्यन्ति	रक्षिता	रक्षितारौ	रक्षितारः
रक्षिष्यसि	रक्षिष्यथः	रक्षिष्यथ	रक्षितासि	रक्षितास्थः	रक्षितास्थ
रक्षिष्यामि	रक्षिष्यावः	रक्षिष्यामः	रक्षितास्मि	रक्षितास्वः	रक्षितास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)			लृङ् (हेतुहेतुमद् भविष्यत्)		
रक्ष्यात्	रक्ष्यास्ताम्	रक्ष्यासुः	अरक्षिष्यत्	अरक्षिष्यताम्	अरक्षिष्यन्
रक्ष्याः	रक्ष्यास्तम्	रक्ष्यास्त	अरक्षिष्यः	अरक्षिष्यतम्	अरक्षिष्यत
रक्ष्यासम्	रक्ष्यास्व	रक्ष्यास्म	अरक्षिष्यम्	अरक्षिष्याव	अरक्षिष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
ररक्ष	ररक्षतुः	ररक्षुः	अरक्षीत्	अरक्षिष्टाम्	अरक्षिषुः
ररक्षिथ	ररक्षथुः	ररक्ष	अरक्षीः	अरक्षिष्टम्	अरक्षिष्ट
ररक्ष	ररक्षिव	ररक्षिम	अरक्षिषम्	अरक्षिष्व	अरक्षिष्म

(५) 'वद'—बोलना परस्मैपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
वदति	वदतः	वदन्ति	वदतु	वदताम्	वदन्तु
वदसि	वदथः	वदथ	वद	वदतम्	वदत
वदामि	वदावः	वदामः	वदानि	वदाव	वदाम

लङ् (अनद्यतन भूत)			लिङ् (विधि)		
अवदत्	अवदताम्	अवदन्	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
अवदः	अवदतम्	अवदत	वदेः	वदेतम्	वदेत
अवदम्	अवदाव	अवदाम	वदेयम्	वदेव	वदेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति	वदिता	वदितारौ	वदितारः
वदिष्यसि	वदिष्यथः	वदिष्यथ	वदितासि	वदितास्थः	वदितास्थ
वदिष्यामि	वदिष्यावः	वदिष्यामः	वदितास्मि	वदितास्वः	वदितास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)			लृङ् (हेतु हेतुमद् भविष्यत्)		
उद्यात्	उद्यास्तम्	उद्यासुः	अवदिष्यत्	अवदिष्यताम्	अवदिष्यन्
उद्याः	उद्यास्तम्	उद्यास्त	अवदिष्यः	अवदिष्यतम्	अवदिष्यत
उद्यासम्	उद्यास्व	उद्यास्म	अवदिष्यम्	अवदिष्याव	अवदिष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्य भूत)		
उवाद	ऊदतुः	ऊदुः	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
उवदिथ	ऊदथुः	ऊद	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उवाद	ऊदिव	ऊदिम	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

(६) 'नम्'—प्रणाम करना परस्मैपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
नमति	नमतः	नमन्ति	नमतु	नमताम्	नमन्तु
नमसि	नमथः	नमथ	नम	नमतम्	नमत
नमामि	नमावः	नमामः	नमानि	नमाव	नमाम

लङ् (अनद्यतनभूत)			लिङ् (विधि)		
अनमत्	अनमताम्	अनमन्	नमेत्	नमेताम्	नमेयुः
अनमः	अनमतम्	अनमत	नमेः	नमेतम्	नमेत
अनमम्	अनमाव	अनमाम	नमेयम्	नमेव	नमेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति	नन्ता	नन्तारौ	नन्तारः
नंस्यसि	नंस्यथः	नंस्यथ	नन्तासि	नन्तास्थः	नन्तास्थ
नंस्यामि	नंस्यावः	नंस्यामः	नन्तास्मि	नन्तास्वः	नन्तास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
नम्यात्	नम्यास्ताम्	नम्यासुः	अनंस्यत्	अनंस्यताम्	अनंस्यन्
नम्याः	नम्यास्तम्	नम्यास्त	अनंस्यः	अनंस्यतम्	अनंस्यत
नम्यासम्	नम्यास्व	नम्यास्म	अनंस्यम्	अनंस्याव	अनंस्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (समान्य भूत)		
ननाम	नेमतुः	नेमुः	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः
नेमिथ	नेमथुः	नेम	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
ननाम	नेमिव	नेमिम	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

(७) 'गम्'—जाना परस्मैपदी

लोट् (आज्ञा)			लङ् (अनद्यतनभूत)		
गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

लट् (वर्तमान)			विधिलिङ्		
अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति	गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ	गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः	गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)			लृङ् (हेतहेतुमद्)		
गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
गम्याः	गम्यास्तम्	गम्यास्त	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
जगाम	जग्मतुः	जग्मुः	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
जगमिथ, जगन्थ	जग्मथुः	जग्म	अगमः	अगमतम्	अगमत
जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम	अगमम्	अगमाव	अगमाम

(८) 'दृश्'— देखना परस्मैपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

लङ् (अनद्यतन भूत)			विधिलिङ्		
अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ	द्रष्टासि	द्रष्टास्थः	द्रष्टास्थ
द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः	द्रष्टास्मि	द्रष्टास्वः	द्रष्टास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
दृश्याः	दृश्यास्तम्	दृश्यास्त	अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
दृश्यासम्	दृश्यास्व	दृश्यास्म	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्य भूत)		
ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः	अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश	अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
ददर्श	ददर्शिव	ददर्शिम	अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम

अथवा

अद्राक्षीत्	अद्राष्टाम्	अद्राक्षुः	अद्राक्षीः	अद्राष्टम्	अद्राष्ट
अद्राक्षम्	अद्राक्ष्व	अद्राक्ष्म			

(९) पा पाने (पीना)

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
पिबति	पिबतः	पिबन्ति	पिबतु	पिबताम्	पिबन्तु
पिबसि	पिबथः	पिबथ	पिब	पिबतम्	पिबत
पिबामि	पिबावः	पिबामः	पिबानि	पिबाव	पिबाम

लङ् (अनद्यतन भूत)			विधिलिङ्		
अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
अपिबः	अपिबतम्	अपिबत	पिबेः	पिबेतम्	पिबेत
अपिबम्	अपिबाव	अपिबाव	पिबेयम्	पिबेव	पिबेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति	पाता	पातारौ	पातारः
पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ	पातासि	पातास्थः	पातास्थ
पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः	पातास्मि	पातास्वः	पातास्मः

आशीर्लिङ् (आशीर्वाद)			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
पेयाः	पेयास्तम्	पेयास्त	अपास्यः	अपास्यतम्	अपास्यत
पेयासम्	पेयास्व	पेयास्म	अपास्यम्	अपास्याव	अपास्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्य भूत)		
पपौ	पपतुः	पपुः	अपात्	अपाताम्	अपुः
पपिथ, पपाथ	पपथुः	पप	अपाः	अपातम्	अपाम
पपौ	पपिव	पपिम	अपाम्	अपाव	अपाम

(१०) ष्ठा गतिनिवृत्तौ (रुकना)

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति	स्थाता	स्थातारौ	स्थातारः
स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ	स्थातासि	स्थतास्थः	स्थातास्थ
स्थास्यामि	स्थ स्यावः	स्थास्यामः	स्थातास्मि	स्थातास्वः	स्थातास्मः

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
स्थेयाः	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्म	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः	अस्थात्	अस्थाम्	अस्थुः
तस्थिथ,तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

(११) 'स्मृ' (याद करना) परस्मैपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति	स्मरतु	स्मरताम्	स्मरन्तु
स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ	स्मर	स्मरतम्	स्मरत
स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः	स्मराणि	स्मराव	स्मराम

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्	स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः
अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत	स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत
अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम	स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति	स्मर्ता	स्मर्तारौ	स्मर्तारः
स्मरिष्यसि	स्मरिष्यथः	स्मरिष्यथ	स्मर्तासि	स्मर्तास्थः	स्मर्तास्थ
स्मरिष्यामि	स्मरिष्यावः	स्मरिष्यामः	स्मर्तास्मि	स्मर्तास्वः	स्मर्तास्मः

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
स्मर्यात्	स्मर्यास्ताम्	स्मर्यासुः	अस्मरिष्यत्	अस्मरिष्यताम्	अस्मरिष्यन्
स्मर्याः	स्मर्यास्तम्	स्मर्यास्त	अस्मरिष्यः	अस्मरिष्यतम्	अस्मरिष्यत
स्मर्यासम्	स्मर्यास्व	स्मर्यास्म	अस्मरिष्यम्	अस्मरिष्याव	अस्मरिष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
सस्मार	सस्मरतुः	सस्मरुः	अस्मार्षीत्	अस्मार्ष्टाम्	अस्मार्षुः
सस्मर्थ	सस्मरथुः	सस्मर	अस्मार्षीः	अस्मार्ष्टम्	अस्मार्ष्ट
सस्मार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम	अस्मार्षम्	अस्मार्ष्व	अस्मार्ष्म

(१२) 'जि' (जीतना) परस्मैपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
जयति	जयतः	जयन्ति	जयतु	जयताम्	जयन्तु
जयसि	जयथः	जयथ	जय	जयतम्	जयत
जयामि	जयावः	जयामः	जयानि	जयाव	जयाम

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अजयत्	अजयताम्	अजयन्	जयेत्	जयेताम्	जयेयुः
अजयः	अजयतम्	अजयत	जयेः	जयेतम्	जयेत
अजयम्	अजयाव	अजयाम	जयेयम्	जयेव	जयेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
जेष्यति	जेष्यन्ति	जेष्यन्ति	जेता	जेतारौ	जेतारः
जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ	जेतासि	जेतास्थः	जेतास्थ
जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः	जेतास्मि	जेतास्वः	जेतास्मः

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
जीयाः	जीयास्तम्	जीयास्त	अजेष्यः	अजेष्यतम्	अजेष्यत
जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म	अजेष्यम्	अजेष्याव	अजेष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्य भूत)		
जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

(१३) 'श्रु' (सुनना) परस्मैपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
शृणोमि	शृणुवः	शृणुमः	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

लङ् (अनद्यतन भूत)			विधिलिङ्		
अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
अशृणवम्	अशृणुव	अशृणुम	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः
श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ	श्रोतासि	श्रोतास्थः	श्रोतास्थ
श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः	श्रोतास्मि	श्रोतास्वः	श्रोतास्मः

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्
श्रूयाः	श्रूयास्तम्	श्रूयास्त	अश्रोष्यः	अश्रोष्यतम्	अश्रोष्यत
श्रूयासम्	श्रूयास्व	श्रूयास्म	अश्रोष्यम्	अश्रोष्याव	अश्रोष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुविव	शुश्रुविम	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म

(१४) 'सेव' (सेवा करना) आत्मनेपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
सेवते	सेवेते	सेवन्ते	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
सेवे	सेवावहे	सेवामहे	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लङ् (अनद्यतन भूत)			विधिलिङ्		
असेवत	असेवेताम्	असेवन्त	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
असेवे	असेवावहि	असेवामहि	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते	सेविता	सेवितारौ	सेवितारः
सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे	सेवितासे	सेवितासाथे	सेविताध्वे
सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे	सेविताहे	सेवितास्वहे	सेवितास्महे

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
सेविषीष्ठाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीध्वम्	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
सेविषीय	सेविषीवहि	सेविषीमहि	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
सिषेविषे	सिषेवाथे	सिषेविढ्वे	असेविष्ठाः	असेविषाथाम्	असेविढ्वम्
सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

(१५) 'लभ्' (प्राप्त करना) आत्मनेपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
लभते	लभेते	लभन्ते	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
लभसे	लभेथे	लभध्वे	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
लभे	लभावहे	लभामहे	लभै	लभावहै	लभामहै

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अलभत	अलभेताम्	अलभन्त	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
अलभे	अलभावहि	अलभामहि	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (सामान्य भविष्यत्)		
लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते	लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः
लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
लप्सीष्ठाः	लप्सीयास्थाम्	लप्सीध्वम्	अलप्स्यथाः	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
लप्सीय	लप्सीवहि	लप्सीमहि	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
लेभे	लेभाते	लेभिरे	अलब्ध	अलप्साताम्	अलप्सत
लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे	अलब्धाः	अलप्साथाम्	अलब्ध्वम्
लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे	अलप्सि	अलप्स्वहि	अलप्स्महि

(१६) 'सह' (सहना) आत्मनेपदी

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
सहते	सहेते	सहन्ते	सहताम्	सहेताम्	सहन्ताम्
सहसे	सहेथे	सहध्वे	सहस्व	सहेथाम्	सहध्वम्
सहे	सहावहे	सहामहे	सहै	सहावहै	सहामहै

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
असहत	असहेताम्	असहन्त	सहेत	सहेयाताम्	सहेरन्
असहथाः	असहेथाम्	असहध्वम्	सहेथाः	सहेयाथाम्	सहेध्वम्
असहे	असहावहि	असहामहि	सहेय	सहेवहि	सहेमहि

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
सहिष्यते	सहिष्येते	सहिष्यन्ते	सहिता	सहितारौ	सहितारः
सहिष्यसे	सहिष्येथे	सहिष्यध्वे	सहितासे	सहितासाथे	सहिताध्वे
सहिष्ये	सहिष्यावहे	सहिष्यामहे	सहिताहे	सहितास्वहे	सहितास्महे

अथवा (लुट्)

सोढा	सोढारौ	सोढारः	सोढासे	सोढासाथे	सोढाध्वे
सोढाहे	सोढास्वहे	सोढास्महे			

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
सहिषीष्ट	सहिषीयास्ताम्	सहिषीरन्	असहिष्यत	असहिष्येताम्	असहिष्यन्त
सहिषीष्ठाः	सहिषीयास्थाम्	सहिषीध्वम्	असहिष्यथाः	असहिष्येथाम्	असहिष्यध्वम्
सहिषीय	सहिषीवहि	सहिषीमहि	असहिष्ये	असहिष्यावहि	असहिष्यामहि

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
सेहे	सेहाते	सेहिरे	असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत
सेहिषे	सेहाथे	सेहिध्वे	असहिष्ठाः	असहिषाथाम्	असहिध्वम्
सेहे	सेहिवहे	सेहिमहे	असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्महि

(१७) मुद् (प्रसन्न होना , लट्

मोदते	मोदेते	मोदन्ते
मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे
मोदे	मोदावहे	मोदामहे

लोट् (आज्ञा)

मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्
मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्
मोदै	मोदावहै	मोदामहै

लङ् (अनद्यतनभूत)

अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त
अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्
अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि

विधिलिङ्

मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्
मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्
मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि

लृट् (भविष्यत्)

मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते
मोदिष्यसे	मोदिष्येथे	मोदिष्यध्वे
मोदिष्ये	मोदिष्यावहे	मोदिष्यामहे

लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)

मोदिता	मोदितारौ	मोदितारः
मोदितासे	मोदितासाथे	मोदिताध्वे
मोदिताहे	मोदितास्वहे	मोदितास्महे

आशीर्लिङ्

मोदिषीष्ट	मोदिषीयास्ताम्	मोदिषीरन्
मोदिषीष्ठाः	मोदिषीयास्थाम्	मोदिषीध्वम्
मोदिषीय	मोदिषीवहि	मोदिषीमहि

लृङ् (हेतुहेतुमद्)

अमोदिष्यत	अमोदिष्येताम्	अमोदिष्यन्त
अमोदिष्यथाः	अमोदिष्येथाम्	अमोदिष्यध्वम्
अमोदिष्ये	अमोदिष्यावहि	अमोदिष्यामहि

लिट् (परोक्षभूत)

मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे
मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे
मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे

लुङ् (सामान्यभूत)

अमोदिष्ट	अमोदिषाताम्	अमोदिषत
अमोदिष्ठाः	अमोदिषाथाम्	अमोदिध्वम्
अमोदिषि	अमोदिष्वहि	अमोदिष्महि

(१८) 'नी' (ले जाना) परस्मैपद

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
नयति	नयतः	नयन्ति	नयतु	नयताम्	नयन्तु
नयसि	नयथः	नयथ	नय	नयतम्	नयत
नयामि	नयावः	नयामः	नयानि	नयाव	नयाम

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अनयत्	अनयताम्	अनयन्	नयेत्	नयेताम्	नयेयुः
अनयः	अनयतम्	अनयत	नयेः	नयेतम्	नयेत
अनयम्	अनयाव	अनयाम	नयेयम्	नयेव	नयेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतनभविष्यत्)		
नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति	नेता	नेतारौ	नेतारः
नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ	नेतासि	नेतास्थः	नेतास्थ
नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः	नेतास्मि	नेतास्वः	नेतास्मः

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः	अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
नीयाः	नीयास्तम्	नीयास्त	अनेष्यः	अनेष्यतम्	अनेष्यत
नीयासम्	नीयास्व	नीयास्म	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
निनाय	निन्यतुः	निन्युः	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः
निनीयथ, निनेथ	निन्यथुः	निन्य	अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट
निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म

आत्मनेपद

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
नयते	नयेते	नयन्ते	नयताम्	नयेताम्	नयन्ताम्
नयसे	नयेथे	नयध्वे	नयस्व	नयेथाम्	नयध्वम्
नये	नयावहे	नयामहे	नयै	नयावहै	नयामहै

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अनयत	अनयेताम्	अनयन्त	नयेत	नयेयाताम्	नयेरन्
अनयथाः	अनयेथाम्	अनयध्वम्	नयेथाः	नयेयाथाम्	नयेध्वम्
अनये	अनयावहि	अनयामहि	नयेय	नयेवहि	नयेमहि

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते	नेता	नेतारौ	नेतारः
नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
नेषीष्ट	नेषीयाताम्	नेषीरन्	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीढ्वम्	अनेष्यथाः	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
निन्ये	निन्याते	निन्यिरे	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

(१९) 'हृ' (हरना) उभयपदी परस्मैपद

लट् (वर्त्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
हरति	हरतः	हरन्ति	हरतु	हरताम्	हरन्तु
हरसि	हरथः	हरथ	हर	हरतम्	हरत
हरामि	हरावः	हरामः	हराणि	हराव	हराम

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अहरत्	अहरताम्	अहरन्	हरेत्	हरेताम्	हरेयुः
अहरः	अहरतम्	अहरत	हरेः	हरेतम्	हरेत
अहरम्	अहराव	अहराम	हरेयम्	हरेव	हरेम

लृट् (भविष्यत्) **लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)**

हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति	हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
हरिष्यसि	हरिष्यथः	हरिष्यथ	हर्तासि	हर्तास्थः	हर्तास्थ
हरिष्यामि	हरिष्यावः	हरिष्यामः	हर्तास्मि	हर्तास्वः	हर्तास्मः

आशीर्लिङ् **लृङ् (हेतुहेतुमद्)**

ह्रियात्	ह्रियास्ताम्	ह्रियासुः	अहरिष्यत्	अहरिष्यताम्	अहरिष्य
ह्रियाः	ह्रियास्तम्	ह्रियास्त	अहरिष्यः	अहरिष्यतम्	अहरिष्यत
ह्रियासम्	ह्रियास्व	ह्रियास्म	अहरिष्यम्	अहरिष्याव	अहरिष्याम

लिट् (परोक्षभूत) **लुङ् (सामान्यभूत)**

जहार	जह्रतुः	जह्रुः	अहार्षीत्	अहार्ष्टाम्	अहार्षुः
जहर्थ	जह्रथुः	जह्र	अहार्षीः	अहार्ष्टम्	अहार्ष्ट
जहार, जहर	जह्रिव	जह्रिम	अहार्षम्	अहार्ष्व	अहार्ष्म

आत्मनेपद

लट् (वर्तमान) **लोट् (आज्ञा)**

हरते	हरेते	हरन्ते	हरताम्	हरेताम्	हरन्ताम्
हरसे	हरेथे	हरध्वे	हरस्व	हरेथाम्	हरध्वम्
हरे	हरावहे	हरामहे	हरै	हरावहै	हरामहै

लङ् (अनद्यतनभूत) **विधिलिङ्**

अहरत	अहरेताम्	अहरन्त	हरेत	हरेयाताम्	हरेरन्
अहरथाः	अहरेथाम्	अहरध्वम्	हरेथाः	हरेयाथाम्	हरेध्वम्
अहरे	अहरावहि	अहरामहि	हरेय	हरेवहि	हरेमहि

लृट् (भविष्यत्) **लुट् (अनद्यतनभविष्यत्)**

हरिष्यते	हरिष्येते	हरिष्यन्ते	हर्ता	हर्तारौ	हर्तारः
हरिष्यसे	हरिष्येथे	हरिष्यध्वे	हर्तासे	हर्तासाथे	हर्ताध्वे
हरिष्ये	हरिष्यावहे	हरिष्यामहे	हर्ताहे	हर्तास्वहे	हर्तास्महे

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
हृषीष्ट	हृषीयास्ताम्	हृषीरन्	अहरिष्यत	अहरिष्येताम्	अहरिष्यन्त
हृषीष्ठाः	हृषीयास्थाम्	हृषीढ्वम्	अहरिष्यथाः	अहरिष्येथाम्	अहरिष्यध्वम्
हृषीय	हृषीवहि	हृषीमहि	अहरिष्ये	अहरिष्यावहि	अहरिष्यामहि

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् सामान्यभूत		
जह्रे	जह्राते	जह्रिरे	अहृत	अहृषाताम्	अहृषन्त
जह्रिषे	जह्राथे	जह्रिध्वे	अहृथाः	अहृषाथाम्	अहृढ्वम्
जह्रे	जह्रिवहे	जह्रिमहे	अहृषि	अहृष्वहि	अहृष्महि

(२०) 'याच्' (माँगना) उभयपदी परस्मैपद

लट् (वर्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
याचति	याचतः	याचन्ति	याचतु	याचताम्	याचन्तु
याचसि	याचथः	याचथ	याच	याचतम्	याचत
याचामि	याचावः	याचामः	याचानि	याचाव	याचाम

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अयाचत्	अयाचताम्	अयाचन्	याचेत्	याचेताम्	याचेयुः
अयाचः	अयाचतम्	अयाचत	याचेः	याचेतम्	याचेत
अयाचम्	अयाचाव	अयाचाम	याचेयम्	याचेव	याचेम

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति	याचिता	याचितारौ	याचितारः
याचिष्यसि	याचिष्यथः	याचिष्यथ	याचितासि	याचितास्थः	याचितास्थ
याचिष्यामि	याचिष्यावः	याचिष्यामः	याचितास्मि	याचितास्वः	याचितास्मः

आशीर्लिङ्			लृङ् (हेतुहेतुमद्)		
याच्यात्	याच्यास्ताम्	याच्यासुः	अयाचिष्यत्	अयाचिष्यताम्	अयाचिष्यन्
याच्याः	याच्यास्तम्	याच्यास्त	अयाचिष्यः	अयाचिष्यतम्	अयाचिष्यत
याच्यासम्	याच्यास्व	याच्यास्म	अयाचिष्यम्	अयाचिष्याव	अयाचिष्याम

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
ययाच	ययाचतुः	ययाचुः	अयाचीत्	अयाचिष्टाम्	अयाचिषुः
ययाचिथ	ययाचथुः	ययाच	अयाचीः	अयाचिष्टम्	अयाचिष्ट
ययाच	ययाचिव	ययाचिम	अयाचिषम्	अयाचिष्व	अयाचिष्म

आत्मनेपद

लट् (वर्तमान)			लोट् (आज्ञा)		
याचते	याचेते	याचन्ते	याचताम्	याचेताम्	याचन्ताम्
याचसे	याचेथे	याचध्वे	याचस्व	याचेथाम्	याचध्वम्
याचे	याचावहे	याचामहे	याचै	याचावहै	याचामहै

लङ् (अनद्यतनभूत)			विधिलिङ्		
अयाचत	अयाचेताम्	अयाचन्त	याचेत	याचेयाताम्	याचेरन्
अयाचथाः	अयाचेथाम्	अयाचध्वम्	याचेथाः	याचेयाथाम्	याचेध्वम्
अयाचे	अयाचावहि	अयाचामहि	याचेय	याचेवहि	याचेमहि

लृट् (भविष्यत्)			लुट् (अनद्यतन भविष्यत्)		
याचिष्यते	याचिष्येते	याचिष्यन्ते	याचिता	याचितारौ	याचितारः
याचिष्यसे	याचिष्येथे	याचिष्यध्वे	याचितासे	याचितासाथे	याचिताध्वे
याचिष्ये	याचिष्यावहे	याचिष्यामहे	याचिताहे	याचितास्वहे	याचितास्महे

आशीर्लिङ्

याचिषीष्ट	याचिषीयास्ताम्	याचिषीरन्
याचिषीष्ठाः	याचिषीयास्ताम्	याचिषीध्वम्
याचिषीय	याचिषीवहि	याचिषीमहि

लृङ् (हेतुहेतुमद्)

अयाचिष्यत	अयाचिष्येताम्	अयाचिष्यन्त
अयाचिष्यथाः	अयाचिष्येथाम्	अयाचिष्यध्वम्
अयाचिष्ये	अयाचिष्यावहि	अयाचिष्यामहि

लिट् (परोक्षभूत)			लुङ् (सामान्यभूत)		
ययाचे	ययाचाते	ययाचिरे	अयाचिष्ट	अयाचिषाताम्	अयाचिषत
ययाचिषे	ययाचाथे	ययाचिध्वे	अयाचिष्ठाः	अयाचिषाथाम्	अयाचिध्वम्
ययाचे	ययाचिवहे	ययाचिमहे	अयाचिषि	अयाचिष्वहि	अयाचिष्महि

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए कुछ धातुओं के रूप दे दिये गये हैं। इसी प्रकार अन्य धातुओं के भी कुछ रूप याद कर लेने चाहिए। उनमें कुछ प्रमुख परस्मैपदी धातुएँ ये हैं—

अद् = खाना, अस् = होना, स्वप् = सोना, हन् = मारना
नृत = नाचना, आप् = पाना, शक् = सकना, इष् = चाहना

आस् = बैठना, शी = सोना, लेटना आदि आत्मनेपदी धातुओं के साथ-साथ—

दा = देना, धा = धारण करना, भुज् = पालना, कृ = करना,
क्री = खरीदना, ग्रह् = ग्रहण करना, ज्ञा = जानना, कथ् = कहना,

इत्यादि उभयपदी धातुओं के रूप जान लेने से सामान्यतः धातु रूपों की कठिनाई समाप्त हो जायगी।

परिशिष्ट–३

अनुवाद के कुछ आवश्यक नियम

अनु + वाद—पीछे + वाद—कहना अर्थात् पीछे कहना, एक बात को दूसरे शब्दों में कहना। इस प्रकार एक भाषा का अनुवाद उसी भाषा में भी हो सकता है, परन्तु आजकल एक भाषा के शब्दों को दूसरी भाषा में बदलने को अनुवाद कहते हैं, जैसे हिन्दी का संस्कृत या अंग्रेजी या अन्य किसी भाषा में एवं अंग्रेजी भाषा का हिन्दी आदि भाषाओं में। यहाँ पर हिन्दी भाषा से संस्कृत भाषा में अनुवाद की विधि बताई जा रही है।

१—संस्कृत भाषा के अनुवाद में क्रिया कर्ता के अनुसार होती है, यदि कर्त्ता एक वचन है तो क्रिया भी एक वचन की होगी, यदि कर्त्ता प्रथम पुरुष है तो क्रिया भी प्रथम पुरुष की होगी। इसी प्रकार कर्त्ता द्विवचन हो तो क्रिया भी द्विवचन तथा कर्त्ता बहुवचन तो क्रिया भी बहुवचन की होती है।

यथा :—रामः पठति, रामौ पठतः, रामाः पठन्ति।

यहाँ रामः प्रथम पुरुष एक वचन कर्त्ता है अतः 'पठति' क्रिया भी प्रथम पुरुष का एक वचन ही हुई। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना।

२—अंग्रेजी भाषा में कर्त्ता पहले उसके बाद क्रिया तब कर्म आदि लगाये जाते हैं किन्तु संस्कृत के अनुवाद में अपनी इच्छा पर निर्भर है, चाहे क्रिया पहले लगाइये अथवा चाहे कर्त्ता या कर्म पहले लगाइये, यथा :—

रामः पुस्तकं पठति

पुस्तकं पठति रामः

पठति पुस्तकं रामः।

३—संस्कृत के अनुवाद में शब्दों के बाद (सामने) विभक्तियाँ लग जाती

हैं। ये विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं :—(१) सुबन्त और (२) तिङन्त। सुप् अर्थात् सु, औ, जस्, आदि कारक की विभक्तियाँ जिसके सामने लगें, वे सुबन्त कहलाते हैं, जैसे :—रामः, रामौ, रामाः, हरिः आदि। तथा 'ति' तः' 'अन्ति' आदि विभक्तियाँ जिसके सामने लगे, वे तिङन्त कहलाते हैं, जैसे :—पठति, पठतः, पठन्ति, अपठत् आदि।

४—हिन्दी आदि भाषाओं में वचन दो होते हैं, एक वचन और बहुवचन, किन्तु संस्कृत में वचन तीन होते हैं—

(१) एकवचन अर्थात् जिससे एक व्यक्ति या वस्तु का बोध हो—(Singular number)

(२) द्विवचन अर्थात् जिससे दो व्यक्ति या वस्तु का बोध हो—(Dual number)

(३) बहुवचन अर्थात् जिससे दो से अधिक व्यक्ति या वस्तु का बोध हों- Plural number लिंग (GENDER)

५—हिन्दी भाषा में लिंग दो होते हैं, स्त्रीलिंग और पुलिंग। अंग्रेजी भाषा में लिंग चार होते हैं, जैसे—

जैसे—

१– Maseuline gender (पुलिङ्ग)

२—Feminine gender (स्त्रीलिंग)

३—Neutor gender (नपुंसक लिंग)

४—(Common gender (उभयलिंग)

किन्तु संस्कृत में लिंग तीन होते हैं—

१—पुलिङ्ग

२—स्त्रीलिङ्ग

३—नपुंसक लिङ्ग

६—हिन्दी भाषा में कारक (Case) आठ होते हैं किन्तु संस्कृत में सात कारक होते हैं, यथा—

कारक (cases)	विभक्तियां	चिन्ह (Case Signs)
कर्ता	प्रथमा (Nominative Case)	ने
कर्म	द्वितीया (Objective Case)	को (to)
करण	तृतीया (Instrumental Case)	से के,द्वारा by with
सम्प्रदान	चतुर्थी (Dative Case)	के लिये, को (for)
अपादान	पञ्चमी (Ablative Case)	से (From)
सम्बन्ध	षष्ठी (Genetive Case) (Possessive Case)	का, के, की रा, रे, री ना, ने नी (of)
अधिकरण	सप्तमी (Locative Case)	में,पै,पर in, on etc
सम्बोधन	षष्ठी (Vocative Case)	हे, अरे, रे, भो,

७—सर्वनाम की महत्ता प्रत्येक भाषा में है और प्रत्येक भाषा में इसका उपयोग बड़े महत्व के साथ किया जाता है।

I	उत्तम पुरुष	(First peerson)	मैं,हम,(अस्मद)	Me,I,We,My
II	मध्यम पुरुष	(Second person)	तू,तुम,यु (युष्मद्)	Your,You, Thou
III	प्रथम या अन्य पुरुष	(Third person)	शेष सभी शब्द	He, They. (All the words)

८—हिन्दी आदि भाषाओं के समान क्रियाओं के समान क्रियायें संस्कृत में भी होती हैं किन्तु हिन्दी में 'पढ़ता है' 'पढ़ती है' पुरुष और स्त्री के लिये अलग अलग प्रयोग किया जाता है, किन्तु संस्कृत में दोनों लिङ्गों के अनुवाद 'पठति' ही होगा, जैसे—(सः पठति । सा पठति)

संस्कृत में दस लकारों में क्रिया का प्रयोग होता है—

१— वर्तमान काल	लट्	Present Tense
२—परोक्षभूत	लिट्	Past Perfect Tense
३—अनद्यनभूत	लङ्	Past Imperfect Tense
४—सामान्य भूत	लुङ्	Orist
५—अनद्यतन भविष्य	लुट्	First Future
६—सामान्य भविष्य	लृट्	Simple Future
७—आज्ञा	लोट्	Imperative Mood
८—विधि	विधिलिङ्	Potential Mood
९—आशीः	आशीर्लिङ्	Bendictive
१०–हेतु हेतुमद्भूत	लृङ्	Conditional Mood

विशेष—संस्कृत में वर्तमान काल एक ही प्रकार का होता है, जैसे राम पढ़ता है, राम पढ़ रहा है, राम दिन में पढ़ रहा है, राम दस बजे से पढ़ रहा है। इस सब क्रियाओं का अनुवाद 'पठति' ही होगा, किन्तु अंग्रेजी में इन चारों के लिये अलग-अलग अनुवाद करने पड़ते हैं, जैसे—

१—वह पढ़ता है	सः पठति	He reads
२—वह पढ़ती है	सा पठति	She reads
३—वह पढ़ रहा है	सः पठति	He is reading
४—वह पढ़ रही है	सा पठति	She is reading
५—वह दो घण्टे से पढ़ रहा है		He has been reading for two Hours.

आगरा विश्वविद्यालय

बी. ए. परीक्षा (संस्कृत) द्वितीय प्रश्न-पत्र

१९५६

प्राचीन काल में कोई बनिया गधे पर भार लादकर व्यापार करता फिरता था। वह आने जाने के स्थान पर गदहे की पीठ से भार उतार कर उसे सिंह चर्म से ढक कर धान और जौ के खेतों में छोड़ देता था। खेत के रखवाले उसे सिंह समझकर उसके पास नहीं जा सकते थे। एक दिन उस बनिए ने एक गाँव के समीप निवास किया और उस गर्दभ को सिंह चर्म से ढक कर जौ के खेत में छोड़ दिया। खेत का रखवाला उसे सिंह समझकर उसके पास न जा सका। उसने घर जाकर उसको सूचना दी। ग्राम-वासी आयुधों को लेकर शंख और भेरी बजाते हुए आए। इससे गर्दभ डर कर अपने स्वर में चिल्लाने लगा। गाँव वालों ने उसे गर्दभ जानकर लाठियों के प्रहारों से मार डाला।

१९५७

कोई बकरी घास चरने के लिए बाहर जा रही थी। बाहर जाते हुए उसने अपने बच्चे से कहा—"बेटा, तुम दरवाजे को बन्द कर लो और जब तक मैं न आऊँ, तब तक किसी के लिए भी दरवाजा न खोलना।" कोई भेड़िया समीप ही यह बात सुन रहा था। वह बकरी के जाते ही थोड़ी देर में वहाँ आया और बकरी के स्वर में बोला—"बेटा, द्वार खोलो।" बकरी का बच्चा बोला —"अरे जा, तेरा स्वर ही बकरी जैसा है, आकार से तो तू भेड़िया ही है।"

१९५८

किसी सिंह ने पर्वत की अधित्यका में चरता हुआ एक श्वेत मेमना देखा। सिंह ने उस स्थल को अपने लिए अगम्य जानकर उससे कहा—"अरे भाई, तुम्हें ऐसे ऊँचे नीचे स्थान पर सारे दिन घूम कर क्या सुख मिलता होगा? यदि किसी दिन उछलते हुए पैर फिसल कर गिर पड़े तो प्राणों से हाथ धो बैठोगे। इसलिए अच्छा है कि तुम नीचे आ जाओ और हरी घास के मैदान में कोमल हरी घास खाओ।" मेमने ने कहा—"तुम्हारी बात बिल्कुल सच है, परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम भूखे हो। मैं तुम्हारे स्थान पर आकर अपने प्राणों को संशय में नहीं डालूँगा।"

१९५९

एक प्यासे कौवे को पीने के लिए पानी न मिला। बहुत देर तक ढूंढने के पश्चात् उसे एक पानी का घड़ा मिला, परन्तु जब वह घड़े के पास पहुँचा तो उसने उसमें पानी बहुत नीचे पाया। वह बहुत दुःखी हुआ और पानी लेने का बहुत प्रयत्न किया पर पानी न ले सका। उसने घड़े को तोड़ने का उद्योग किया, परन्तु वैसा न कर सका। उसने घड़े को लुढ़काना चाहा पर यह भी न कर सका। तब उसने पत्थर के टुकड़े उठाए और उन्हें एक-एक करके घड़े में डाला। अन्त में पानी घड़े के ऊपर तक आ गया और कौवे ने उसे आराम से पी लिया। संकल्प से सब काम पूरे होते हैं।

१९६०

एक दिन सुदामा की स्त्री ने पति से विनय पूर्वक कहा—पतिजी, आप कहा करते हैं कि श्री कृष्ण आपके सखा है। आप इस समय दीन अवस्था में हैं। घर में खाने को कुछ नहीं। अतः आप उनके पास जाँय और कुछ ले आयें। सुना है वे दीनों पर दया करते हैं। वे अवश्य आपकी सहायता करेंगे। आपको ऐसी अवस्था में मित्र के पास जाते हुए लज्जा नहीं करनी चाहिए। कहते हैं कि विपत्ति में मित्र ही मित्र के काम आता है। आप उनसे सहायता प्राप्त करें, जिससे हमारा निर्वाह भली भाँति हो। आशा है आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देंगे और वहाँ जायेंगे।

१९६३

एक बार राजा भोज ने नया विलास गृह बनवाया। उस गृह में प्रवेश से पूर्व ही कोई ब्रह्म राक्षस रहने लगा। रात्रि में जो वहाँ रहते, उनको वह खा जाता। तब मन्त्रवेत्ताओं को बुलाकर राजा ने उसे हटाने का प्रयास किया। वह मन्त्रवेत्ताओं को ही खाने लगा। तब राजा ने सोचा, "इससे कैसे छुटकारा पाया जाय।" राजा की चिन्ता का कारण जानकर कालिदास ने कहा "मन्त्रवेत्ताओं को रहने दीजिये, मेरे मन्त्र को देखिये। यह राक्षस निश्चय ही सब शास्त्रों में पारंगत और अच्छा कवि प्रतीत होता है। इसलिये उसे सन्तुष्ट करके अपना कार्य सिद्ध करूँगा।"

१९६४

पौराणिक साहित्य भी बहुत प्राचीन होता है। अथर्ववेद में पुराण, पुराणविद् आदि शब्दों का उल्लेख आता है। विद्वानों के मतानुसार आरम्भ में पुराण एक ही थे। धीरे धीरे उसमें अनेक प्रकार के विषय जुड़ते गये और पौराणिक साहित्य ने वर्तमान बृहद रूप धारण कर लिया। वर्तमान पुराणों के परीक्षण से स्पष्ट पता चलता है कि इस साहित्य के विकास की चार अवस्थायें थीं। प्राचीन राजाओं की वंशावलियों का वर्णन समाज में अत्यन्त प्राचीन काल से चला आता है। अथर्ववेद में उल्लखित पुराण शब्द से इन्हीं का संकेत मिलता है। यही आख्यान वर्तमान पुराणों की आधार शिला है।

१९६५

इस प्रकार जब राजा नगर में घूम रहा था तो उसने दो चोरों को मार्ग में जाते हुए देखा। उनमें से एक बोला "मैं गाढ़े अन्धकार से घिरे हुये भुवन में भी काजल के प्रभाव से सूक्ष्म वस्तु को भी देख सकता हूँ। किन्तु कोषगृह से लायी हुई धनराशि मुझे सुख नहीं देती। चारों ओर नगर रक्षक घूम रहे हैं। अतः इस चुराये धन को बाँटकर तुरन्त अपने-अपने घर चला जाना चाहिये।" दूसरे ने पूछा "तुम इस धन के ढेर से क्या करोगे?" उसने कहा "किसी ब्राह्मण को दे दूँगा, जिससे वेदशास्त्रों में पारंगत वह विद्वान् किसी दूसरे से न माँगें।"

१९६६

एक दिन उद्यान में भ्रमण करते समय नल ने एक सुनहरे हंस को देखा। उसने उस हंस को पकड़ लिया। हंस की प्रार्थना करने पर नल ने उसे छोड़ दिया। हंस ने निवेदन किया कि मैं आपकी एक उत्तम सेवा करूँगा। हंस उड़कर विदर्भ पहुँचा और वहाँ उसने दमयन्ती के समक्ष नल के गुणों की प्रशंसा की। दमयन्ती ने नल से विवाह का निश्चय किया। हंस ने सारी सूचना नल को दी। दमयन्ति के विवाहार्थ स्वयम्बर का आयोजन हुआ। सभी राजा और राजकुमार स्वयम्बर में आये। दिक्पालों ने नल के द्वारा प्रयत्न किया कि दमयन्ती उनमें से एक को छाँट ले, परन्तु दमयन्ती ने ऐसा स्वीकार नहीं किया। स्वयम्बर में उसने नल को ही पति चुना।

१९६७

दाक्षिणात्य प्रदेश में महिलारोप्य नामक एक नगर है। वहाँ एक विशाल वट का वृक्ष था जिसके ऊपर लघुपतनक नाम का कौवा भी रहता था। एक बार अपने भोजन की खोज में वह नगर की ओर चला। उसने देखा, यमदूत के समान भयंकर कोई मनुष्य सामने आ रहा है। उसे देख कर वह लौट आया और अन्य पक्षियों से बोला—"भाइयों! सावधान हो जाओ। एक दुष्ट बहेलिया (लुब्धक) जाल लेकर आ रहा है। आपको उसके चावलों का लोभ नहीं करना चाहिये"।

१९६८

हे लक्ष्मण! यह पम्पा वैदूर्य के तुल्य स्वच्छ जल से युक्त है। इसके चारों ओर कमल खिले हैं और यह अनेक वृक्षों से शोभित है। पम्पा का वन भी दर्शनीय है। यहाँ ऊँचे ऊँचे वृक्ष शिखरयुक्त पर्वतों से प्रतीत होते हैं। यह कमलों से व्याप्त है और दर्शनीय है। वृक्षों की चोटियाँ फूलों के बोझ से लदी हुई हैं और वृक्ष पुष्पित लताओं से आवेष्टित हैं। वन पुष्पित वृक्षों से युक्त हैं, और वृक्ष फूलों की वर्षा इस प्रकार कर रहें हैं जैसे बादल जल की वर्षा करते हैं। पत्थरों पर उगे अनेक वन वृक्ष हवा में कम्पित

होकर पृथ्वी पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। वायु गिरे हुए, गिरनेवाले और वृक्षों पर लगे हुए फूलों के साथ क्रीडा सी कर रहा है। भौरों की ध्वनि से युक्त वृक्ष एक दूसरे को बुलाते हुए से प्रतीत होते हैं।

१९७०

एक दिन दो मित्र एक सघन जंगल में जा रहे थे। जब वे एक नदी के किनारे पहुँचे, उन्हें एक भयानक रीछ आता हुआ दिखाई पड़ा। उसकी आकृति को देखकर दोनों डर गये। अपनी रक्षा का अन्य कोई उपाय न पाकर उनमें से एक तो तुरन्त दौड़कर एक समीपवर्ती वृक्ष पर चढ़ गया। पर बेचारा दूसरा पेड़ पर चढ़ना नहीं जानता था, इसलिए वह मृत्यु को अवश्यम्भावी जानकर वहीं पृथ्वी पर लेट गया। रीछ ने पास आकर भूमि पर लेटे हुए उस मनुष्य के नाक और मुँह को सूँघा और उसे मरा हुआ जानकर वहीं छोड़कर जंगल की ओर चला गया। रीछ के चले जाने पर अपने को सुरक्षित पाकर दूसरा आदमी पेड़ से उतरा, और अपने मित्र के पास आकर कहा कि मैंने पेड़ पर चढ़े हुए यह देखा था कि रीछ तुम्हारे कान के पास मुँह रखकर कुछ कह रहा था। बताओ उसने क्या कहा था। मित्र ने कहा कि वह यह कह रहा था कि जो आपत्ति के समय मित्र को छोड़ दे, उसे मित्र न कहना चाहिये।

१९७१

एक समय एक राजा रथ पर चढ़कर अपने सैनिकों के साथ वन में शिकार को गया। एक नदी के किनारे एक सुन्दर मृग को देखकर उसने उसे मारने के लिए अपना धनुष उठाया। राजा को अपने वध के लिए उद्यत देखकर मृग अपने प्राणों की रक्षा के लिए एक वनाश्रम की ओर भागा। राजा ने भी उसका पीछा किया। आश्रम में प्रविष्ट होकर वह मृग एक ऐसे स्थान पर पहुँच गया, जहाँ तीन मुनि कुमारियाँ आश्रम के पौधों में जल दे रही थीं। मृग को भयभीत देखकर मुनि कुमारियों ने उसे सान्त्वना दी और कहा—मत डरो, इस आश्रम में कोई भी शिकारी तुमको मारने का साहस नहीं कर सकता। यहाँ जीवहिंसा सर्वथा वर्जित है।

हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

बी. ए. (संस्कृत)

१९५८

आर्यों के अनुसार यह हमारा स्वदेश स्वर्ग से भी बढ़कर है। स्वर्ग भोग-भूमि है, परन्तु भारत है कर्म भूमि। आत्म विकास की पूर्णता को साधिका यह भारत भूमि है। आर्य संस्कृति एवं स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत है। भारत के इतिहास में आध्यात्मिकता की धारा बहाने का श्रेय आर्यों को हो है। उन्होंने स्वार्थ तथा परमार्थ का मंजल सामंजस्य प्रस्तुत कर विश्व के समक्ष एक सुन्दर आदर्श उपस्थित किया है।

१९६०

ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी हुई है। इसका जितना अन्वेषण किया जायगा, उतनी ही विचित्रता की नई-नई शृंखलाएँ मिलती जायँगीं। कहाँ एक छोटा सा बीज और कहाँ उससे उत्पन्न एक विशाल वृक्ष। दोनों में महान् अन्तर है, तथापि दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध वर्तमान है। एक छोटे से बोज के गर्भ में क्या-क्या भरा हुआ है! वह छोटा सा बोज ही बढ़ते-बढ़ते एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है, और वह वृक्ष पत्र, पुष्प तथा फल से उत्पन्न होकर इस पृथ्वी तल को मण्डित करता है।

१९६१

जगत् की स्थिति रक्षा के लिए अहिंसा नितान्त आवश्यक है। यदि समाज में दूसरों की भावनाओं के प्रति हम सहानुभूति नहीं रखेंगे, तो बड़ी अराजकता फैल जायगी। यदि हम चाहते हैं कि दूसरे लोग हमें कष्ट न दें, हमारा उपकार न करें, हमारी निंदा न करें, तो हमें स्वतः इन बातों को छोड़ देना होगा। जगत् में सभी एक ही हृदय सूत्र में बँधे हुए हैं और हमारा यह सतत प्रयत्न होना चाहिए कि इस बन्धन को दृढ़ करते जायँ। हिंसा न करो का तात्पर्य है प्रेम करो। यदि इस प्रेम भावना को हम अपनो संकुचित परिधि से बढ़ाकर समाज, देश तथा विश्व तक पहुँचा देंगे तो हमें बास्तविक आनन्द प्राप्त होगा और लोक का भो कल्याण होगा।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

उत्तरमध्यमपरीक्षायाम्

१९५७

गाँधीजी पहले पहल साबरमती आश्रम में रहते थे। वे तो युगद्रष्टा थे। उनका प्रत्येक कार्य महान् होता था। वे जो निश्चय करते थे, उसके पीछे उनकी शक्ति होती थी और उस शक्ति से लोगों को स्फूर्ति व प्रेरणा प्राप्त होती थी। बारह मार्च उन्नीस सौ तीस ईस्वी को गाँधीजी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक स्वराज्य न मिल जाय तब तक साबरमती आश्रम में आकर न रहूँगा। गाँधीजी ने वहाँ ही से डांडी कूच किया था। उसे उनके निजी सचिव श्री महादेव देसाई ने महाभिनिष्क्रमण कहा था।

१९६०

इस नाटक ने जिस आदर्श का मुझ पर प्रभाव डाला, वह यही आदर्श था कि सत्य का अनुसरण करना और कठोर परीक्षाओं में होकर निकलना, जिसमें से हरिश्चन्द्र निकले। मैं हरिश्चन्द्र की कहानी में पूर्णतया विश्वास करता था। अब मेरी सामान्य बुद्धि कहती है कि हरिश्चन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हो सकते थे। फिर भी दोनों हरिश्चन्द्र और श्रवण मेरे लिए जीवित सत्य हैं और मुझे पूर्ण निश्चय है यदि मैं उन नाटकों को आज फिर से पढ़ूँ तो पूर्व की भाँति प्रभावित हो जाऊँगा।

१९६५

हिन्दू धर्म अमूल्य रत्नों से भरपूर असीम सागर के समान है। जितने गहरे पैठिए उतने ही अधिक खजाने आपको मिलेंगे। यहाँ ईश्वर बहुतेरे नामों से विदित हैं। राम और कृष्ण दोनों को हजारों ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं, परन्तु करोड़ों सचमुच विश्वास करते हैं कि ईश्वर उनके रूप में मानव का दुःख दूर करने के लिए पृथ्वी पर उतरा था। इतिहास, कल्पना और सत्य इस प्रकार उलझ गए हैं कि उनको अलग-अलग करना असम्भव सा है। मैंने ईश्वर के द्योतक सभी नामों और रूपों को एक निराकार सर्वत्र विद्यमान राम का संकेत माना है।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालये

पूर्वमध्यमपरीक्षायाम्

१९५७

धर्म कुछ है ही नहीं, ऐसा मानने वालों की संख्या भगवान् की कृपा से भारत में अभी नगण्य ही है। परन्तु धार्मिक शिक्षा की ओर वह सर्वथा उदासीन है। यदि ऐसा न होता तो वह आधुनिक शिक्षा को, जिसका धर्म से कोई नाता ही नहीं है, एक दिन भी सहन न करती। साधारण जनता की तो बात ही क्या, बड़े-बड़े पण्डितों को, जो धर्म के संरक्षक माने जाते हैं, अपने बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा देने की ही चिन्ता रहती है।

१९५८

बालक का मन कच्ची मिट्टी के समान होता है। कुम्हार अपने चाक के सहारे कच्ची मिट्टी को मनोवाञ्छित रूप देता है। इसी प्रकार शिक्षक शिक्षा के द्वारा बालक के भविष्य का निर्माण करता है। बालक के मन में यह भावना भर देनी चाहिए कि मैं महान हूँ और अवसर प्राप्त होने पर अपनी शक्तियों का पूरा-पूरा विकास कर सकता हूँ।

१९६५

हिन्दुओं का पवित्र नगर वाराणसी भारत का सबसे पुराना नगर है। वाराणसी प्राचीन काल से ही सर्वाधिक प्रसिद्ध विद्यापीठ रहा है। वाराणसी न केवल एक प्रसिद्ध विद्यापीठ है, वरन् वह एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान भी है। प्रति वर्ष इस पवित्र नगर में हजारों हिन्दू तीर्थयात्री तो आते ही हैं, विदेशी पर्यटकों को भी यह नगर अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है। ऐसे सभी यात्री भगवती भागीरथी में स्नानकर, अपने समस्त पापों से मुक्त होकर पवित्र हो जाते हैं। स्नान करने के बाद वे लोग विश्वनाथ के मन्दिर में भगवान् शिव की पूजा करते हैं।

१९५५

पाण्डु की स्त्री पृथा अथवा कुन्ती के नाम से प्रसिद्ध थी और वह पाँच पाण्डवों की माँ हुई। ये युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन अथवा जुड़वाँ नकुल और सहदेव थे। सब लोग उनसे स्नेह करते थे, क्योंकि वे महान् गुणों से पूर्ण थे। भीम का हृदय प्रसन्न था, क्योंकि उन्होंने देखा कि सब राजकुमारों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर में उत्तम राजा बनने के गुण विद्यमान हैं। उनके पिता महाराज पाण्डु की वन में अकस्मात् मृत्यु हो गई और धृतराष्ट्र ने घोषित किया कि आज से राजकुमार युधिष्ठिर को दोनों राज्यों का उत्तराधिकारी समझना चाहिए।

१९५६

इस नाटक ने जिस आदर्श का मुझपर प्रभाव डाला वह यही आदर्श था कि सत्य का अनुसरण करना और कठोर परीक्षाओं में होकर निकलना, जिसमें से हरिश्चन्द्र निकले। मैं हरिश्चन्द्र की कहानी में पूर्णतया विश्वास करता था। इस सब का विचार प्रायः मुझे रुला देता था। अब मेरी सामान्य बुद्धि कहती है कि हरिश्चन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हो सकते थे। फिर भी दोनों हरिश्चन्द्र और श्रवण मेरे लिए जीवित सत्य हैं और मुझे पूर्ण निश्चय है कि यदि मैं उन नाटकों को आज फिर से पढ़ूँ तो पूर्व की भाँति प्रभावित हो जाऊँगा।

१९५७

गोखले सच्चे देशभक्त थे। वे भारतवर्ष से प्रेम करते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि वे उसे एक महान देश बनाने में सहायक हों। उनका जीवन अतिसरल और स्वार्थ रहित था। वे न तो धन की परवाह करते थे और न ख्याति की। उनकी सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा थी कि वे अपने कर्तव्य का पालन करें। अपने समय में उन्होंने वक्ता के रूप में ख्याति प्राप्त की, किन्तु सर्वोपरि वे क्रियाशील मनुष्य थे। वे केवल शब्दों में विश्वास नहीं

करते थे। वे काम करना चाहते थे। जो काम उन्होंने अपने ऊपर लिया उसे निःस्वार्थ भावना से कार्यान्वित किया और वे अपने देशवासियों के लिये एक उदाहरण बन गए।

१९६०

चार ब्राह्मणों ने ज्ञान प्राप्त करने के लिए दूसरे देश को जाने का निश्चय किया। तदनुसार वे सब कन्नौज को गए और वहाँ बारह वर्ष तक अध्ययन किया। अपने आचार्य से अनुमति लेकर कन्नौज से वे चल पड़े। रास्ते में उन्हें दो यात्री मिले। उनमें से एक ने कहा,—'हे भद्र लोगों! हम लोग अयोध्या जा रहे हैं, किस रास्ते से हम सब जायं?" उन चारों ब्राहमणों में से एक ने झट से अपनी पुस्तक को खोला और उत्तर दिया—"आप लोगों को आज अयोध्या न जाना चाहिए। आप सबों को या तो यहीं ५ दिन ठहरना चाहिए या लौटकर अपने घर को चला जाना चाहिए क्योंकि आप सबों के ग्रहों की स्थिति आज अच्छी नहीं है।"

१९६१

राजा जीमूतवाहन नर्मदा नदी के किनारे पर धर्मपुर में राज्य करता था। एक दिन उसने एक स्त्री का विलाप सुना। जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि वह स्त्री सर्पों की माता है। उसके आठ बच्चों को पक्षियों के राजा गरुड़ ने खा लिया है। वह इसलिए रो रही है कि गरुड़ उसके आखिरी बच्चे को भी खाना चाहता है। राजा ने उसके बच्चे को वचन दिया और बच्चे के बदले अपना शरीर गरुड़ को दे दिया। जब गरुड़ ने उसके शरीर का बाम भाग खा लिया तो राजा ने दाहिना हिस्सा भी उसके सम्मुख कर दिया। यह देख गरुड़ ने अत्यन्त पश्चात्ताप किया और राजा के शरीर को पुनः सर्वाङ्ग पूर्ण करने के विचार से अमृत लाने के लिए पाताल लोक गया और अमृत ले आया। ज्योंही गरुड़ राजा के शरीर पर अमृत छिड़कने वाला था कि राजा ने गरुड़ से सर्पों के आठों बच्चों को भी पुनः जीवित करने के लिए कहा, जिनको वह पहले ही मार चुका था।



हमारे परीक्षोपयोगी ग्रन्थ

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की परीक्षा में निर्धारित पुस्तकें

१ निबन्धप्रभा—पो० रामरंग शर्मा १.५०
२ छन्दप्रकाश—वागीश्वरी हिन्दी विवृत्ति सहित
सम्पादक—पं० शिवदत्त मिश्र ० ३५
३ रूपमञ्जरी—सम्पादक—पं० शिवदत्त मिश्र ०.५०
४ तर्कसंग्रह—पं० रामगोविन्द शुक्ल ० ३५
५ रघुवंश महाकाव्यम्—मल्लिनाथ विरचित सञ्जीवनी-
समेतम्—प्रथम सर्ग १.०० सर्ग २ से ५ २.५०
६ निबन्ध सुधा—पं० कपिलदेव त्रिपाठी ३.००
७ तर्क संग्रह—पदकृत्य-हिन्दी टीका—प्रश्न-पत्र सहित
सम्पादक—पं० रामगोविन्द शुक्ल ०.८०
८ सांख्यकारिका—गौड़पाद भाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित
सम्पादक—पं० जनार्दनशास्त्री पाण्डेय १.५०
९ वेदान्तसार—दीपिका तथा मयूख संस्कृत हिन्दी टीका
सहित—टीकाकार—पं० रामगोविन्द शुक्ल १.८०
१० कुमारसम्भवम्—१ से २ व ५ सर्ग (संस्कृत-हिन्दी) २.२५
११ कुमारसम्भव—पंचम सर्ग टीकाकार—
पं० जितेन्द्रियाचार्य ०.८०
१२ भट्टिमहाकाव्यम् (अन्वय-हिन्दी-व्याख्या-कोष-समास-तद्धित, तिङन्त, कृदन्त, सिद्धि-वाच्य परिवर्तन, शिक्षादि संवलित काव्यमर्मविमर्शिकाव्य टीकोपेतम्)
सम्पादक—श्री गोपालशास्त्री 'दर्शन केशरी'
सर्ग १ से ४ ४.५० सर्ग ५ से ८
१३ सिद्धान्तकौमुदी—कारकप्रकरण (हिन्दी अनुवाद स
डॉ० दिनेशचन्द्र गुहा

भारतीय विद्या प्रकाशन
पो० बा० १०८, कचौड़ीगली, वाराणसी